ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक १६

कइराय-सयंभूएव-किउ

रिट्ठणेमिचरिउ

(कविराज स्वयंभूदेव कृत अरिष्टनेमिचरित)

यादव-काण्ड

सम्पादन-अनुवाद
(स्व०) डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर

भारतीय ज्ञानपीठ

वीर नि० सं० २५१२ : विक्रम सं० २०४२ : सन् १९८५
प्रथम संस्करण : मूल्य ४०,००

प्रधान सम्पादकीय

स्वयंभूदेव (आठवीं शताब्दी) अविवाद रूप से अपभ्रंश के सर्वश्रेष्ठ कवि माने गये हैं। उनकी महत्ता को स्वीकार करते हुए अपभ्रंश के ही परवर्ती कवि पुष्पदन्त ने उन्हें व्यास, भास, कालिदास, भारवि, बाण आदि प्रमुख कवियों की श्रेणी में विराजमान कर दिया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य के जाने-माने समीक्षक राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश भाषा के काव्यों को आदिकालीन हिन्दी काव्य के अन्तर्गत स्थान देते हुए कहा है—"हमारे इसी युग में नहीं, हिन्दी कविता के पाँचों युगों के जितने कवियों को हमने यहाँ संगृहीत किया है, यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि उनमें स्वयंभू सबसे बड़े कवि थे। वस्तुतः वे भारत के एक दर्जन अमर कवियों में से एक थे।" वे 'महाकवि', 'कविराज', 'कविराज-चक्रवर्ती' आदि अनेक उपाधियों से सम्मानित थे।

स्वयंभूदेव ने अपभ्रंश में 'पउमचरिउ' लिखकर जहाँ रामकथापरम्परा को समृद्ध बनाया है वहीं 'रिट्ठणेमिचरिउ' प्रबन्धकाव्य लिखकर कृष्ण-काव्य की परम्परा को आगे बढ़ाया है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रबन्धकाव्य के क्षेत्र में स्वयंभू अपभ्रंश के आदि कवि हैं। वह अपभ्रंश के रामकथात्मक काव्य के यदि 'वाल्मीकि' हैं तो कृष्ण काव्य के 'व्यास' हैं। अपभ्रंश का कोई भी परवर्ती कवि ऐसा नहीं है जो स्वयंभू से प्रभावित न हुआ हो।

स्वयंभू ने अपनी रचनाओं में अपने प्रदेश या जन्मस्थान का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है। स्व० डॉ० हीरालाल जैन का मत था कि हरिवंशपुराण के कर्ता जिनसेन तथा आदिपुराण के कर्ता जिनसेन की तरह कवि स्वयंभू भी दक्षिण प्रदेश के निवासी रहे होंगे क्योंकि उन्होंने अपने काव्यों में धनंजय, धवलइया और बन्दइया आदि जिन आश्रयदाताओं का उल्लेख किया है वे नाम से दाक्षिणात्य प्रतीत होते हैं। स्व० पं० नाथूराम प्रेमी का विचार था कि स्वयंभू कवि पुष्पदन्त की तरह ही बरार की तरफ के रहे होंगे और वहाँ से वे राष्ट्रकूट की राजधानी में पहुँचे होंगे। जो भी हो, स्वयंभू की कृतियों में ऐसे अनेक अन्तरंग साक्ष्य मिलते हैं जिससे उन्हें महाराष्ट्र या गोदावरी के निकट के किसी प्रदेश का माना जा सकता है।

स्वयंभू की प्रस्तुत कृति 'रिट्ठणेमिचरिउ' का दूसरा नाम 'हरिवंशपुराण' भी है। अठारह हजार श्लोक प्रमाण यह महाकाव्य ११२ सन्धियों (सर्गों) में पूर्ण होता है। इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र के साथ श्रीकृष्ण और पाण्डवों की कथा का विस्तार से वर्णन है। कथा का आधार सामान्यतः 'महाभारत' और 'हरिवंशपुराण' रहा है लेकिन समसामयिक, राजनैतिक और सामाजिक चित्रांकन हेतु घटनाओं में यथास्थान अनेक परिवर्तन भी किये हैं। उससे प्रस्तुत काव्य में मौलिकता आ गयी है। काव्य में घटना बाहुल्य तो है ही, काव्य का माधुर्य भी जमकर देखने को मिलता है। इसमें कृष्ण-जन्म, कृष्ण की बाललीलाएँ, कृष्ण-विवाहकथा, प्रद्युम्न की जन्म-कथा और तीर्थंकर नेमिनाथ के चरित्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। साथ ही, कौरवों एवं पाण्डवों के जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा, उनका परस्पर वैमनस्य, युधिष्ठिर द्वारा द्यूत-

क्रीड़ा और उसमें सब कुछ हार जाना तथा पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास आदि अनेक प्रसंगों का विस्तार से चित्रण है। कौरवों और पाण्डवों के युद्ध का वर्णन तथा सजीव बन पड़ा है।

कवि ने पद्धडिया छन्द के रूप में ऐसे अनेक पद्यों की रचना की है जिनसे न केवल कवि की जिनधर्म के प्रति भक्ति प्रकट होती है अपितु जिननाम के स्मरण की महिमा का भी पता चलता है। एक पद्य में वे लिखते हैं कि जिनदेव के नाम के स्मरण से मद गल जाता है, अभिमान चूर हो जाता है। सर्प काटता नहीं। जाज्वल्यमान अग्नि भी शान्त हो जाती है। समुद्र भी स्थान दे देता है। अटवी में जंगली व्याघ्र आदि प्राणी भी नहीं सताते। सभी सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं और क्षण भर में ही जीव मुक्ति प्राप्त कर लेता है। जिस जिन के नाम का इतना माहात्म्य है वह जिन कैसा है, उसे कैसे पहचाना जाए आदि अनेक प्रश्नों के समाधान हेतु कवि ने एक स्थान पर उल्लेख किया है कि जो देव न रुष्ट होते हैं और न द्वेष करते हैं और जो न दया भी करते वे जिन हैं, जिनवर हैं।

'रिट्ठणेमिचरिउ' का सम्पूर्ण कथानक तीन काण्डों में विभाजित है—यादव, कुरु और युद्धकाण्ड। प्रस्तुत कृति की कथावस्तु (तेरह सन्धियों में निबद्ध) यादवकाण्ड तक सीमित है। ग्रन्थ के सम्पादक एवं अनुवादक डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन के आकस्मिक निधन के कारण यह कार्य एकाएक बीच में रुक गया। इसके शेष भाग के शीघ्र प्रकाशन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ प्रयत्नशील है।

१६ दिसम्बर, १९८५ —कैलाशचन्द्र शास्त्री

प्राक्कथन

'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्टनेमिचरित) महाकवि स्वयंभू का दूसरा अपभ्रंश काव्यग्रन्थ है। संस्कृत में इसका नाम 'हरिवंशपुराण' है। इसका मूल और मुख्य कथानक महाभारत के कथानक के समानान्तर है जिसमें घटनाओं, पात्रों, चरित्रों और प्रसंगों में उल्लेखनीय साम्य-वैषम्य है। कवि के पहले काव्य-ग्रन्थ 'पउमचरिउ' (पद्मचरित) के सम्पादन का श्रेय डॉ० एच. सी. भायाणी को है। १९५४ में मैंने उसका हिन्दी अनुवाद किया था, जो कई उलझनों को पारकर, भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पाँच खण्डों में प्रकाशित हुआ है।

'पउमचरिउ' की तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' स्वयंभू की महत्त्वपूर्ण कृति तो है ही, साथ ही वह भारतीय कृष्ण-काव्यधारा की भी महत्त्वपूर्ण काव्यरचना है—ऐसी रचना जो कृष्ण काव्य-परम्परा के ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अनिवार्य है। पता नहीं, अभी तक किसी ने इतने महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ के सम्पादन-प्रकाशन की दिशा में पहल क्यों नहीं की। अवश्य ही, जर्मन विद्वान् डॉ० लुडविग आल्सडोर्फ ने पुष्पदन्त के महापुराण के अन्तर्गत उत्तरपुराण के एक खण्ड का (जो ८१ से ९२वीं संधि तक है और जिसमें बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की तीर्थंकर-प्रकृति के बन्ध से लेकर उनके निर्वाणगमन तक का चरित आता है, उसमें कृष्ण का चरित भी है) सम्पादन किया जो जर्मनी में ही प्रकाशित हुआ। लेकिन 'महापुराण' स्वयंभू के बाद की रचना है और उसके रचयिता अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदन्त हैं। उसकी तुलना में 'रिट्ठणेमिचरिउ' में कथा का विस्तार है। फिर भी, इसका अभी तक प्रकाशन संभव नहीं हो सका।

'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रस्तुत संस्करण उपलब्ध तीन प्रतियों के आधार पर तैयार किया गया है। इसमें पहली प्रति जयपुर से डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल के सौजन्य से प्राप्त हुई। यह प्रति शेष दो प्रतियों की तुलना में प्राचीन और कलात्मक है। शास्त्राकार पन्नों में लिखित है। अक्षर मोटे हैं और प्रत्येक पृष्ठ के बीचों-बीच कुछ स्थान खाली छोड़ा गया है। इसमें कुल ५०८ पन्ने हैं यानी १०१६ पृष्ठ। पुरानी होने से पन्ने जीर्ण-शीर्ण हैं। कहीं-कहीं पंक्तियाँ की पंक्तियाँ कट गयी हैं, बीच में वाक्य या शब्द गायब हैं। इनमें पूर्वापर सम्बन्ध बैठाना बहुत कठिन काम है। सुविधा के लिए इस प्रति को हम 'जयपुर' से प्राप्त होने के कारण 'ज' प्रति कहेंगे।

शेष दोनों पाण्डुलिपियाँ स्व० ऐलक पन्नालाल सरस्वती भण्डार की ब्यावर शाखा से उपलब्ध हुईं। 'जयपुर' प्रति की तरह इन प्रतियों की उपलब्धि की कहानी मनोरंजक और समयसाध्य सिद्ध हुई जिसका परिचय यहाँ देना संभव नहीं है। बहरहाल यही बताना पर्याप्त है कि इन पाण्डुलिपियों के कारण आलोच्य ग्रन्थ के सम्पादन को वैज्ञानिक, प्रामाणिक और अधिक-से-अधिक शुद्ध बनाना सम्भव हो सका। सच तो यह है कि यदि ये पाण्डुलिपियाँ नहीं

मिलतीं, तो शायद 'रिट्ठणेमिचरिउ' का सम्पादन, प्रकाशन संभव ही नहीं होता। दोनों पाण्डुलिपियाँ किन्हीं दो प्राचीन पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपियाँ हैं जो बहुत अधिक प्राचीन नहीं हैं। लगता है सरस्वती-भवन के व्यवस्थापकों को अपने भंडार में 'रिट्ठणेमिचरिउ' जैसे महाकाव्य का अभाव खटका होगा और उन्होंने किन्हीं प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर उक्त प्रतियाँ तैयार करायी होंगी। दोनों प्रतियों के प्रारम्भिक मिलान से यह स्पष्ट हो जाता है, कि ये दोनों भिन्न-भिन्न पाण्डुलिपियों से प्रतिलिपि की गई हैं। लिपिकार भी अलग-अलग हैं। दोनों अपभ्रंशभाषा की रचना-प्रक्रिया से अपरिचित हैं। अतः प्रतिलेखन में अशुद्धियाँ और भूलें होना स्वाभाविक है। परन्तु इससे एक लाभ यह हुआ कि कम-से-कम पाठ-संशोधन और मूल-पाठ की प्रामाणिकता की जाँच करने में पर्याप्त सहायता मिली। प्रस्तुत यादवकाण्ड का सम्पादन करते समय मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि ब्यावर वाली दोनों प्रतियों में 'अ' प्रति का आधार 'ज' प्रति है। अभी तक मुझे तीनों स्थानों से सम्पूर्ण ग्रन्थ का आधा भाग ही सम्पादन के लिए मिला है। सम्पादन कर इसे लौटाने के बाद दूसरा आधा भाग मिलेगा, ऐसा वचन दिया गया। अतः मैं यह कहने की स्थिति में नहीं हूँ कि ब्यावर की प्रति का आधार 'ज' प्रति ही है। परन्तु यह निश्चित है कि वह जिस भी प्रति के आधार पर तैयार की गई हो, 'ज' प्रति के अधिक निकट है। पाठकों को यह तथ्य पाठान्तरों के मिलान से स्वतः स्पष्ट हो जाएगा जहाँ तक 'ब' प्रति के आधार का सम्बन्ध है, वह निश्चित रूप से 'ज' प्रति से भिन्न है। इस प्रकार, मुख्यतः तीन पाण्डुलिपियों के स्थान पर दो ही पाण्डुलिपियाँ माननी चाहिए। ऐसा है भी। परन्तु कभी-कभी ब्यावर की 'अ' प्रति के कुछ पाठ, वर्तनी आदि बातें 'ज' प्रति से भिन्न हैं और ब्यावर की 'ब' प्रति से मिलती हैं। अतः सम्पादन में उसके महत्त्व को भी कम नहीं किया जा सकता, खासकर अपभ्रंश जैसी लचीली भाषा में लिखित रचना के सम्पादन में।

महाकवि स्वयंभू के इस बृहद् ग्रन्थ 'रिट्ठणेमिचरिउ' में ११२ सर्ग हैं। इसमें तीन काण्ड हैं—यादव, कुरु और युद्ध। यादवकाण्ड में १३, कुरु में १९ और युद्ध में ६० सर्ग हैं। सर्ग की यह गणना युद्धकाण्ड के अन्त में अंकित है। यह भी बताया गया है कि प्रत्येक काण्ड कब लिखा गया और उसकी रचना में कितना समय लगा। प्रस्तुत पुस्तक मात्र 'यादव-काण्ड' से सम्बन्धित है (शेष दोनों खण्ड अगले भागों में क्रमशः प्रकाशित होंगे)। यादव-काण्ड इस रचना का सबसे पहला और छोटा है।

आलोच्य संस्करण 'ज' प्रति को आधार मानकर चला है, क्योंकि वह अपेक्षाकृत प्राचीन है, वह पहले प्राप्त हुई है, तथा दूसरी (ब्यावर) प्रति भी उससे मिलती-जुलती है। 'ज' प्रति के पाठों को जहाँ कथ्य संदर्भ और व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त नहीं समझा गया, वहाँ दूसरी प्रतियों के पाठों को मूल में रखते हुए, अन्य प्रतियों के पाठ नीचे फुटनोट में दे दिये गये हैं तथा प्रतियों का उल्लेख भी कर दिया गया है। पाण्डुलिपियों के विषय में निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—

'ज'—जयपुर प्रति।

'अ'—ब्यावर की प्रति (जो जयपुर की प्रति से मिलती है।)

'ब'—प्रति (जिसका आधार 'ज' प्रति से भिन्न कोई अन्य प्रति है)।

इसमें सन्देह नहीं है कि आलोच्य साहित्य का विपुल भण्डार है। है पर एक ऐसे अल्पसंख्यक समाज के संरक्षण में जो मुख्यतः व्यवसाय से सम्बद्ध रहा है। फिर भी

उसने तीर्थंकरों की वाणी को (चाहे वह किसी भी भाषा में हो) आध्यात्मिक मूल्यों की अमूल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित रखना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझा। संयोग से उनके पास ऐसे विद्वान् नहीं थे जो बृहत्तर भारतीय भाषा और साहित्य के संदर्भ में उसका वस्तुनिष्ठ अध्ययन करते और बताते कि आलोच्य भाषा और साहित्य केवल साम्प्रदायिक साहित्य नहीं है, बल्कि देश की मुख्यधारा से जुड़ा हुआ साहित्य है। वह एक ऐसी भाषा में है जहाँ आर्य-भाषा एक से अनेक बनने की प्रसववेदना से व्याकुल हो उठी थी, राजनैतिक सत्ता के बिखराव और भौगोलिक इकाइयों के ध्रुवीकरण के कारण जनमानस और जनव्यवहार में अनेक भाषाएँ ढल रही थीं। इस प्रक्रिया के नमूने इस भाषा में सुरक्षित हैं। वैसे भाषा-परिवर्तन के बीज उसकी उत्पादन-प्रक्रिया में ही रहते हैं, तभी भाष्यकार पतंजलि ने कहा था "एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः" (एक-एक शब्द के बहुत से अपभ्रंश होते हैं)। परिवर्तन की यह प्रवृत्ति आलोच्यकाल में भी सक्रिय थी। इतना ही नहीं, भाष्यकार के समय जो परिवर्तन एक शब्द को अनेक शब्दों में ढाल रहा था, आगे चलकर उसने एक से अनेक भाषाओं को मूर्त रूप दे दिया। भाषा सम्बन्धी परिवर्तन की इस प्रक्रिया के नमूने जिस भाषा में सुरक्षित हैं वह अपभ्रंश है और, जिन्होंने उसे सुरक्षित रखा, वे हैं जैन कवि। वे कोई भी जैन हों, दिगम्बर या श्वेताम्बर अथवा उत्तर भारतीय या दक्षिण भारतीय, उन्होंने जहाँ स्थानीय बोलियों के साहित्य को सुरक्षित रखा, वहीं दूसरी ओर मुख्यधारा की भाषा के साहित्य को भी अंगीकार कर विपुल साहित्य रचा। यह सत्य है कि नदी से नदी नहीं निकलती, पर नहर तो निकाली जा सकती है। लेकिन आर्यभाषा एक ऐसी नदी है जिससे कई नदियाँ निकलीं और वह उन्हें प्राण ही नहीं देती, आकार भी देती है। इस देश में ऐसे भी लोग रहे हैं जो भाषारूपी मुख्य नदी के साथ उसकी धाराओं के साहित्य को भी बिना किसी लौकिक स्वार्थ के सुरक्षित रखते रहे हैं। ऐसे लोगों में जैन भी हैं। जैन एक सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय का मूल अर्थ है, जो सम्यक् प्रकार (भली भाँति) प्रदान करे। किसी आध्यात्मिक सद्-विचार को व्यवहार की दृष्टि से युक्तियुक्त बनाकर आचरण में ढाल-कर संगठित होनेवाला मानव-समाज सम्प्रदाय कहलाता है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, इसलिए उसमें समूह होंगे ही। अपनी स्थिति, सामाजिक रीति नीति और धार्मिक मान्यताओं के अनुसार समूह बनाने और तोड़ने की स्वतन्त्रता उसे है। बनाने और मिटाने की यह प्रक्रिया सहज है, और इसी में से व्यापक या बृहत्तर संस्कृति का विकास होता है। अतः सम्प्रदाय में रहना बुरा नहीं है, साम्प्रदायिक होना बुरा है। इससे सिद्ध है कि अपभ्रंश जैनों की ही भाषा नहीं थी। यह कहना भी गलत है कि संस्कृत ब्राह्मणों की ही भाषा थी या पालि बौद्धों की। प्राकृत भी किसी एक सम्प्रदाय की भाषा नहीं थी। भाषाएँ सम्प्रदायों की नहीं, जनता की होती हैं। प्रारम्भ में ब्राह्मण ब्रह्मविद्या के अगुआ थे। वे विचारों की स्थिरता के साथ, भाषा की स्थिरता के पक्ष में थे। लेकिन विचार भी आगे बढ़ता है और उसे अभिव्यक्ति देनेवाली भाषा भी आगे बढ़ती है। उसके आधार पर मुख्यधारा से जुड़े रहकर नये समूह बनते हैं, साहित्य बनता है, उसे सुरक्षित रखने की व्यवस्था की जाती है, जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। यह श्रेय जैन समाज को है। उसने संस्कृत के साथ प्राकृत, अपभ्रंश और परवर्ती प्रान्तीय भाषाओं के सृजन को न केवल प्रेरणा देकर महत्त्व प्रदान किया, प्रत्युत उसे सुरक्षित भी रखा।

बृहत्तर भारतीय संस्कृति और उसके गतिशील मूल्यों का समग्रतर अध्ययन उक्त तीनों भाषाओं के साहित्य के अध्ययन के बिना संभव नहीं है। यदि नवीं और दसवीं सदी में स्वयंभू

और पुष्पदन्त अपने समय की काव्य भाषा में नहीं लिखते, तो सम्भवतः 'पृथ्वीराज रासो', 'सूरसागर' और 'रामचरितमानस' का सृजन लोकभाषाओं में संभव नहीं होता। 'नानापुराण-निगमागम' के वैचारिक उच्च शिखरों को जब तुलसी की अनुभूति छूती है और उससे उनकी भावधारा प्रवाहित होती है, तो वह 'देशी भाषा' में निबद्ध होती है। इसी देशी-अभिव्यक्ति के कारण ही तुलसी जनमन को छू सके, उसके अपने बन गये। श्री वल्लभाचार्य की प्रेरणा से 'श्रीमद्भागवत' की ज्ञानमूलक भक्ति को प्रेमभक्ति में परिवर्तित करने में 'सूर' इसलिए सफल हो सके, क्योंकि उन्होंने ब्रजभाषा में अपने सगुण-लीला पदों का गान किया।

मनुष्य बहुत कुछ निर्माण कर सकता है, वह जिस किसी भी चीज़ का आविष्कार कर सकता है; परन्तु वह विचार और भाषा को सीधे उत्पन्न नहीं कर सकता। प्राचीन विचार-चेतना और अभिव्यक्ति तथा नवीन आवश्यकताओं और अनुभवों के घात-प्रतिघात से नयी विचार-चेतना और उसका अभिव्यक्ति-शिल्प फूटता है। जैन कवियों, आचार्यों ने क्या किया और क्या नहीं किया, यह सब भुला भी दिया जाए, तो भी उक्त भाषाओं के साहित्य सृजन, संवर्धन और उसकी प्रामाणिक सुरक्षा उनका बहुत बड़ा योगदान है। इसे इस देश की बृहत्तर संस्कृति, समाज और इतिहास कभी भुला नहीं सकते, उपेक्षा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह होते हुए भी यह सच है कि उसकी उपेक्षा हुई है और यही कारण है कि हिन्दी भाषा (खड़ी बोली) की उत्पत्ति और उसके साहित्य की विधाओं के स्रोत का प्रश्न दिग्भ्रम में पड़ा हुआ है। प्रत्येक प्रश्न का हल नया प्रश्न बन जाता है।

महाकवि तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की प्रस्तावना में यह स्वीकार किया है कि इस देश में दो प्रकार के कवि हुए--आर्ष कवि और प्राकृत कवि। 'आर्षकवि' से उनका अभिप्राय संस्कृत कवि से न होकर वाल्मीकि और व्यास से है जो जीवन की सहज प्रवृत्तियों के दबाव से मुक्त थे तथा उन्होंने जो कुछ लिखा अनुभूति में उसका साक्षात्कार कर लिखा। कालिदास आदि भी संस्कृत के कवि थे, परन्तु वे आर्ष कवि नहीं थे, दरबारी या राज्याश्रयजीवी कवि थे। उनमें अनुभूति की कलात्मक व्यंजना है, कान्ता-सम्मत उपदेश है, परन्तु उनमें वह अन्तर्दृष्टि और तेज कहाँ है जो वाल्मीकि और व्यास को प्राप्त था। 'आदि रामायण' और 'महाभारत' केवल काव्य नहीं हैं, वे भारतीय जीवन, इतिहास और संस्कृति के आकर ग्रन्थ हैं। उनमें भारत के सन्दर्भ में समूची मानवीय चेतना और संस्कृति का चित्र अंकित है। उसके बाद आचार्य विमलसूरि हुए, जिन्होंने प्राकृत में 'पउमचरियम्' के नाम से रामकाव्य की रचना की। उनके बाद संस्कृत में जैन पुराण-काव्यों का सिलसिला चलता है। उसी के समानान्तर अपभ्रंश में तीर्थंकरों एवं राम और कृष्ण के जीवन को आधार बनाकर प्रबन्धकाव्यों की रचना की गयी। इनमें महाकवि स्वयंभू के 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ' तथा पुष्पदन्त के (महापुराण के अन्तर्गत) राम और कृष्ण काव्य प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं को हम श्रमण संस्कृति के आकर ग्रन्थ कह सकते हैं। उसके बाद केवल 'सूरसागर' और 'रामचरितमानस' के नाम आते हैं। तुलसीदास ने रामकाव्य के रचयिता उन प्राकृत कवियों को भी नमन किया है जिन्होंने भाषा में राम के चरित का बखान किया है "जिन्ह भाषा हरिचरित बखाने"। तुलसी के अनुसार भाषा में 'हरिचरित' की व्याख्या करनेवाला नमन करने योग्य है जबकि संस्कृत जैसी देववाणी में प्राकृतजनों का गान करनेवाला कवि सामान्य प्रशंसा का भी अधिकारी नहीं है। स्वयंभू और पुष्पदन्त सामान्य कवि नहीं थे। उन्होंने अपभ्रंश भाषा में रामकाव्य और

कृष्णकाव्य की रचना की। इसके पहले और बाद में भी, एक भी कवि ऐसा नहीं हुआ कि जिसने दोनों पर समान रूप से काव्य-रचनाएँ लिखी हों। इस प्रकार इनमें सम्पूर्ण रामकाव्य और कृष्णकाव्यधारा की निश्चित और अविच्छिन्न परम्परा मिलती है।

भारतीय काव्य-रचना के लगभग दो हज़ार वर्ष के इतिहास में राम-कथा और कृष्ण-कथा को आधार मानकर काव्य रचनेवाले कुल सात कवि हुए—वाल्मीकि, व्यास, विमलसूरि, स्वयंभू, पुष्पदन्त, सूर और तुलसी। इनमें भी राम-कथा और कृष्ण-कथा पर एक साथ काव्य-रचना करनेवाले कवि यदि कोई हैं तो वे हैं—स्वयंभू और पुष्पदन्त। इन दोनों में भी स्वयंभू ने 'पउमचरिउ' के समानान्तर 'रिट्ठणेमिचरिउ' को महत्त्व दिया। अतः समूची राम-काव्य और कृष्ण-काव्य परम्परा में वे पहले कवि हैं जिन्होंने दोनों के चरितों पर समानरूप से अधिकारपूर्वक काव्य-रचना की। उनके रामकाव्य 'पउमचरिउ' का सम्पादन-प्रकाशन लगभग २५ वर्ष पहले हो चुका है, परन्तु 'रिट्ठणेमिचरिउ' अभी तक अप्रकाशित है। १९७५ में मैंने सोचा था कि क्यों न 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन को हाथ में लिया जाए। कारण यह कि इसके अप्रकाशन से न केवल कृष्णकाव्य-परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी शेष रह जाती है, अपितु स्वयंभू जैसे कवि के सम्पूर्ण काव्यसाहित्य का भी प्रकाशन अपूर्ण रह जाता है। जहाँ ये कवि संस्कृत राम-कृष्ण काव्य-परम्परा के अन्तिम कवि हैं, वहीं आधुनिक भारतीय भाषाओं के आदि कवि हैं। इनकी रचनाओं के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के बिना परवर्ती रामकाव्यों और कृष्ण काव्यों का सम्पूर्ण और वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं है। यह लिखते हुए मैं इन काव्यों की सीमाओं से भलीभाँति परिचित हूँ। वैज्ञानिक अध्ययन से मेरा अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि सारा परवर्ती राम-कृष्ण-काव्य इन कवियों की रचनाओं के आधार पर लिखा गया। परन्तु भाषा और कविता पर किसी एक सम्प्रदाय, प्रदेश या भाषा का एकाधिकार नहीं होता। ये जनमात्र की संपत्ति होती हैं। ये माध्यम हैं जिनके द्वारा विभिन्न जातियाँ और समूह रूढ़ियों से बँधते हैं और मुक्त होते हैं। भाषा जाति के व्यवहार को गतिशील और मुक्त बनाती है, जबकि काव्य उसके मानस को गतिशील और तनावों से मुक्त करता है। रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा ही मानवता का विस्तार करती है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य शरीर की जड़ आवश्यकताओं (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) वाली तात्कालिक और अल्पकालिक पूर्ति वाली पशु-संस्कृति का ही प्रतिनिधि होता, जिसका न तो अतीत होता है और न ही भविष्य। वह वर्तमान में ही जीवित रहता। जब नयी भाषा और कविता अस्तित्व में आती है, तो उनमें पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होने की तीव्रतर आकांक्षा होती है। वे अपनी जन्मदात्री परिस्थितियों तक सीमित नहीं रहतीं, उनका दूरगामी प्रभाव होता है। जब वाल्मीकि ने वैदिक ऋचाओं की जगह, 'मा निषाद' अनुष्टुप छन्द में क्रौंच-वध को देखने से उत्पन्न शोक को व्यक्त किया तो वह नयी युग-संस्कृति का स्पन्दन बन गया। वाल्मीकि उसके संवाहक बने। इसीलिए लोकभाषा (संस्कृत) के कवि होने पर भी उन्हें 'आर्ष कवि' माना गया। अभी तक ऋषियों की संज्ञा उन कवियों को प्राप्त थी जो मन्त्रद्रष्टा (ऋषयो मन्त्र-द्रष्टारः) थे, जबकि वाल्मीकि मन्त्रद्रष्टा नहीं, छन्दस्रष्टा थे। जिस सत्य की अभिव्यक्ति उन्होंने काव्य में की, वह आत्मसृष्ट या आत्म-दृष्ट न होकर अनुभूतिदृष्ट थी। वह विराट् और शाश्वत सत्य नहीं था, अपितु अल्प और क्षणिक अस्तित्व के अपघात-दर्शन से उपजा अनुभवसाक्ष्य सत्य था।

यदि अनुश्रुति को सही माना जाए, तो वाल्मीकि अपने प्रारम्भिक जीवन में तमसा तीरवासी

एक साहसिक (डाकू) थे। उनके लिए नर-हत्या करने में संकोच करने का प्रश्न ही नहीं था। अपने जीवन में भोगे गए सत्य (क्रूरता) से वह जितने परिचित थे, उतना परिचित उनसे दूसरा कौन हो सकता है ? उस मृगयाजीवी युग में क्रौंचवध जैसी घटना सामान्य घटना थी। उसे देखकर विचलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। मेरे विचार में आदि कवि साक्षर ही नहीं, शिक्षित भी रहे होंगे। यह कहना भी बहुत कठिन है कि वे सचमुच डाकू थे या उनके दस्युजीवन और कविजीवन के बीच कितना अन्तराल था। जो भी हो, परन्तु इतना तो सच है कि आदिकवि को काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा क्रौंचवध के दर्शन से उस समय मिली होगी जब मादा क्रौंच की काम-मोहित अतृप्त पीड़ा की अनुभूति उन्हें हुई होगी। अनुभूति 'होने को' अनुक्रिया है। 'भव' 'भूति' 'भूत' आदि शब्द 'भू' धातु से बने शब्द हैं जिनका अर्थ है घटित होना। दृश्य जगत् में किसी होने (घटित होने) की प्रतीति जब मन को होती है तो वह अनुभूति का रूप ले लेती है। अनुभूति के लिए भाषा भी चाहिए, क्योंकि अनुभूति मन की क्रिया है जो भाषा के बिना संभव नहीं है। कवि कल्पना के द्वारा जब अनुभूत सत्य की पुनर्रचना करता है और उसे अभिव्यक्ति देता है, तो वह कविता का रूप ले लेता है। आदिकवि की अनुभूति पुनर्रचित स्थिति में क्रौंच के यथार्थ तक सीमित नहीं रहती, अपितु देशकालव्यापी यथार्थों से जुड़ जाती है। भोगा हुआ सत्य, चाहे अपना हो या दूसरे का दृष्ट, कल्पना में पुनर्रचित होकर सबका सत्य बन जाता है। निषाद सामान्य स्थिति में नर-मादा में से किसी एक को मारता तो शायद उतनी बुरी बात नहीं थी, (हालांकि मारना बुरी बात तो है ही) परन्तु उसने नर-मादा में से एक को उस समय मारा जब वे काममोहित थे। प्राणी मात्र की इच्छाओं के मूल में काम है। कामतृप्ति का सुख सर्वोत्तम इसलिए माना गया है कि उसका सम्बन्ध प्रजनन से है। सक्रिय काम-वेदना की अतृप्ति में मादा छटपटा रही है और आहत नर-पक्षी खून से लथपथ मृत पड़ा है। इस प्रकार निषाद की क्रूरता सृष्टि के भावी विकास के लिए विराम-चिह्न बन जाती है। और यहीं आदिकवि अपनी अनुभूति की पुनर्रचना में दूसरी अनुभूतियों से जुड़ते हैं। उनके प्रातिभज्ञान में निषाद रावण बनकर उभरता है, मादा सीता का रूप ग्रहण करती है। रावण सीता का अपहरण उस समय करता है जब वह राम के प्रति समग्रभाव से समर्पित थी। रावण का अहं एक व्यवस्था को ही नहीं तोड़ रहा था, अपितु एक बसी हुई गृहस्थी को भी उजाड़ रहा था। राम मर्यादित कामवाली संस्कृति के पुरस्कर्ता थे, रावण अमर्यादित काम-संस्कृति का प्रतीक था। जब आदिकवि ने क्रौंचवध देखा, तब उनके समकालीन यथार्थ में सीता-अपहरण की घटना घट चुकी थी। उसकी कसक उनके मन में थी। क्रौंचवध के दृश्य ने दो अनुभूतियों को जोड़ दिया। मादा क्रौंच का शोक कवि का शोक बन गया जो सीता की वेदना से जुड़कर मानवीकरण में परिवर्तित हो गया, फिर वह एक छन्द के बजाय समूचे महाकाव्य में ढल गया। कुछ लोग कविता के अन्त होने के काल्पनिक संकट से खिन्न और भयभीत हैं। उन्हें लगता है कि समाज को कविता की भाषा की जरूरत है। पर प्रश्न है कि जब कविता नहीं जन्मी थी और भाषा बनने में थी, तब किसने उसे जन्म दिया था। आज भी क्रूरताएँ हैं। सभ्यता के विकास के साथ उनका रूप बदला है, उनकी मूल प्रवृत्तियाँ नहीं। एक स्थापित समाज-व्यवस्था में जैसे-जैसे क्रूरताएँ मँडराने लगती हैं, उसकी प्रतिक्रिया एक ओर समाज-स्तर पर होती है तो दूसरी ओर भावना के स्तर पर। कविता का जन्म यहीं होता है। उसमें या तो प्रतीक बदलते हैं या प्रतीकों के अर्थ।

कविता की तरह दर्शन भी कल्पनाशील होता है। अन्यथा इतने दर्शनों के उत्पन्न होने की क्या उपयोगिता है? गीता जब कहती है "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" तो तात्कालिक संदर्भ में उसका अर्थ है कि अपने धर्म यानी वर्ण-व्यवस्था द्वारा निश्चित कर्म करते-करते मर जाना अच्छा है, परन्तु दूसरे के धर्म को करना भयावह है। यह बात एक स्वीकृत और स्थापित समाज-व्यवस्था के संदर्भ में कही गई है। आखिर, वर्णव्यवस्था का सत्य भी मानव-सत्य से जुड़ा हुआ है। यदि वह उससे टकराता है या उसे खण्डित करता है तो उसे बदला जा सकता है। वह समाज व्यवस्था का शाश्वत मूल्य नहीं है। गीताकार प्रारम्भ में ही कह देता है: "जब-जब धर्म की ग्लानि होती है, तब-तब मैं जन्म लेता हूँ।" और धर्म की ग्लानि अधर्म से नहीं, धर्म से भी हो सकती है, होती है। जो उस धर्मग्लानि को हटाकर नये मानव-मूल्य की स्थापना करता है वह अवश्य ही विशिष्ट व्यक्ति है (वह जो भी हो)। कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन की गतिशील प्रक्रिया में नये-पुराने से जुड़ने-टूटने का क्रम अनिवार्य है। किसी युग के काव्य के मूल्यांकन में देखा यह जाना चाहिए कि कवि अपने सृजन में कितना नये मूल्यों को पहचान सका है और वह कितना उनके प्रति समर्पित है तथा कितने शक्तिशाली ढंग से उन्हें अभिव्यक्ति दे सका है। ये सारी बातें उस समय लागू होती हैं जब कविता उपलब्ध हो। अपभ्रंश कविता का पूरा उपलब्ध होना अभी शेष है।

महाकवि के 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन की प्रबल इच्छा का एक कारण अपभ्रंश भाषा के उस काव्य को समझना था जिससे खड़ी बोली जनमी, उसकी दूसरी बोलियाँ तथा अन्य आधुनिक प्रादेशिक भारतीय आर्यभाषाएँ भी जनमीं। किसी प्राचीन युग-प्रतिलिपि रचना के सम्पादन का अर्थ मूल काव्य के सृजन से भी अधिक रचनात्मक होता है। सम्पादन और अनुवाद में अन्तर है, बल्कि कहिए कि उनमें बिल्कुल भी साम्य नहीं है। सम्पादन के लिए पहली शर्त है कि किसी काव्य-रचना की भाषा की पकड़ हो। दूसरी शर्त है उस कवि की भाषा की पकड़ हो। भाषा के बाद उसकी रचना-शैली आती है। अर्थों और पाठों का निर्णय करते समय समूचे संदर्भों को देखकर भाषा की पुनर्रचना करनी पड़ती है। विभिन्न प्रतियों में उपलब्ध पाठान्तरों में सही पाठ और प्रयोग का चयन भी एक समस्या है। छन्द और व्याकरण की दृष्टि से किस पाठ को महत्त्व दिया जाए—यह भी कम सिर-दर्द नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि सम्पादन का अर्थ कवि और उसके रचना-संसार को आत्मसात् करना है। प्रतिलिपिकारों ने वर्तनी और वाक्य-रचना में जो परिवर्तन किये हैं उनमें ताल-मेल बैठाना भी टेढ़ा काम है। इसके बाद उसके मूल्यांकन का प्रश्न उठता है। सम्पादित 'रिट्ठणेमिचरिउ' का मुद्रण और प्रकाशन उतना कठिन नहीं था, जितना कि पाण्डुलिपियों को प्राप्त करना।

सबसे पहले, लम्बे पत्राचार के बाद, जयपुरवाली प्रति सितम्बर-अक्तूबर १९७७ में मिली। इसको उपलब्ध कराने में डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल और डॉ० हुकुमचन्द भारिल्ल ने जो श्रम किया उसके लिए मैं उनका हृदय से अनुगृहीत हूँ। यह पाण्डुलिपि बीच-बीच में कटी-फटी है। अतः मूल पाठ की अन्विति बैठाने में बड़ी कठिनाइयाँ थीं। कभी-कभी एक-एक शब्द के लिए कई दिन लग जाते, फिर भी संगति बैठाना कठिन रहा। इसी बीच डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच वालों ने मुझे सूचित किया कि इसकी दो प्रतियाँ श्री ऐलक पन्नालाल दिग० जैन सरस्वती भवन में हैं। उनके क्रमांक भी उन्होंने भेजने का कष्ट किया। उक्त सरस्वती भवन बम्बई से स्थानान्तरित होकर इस समय तीन शाखाओं (ब्यावर, झालरापाटन और उज्जैन)

में स्थापित है। तीनों जगह मैंने पत्र लिखे, परन्तु लगातार इस नाम के ग्रन्थ के उपलब्ध न होने की सूचना मिली। जुलाई १९७८ में मैं पुनः स्थानान्तर की चपेट में आ गया। १९७८ की दशहरा-दीपावली के अवकाश में मैंने स्वयं ब्यावर जाने का कार्यक्रम बनाया और इसकी सूचना वहाँ के व्यवस्थापक श्री अरुणकुमार शास्त्री को दी। उन्होंने अपने विस्तृत पत्र में दोनों पाण्डुलिपियों के विद्यमान होने की सूचना देते हुए लिखा—"हमारे संदर्भ-विवरणों में उक्त ग्रन्थ का नाम 'रिट्ठणेमिचरिउ' न होकर 'हरिवंशपुराण' अंकित है। विवरण पंजिका की इस अपूर्णता के कारण आपको हर बार ग्रन्थ की अनुपलब्धि की सूचना देता रहा। ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी 'अथ हरिवंश पुराण लिख्यते' लिखा है और ग्रन्थ प्राकृत भाषा में बतलाया गया है।"

आवश्यक प्रक्रिया पूरी कर श्री अरुणकुमार शास्त्री ने नवम्बर, ७८ में दोनों पाण्डुलिपियों का आधा-आधा भाग भेज दिया। मैं अनुगृहीत हूँ—श्री पन्नालाल दिग० जैन सरस्वती भवन की तीनों शाखाओं से सम्बद्ध विद्वानों (सर्वश्री पं० दयाचन्द शास्त्री उज्जैन, श्री श्रीनिवास शास्त्री झालरापाटन, श्री अरुणकुमार शास्त्री) का, उनके सौजन्यपूर्ण सहयोग के लिए।

तीनों पाण्डुलिपियों में जयपुरवाली प्रति (ज) अत्यन्त जीर्ण है। यदि सरस्वती भवन से उक्त दो पाण्डुलिपियाँ न मिलतीं, तो प्रस्तुत संस्करण के सम्पादन में संदेह बना रहता। यह भी संयोग की बात है कि जब मैं पुष्पदन्त के 'महापुराण' का अनुवाद कर रहा था, तब मेरा स्थानान्तर, इन्दौर से खंडवा हुआ था और अब जब मैंने 'रिट्ठणेमिचरिउ' के सम्पादन में हाथ लगाया तब पुनः स्थानान्तरित होकर खंडवा आया। अन्तर इतना ही है कि पहले इन्दौर से खंडवा सीधे आया था और अब भोपाल होकर आया। सत्ता की राजनीति में स्थानान्तरों की भूमिका नया मोड़ ले चुकी है। खंडवा के इस दूसरे प्रवास (सितम्बर १९७८ से अगस्त १९८० तक) में मैंने महावीर ट्रेडिंग कम्पनी, पंधाना रोड में रहकर यह खण्ड तैयार किया, इसके लिए मैं हूमड़ बन्धुओं का हृदय से आभारी हूँ।

मैं भारतीय ज्ञानपीठ के अध्यक्ष समादरणीय साहू श्रेयांस प्रसादजी का एवं मैनेजिंग ट्रस्टी श्री अशोक कुमार जैन का भी अत्यन्त अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने भारतीय ज्ञानपीठ से इसे प्रकाशित करने की स्वीकृति दी। साथ ही, मैं भाई लक्ष्मीचन्द्रजी का भी अनुगृहीत हूँ, उनकी इस उदारता के लिए। अपभ्रंश साहित्य के प्रकाशन में, भारतीय ज्ञानपीठ के माध्यम से साहू परिवार ने जो प्रयत्न किया है, वह चिरस्मरणीय और स्तुत्य है। प्राच्य विद्या के शोध अनुसंधान से सम्बन्ध रखनेवाले लोग इसके लिए उनके कृतज्ञ हैं।

इस अवसर पर मैं जैन तत्त्वज्ञान के मर्मज्ञ श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री और सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री तथा इतिहासमनीषी डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

१५-८-१९८० (स्वतन्त्रता दिवस)

—देवेन्द्र कुमार जैन

भूमिका

महाकवि स्वयंभू और उनका समय

"महाकवि स्वयंभू अपभ्रंश-साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होंने लोकरुचि का सर्वाधिक ध्यान रखा है। स्वयंभू की रचनाएँ अपभ्रंश की आख्यानात्मक रचनाएँ हैं, जिनका प्रभाव उत्तरवर्ती समस्त कवियों पर पड़ा है। काव्य-रचयिता के साथ स्वयंभू छन्दशास्त्र और व्याकरण के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

कवि स्वयंभू के पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पद्मिनी था। मारुतदेव भी कवि थे। स्वयंभू ने छन्द में 'तहा य माउरदेवस्स' लिखकर उनका निम्नलिखित दोहा उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है—

> सद्धउ मित्त भमंतेण रअणा अरचन्देण।
> सो सिज्जंते सिज्जइ वि तह भरइ भरंतेण[1]॥

स्वयंभूदेव गृहस्थ थे, मुनि नहीं। 'पउमचरिउ' से अवगत होता है कि इनकी कई पत्नियाँ थीं, जिनमें से दो के नाम प्रसिद्ध हैं—एक अइच्चंबा (आदित्यम्बा) और दूसरी सामिअंबा। ये दोनों ही पत्नियाँ सुशिक्षिता थीं। प्रथम पत्नी ने अयोध्याकाण्ड और दूसरी ने विद्याधर-काण्ड की प्रतिलिपि की थी। कवि ने उक्त दोनों काण्ड अपनी पत्नियों से लिखवाये थे।

स्वयंभूदेव के अनेक पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे पुत्र त्रिभुवनस्वयंभू थे। श्री प्रेमीजी का अनुमान है कि त्रिभुवनस्वयंभू की माता का नाम सुअब्बा था, जो स्वयंभूदेव की तृतीय पत्नी थी। श्री प्रेमीजी ने अपने कथन की पुष्टि के लिए निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है—

> सव्वे वि सुआ पंजरसुअव्व पढ़ि अक्खराइं सिक्खंति।
> कइराअस्स सुओ सुअव्व-सुइ-गब्भ संभूओ॥[2]

अपभ्रंश में 'सुअ' शब्द से सुत और शुक दोनों का बोध होता है। इस पद्य में कहा है कि सारे ही सुत पिंजरे के सुओं के समान पढ़े हुए ही अक्षर सीखते हैं, पर कविराजसुत त्रिभुवन 'श्रुत इव श्रुतिगर्भसम्भूत' हैं। यहाँ श्लेष द्वारा सुअब्बा के शुचि गर्भ से उत्पन्न त्रिभुवन अर्थ भी प्रकट होता है। अतएव यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि त्रिभुवनस्वयंभू की माता का नाम सुअब्बा था।

स्वयंभू शरीर से बहुत दुबले-पतले और ऊँचे कद के थे। उनकी नाक चपटी और दाँत विरल थे। स्वयंभू का व्यक्तित्व प्रभावक था। वे शरीर से क्षीण काय होने पर भी ज्ञान से पुष्टकाय थे। स्वयंभू ने अपने वंश, गोत्र आदि का निर्देश नहीं किया, पर पुष्पदन्त ने अपने

● डॉ० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य की कृति 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा' भाग ३ से जीवन-परिचय, प्रकाशक द्वारा साभार।

१. अनेकान्त, वर्ष ५, किरण ८—९, पृ० २९९

२. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३७४

महापुराण में इन्हें आपुलसंघीय बताया है। इस प्रकार ये यापनीय सम्प्रदाय के अनुयायी जान पड़ते हैं।

स्वयंभू ने अपने जन्म से किस स्थान को पवित्र किया यह कहना कठिन है, पर यह अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है कि वे दाक्षिणात्य थे। उनके परिवार और सम्पर्की व्यक्तियों के नाम दक्षिणात्य हैं। मारुतदेव, धवलइया, बन्दइया, नाग, आइच्चंबा, सामिअंब्बा आदि नाम कर्नाटकी हैं। अतएव इनका दाक्षिणात्य होना अबाधित है।

स्वयंभूदेव पहले धनञ्जय के आश्रित रहे और पश्चात् धवलइया के। 'पउमचरिउ' की रचना में कवि ने धनञ्जय का और 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचना में धवलइया का प्रत्येक सन्धि में उल्लेख किया है।

स्थितिकाल

कवि स्वयंभूदेव ने अपने समय के सम्बन्ध में कुछ भी निर्देश नहीं किया है, पर इनके द्वारा स्मृत कवि और अन्य कवियों द्वारा इनका उल्लेख किये जाने से इनके स्थितिकाल का अनुमान किया जा सकता है। कवि स्वयंभूदेव ने 'पउमचरिउ' और 'रिट्ठणेमिचरिउ' में अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनके कुछ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। इससे उनके समय की पूर्वसीमा निश्चित की जा सकती है। पांच महाकाव्य, पिंगल का छन्दशास्त्र, भरत का नाट्यशास्त्र, भामह और दण्डी के अलंकारशास्त्र, इन्द्र के व्याकरण, व्यास-बाण का अक्षराडम्बर, श्रीहर्ष का निपुणत्व और रविषेणाचार्य की रामकथा उल्लिखित है। इन समस्त उल्लेखों में रविषेण और उनका पद्मचरित ही अर्वाचीन है। पद्मचरित की रचना वि० सं० ७३४ में हुई है। अतएव स्वयंभू के समय की पूर्वावधि वि० सं० ७३४ के बाद है।

स्वयंभू का उल्लेख महाकवि पुष्पदन्त ने अपने पुराण में किया है और महापुराण की रचना वि० सं० १०१६ में सम्पन्न हुई है। अतएव स्वयंभू के समय की उत्तरसीमा वि० सं० १०१६ है। इस प्रकार स्वयंभूदेव वि० सं० ७३४---१०१६ वि० सं० के मध्यवर्ती हैं। श्री प्रेमीजी ने निष्कर्ष निकालते हुए लिखा है—'स्वयंभूदेव हरिवंशपुराण के कर्त्ता जिनसेन से कुछ पहले ही हुए होंगे, क्योंकि जिस तरह उन्होंने 'पउमचरिउ' में रविषेण का उल्लेख किया है, उसी तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' में हरिवंश के कर्त्ता जिनसेन का भी उल्लेख अवश्य किया होता यदि वे उनसे पहले हो गये होते। इसी तरह आदिपुराण, उत्तरपुराण के कर्त्ता जिनसेन, गुणभद्र भी स्वयंभूदेव द्वारा स्मरण किये जाने चाहिए थे। यह बात नहीं जँचती कि बाण, श्रीहर्ष आदि अजैन कवियों की तो चर्चा करते और जिनसेन आदि को छोड़ देते। इससे यही अनुमान होता है कि स्वयंभूदेव दोनों जिनसेनों से कुछ पहले हो चुके होंगे। हरिवंश की रचना वि० सं० ८४० में समाप्त हुई थी। इसलिए ७३४ से ८४० के बीच स्वयंभू का समय माना जा सकता है। डॉ० देवेन्द्र जैन ने इनका समय ई० ७८३ अनुमानित किया है। यह अनुमान ठीक सिद्ध होता है।"

रचनाएँ

कवि की अभी तक कुल तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं और तीन रचनाएँ उनके नाम पर और मानी जाती हैं--

१. पउमचरिउ, २. रिट्ठणेमिचरिउ, ३. स्वयंभूछन्द ४. सोद्धयचरिउ, ५. पंचमिचरिउ, ६. स्वयंभूव्याकरण।[१]

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० ३८७।

श्रीमद्भागवत : कृष्ण-कथा

श्रीमद्भागवत में परीक्षित के पूछने पर आचार्य शुकदेव बताते हैं—प्राचीन काल में यदुवंशी राजा शूरसेन मथुरापुरी में रहकर माथुर मण्डल और शूरसेन मण्डल का शासन करने लगे। उनके पुत्र वसुदेव देवकी से विवाह कर उसके साथ घर जाने को तैयार हुए। देवकी कंस की चचेरी बहन थी। उसे प्रसन्न करने के लिए वह घोड़ों की रास पकड़ लेता है और स्वयं रथ हाँकता है। इतने में यह आकाशवाणी होती है कि देवकी के आठवें गर्भ से जो सन्तान होगी वह कंस की मृत्यु का कारण होगी। कंस भोजकवंशी है। वह देवकी को ही मार डालना चाहता है। न होगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। वसुदेव के यह वचन देने पर कि प्रत्येक सन्तान उसे सौंप दी जाएगी, कंस अपना विचार बदल देता है। पहला पुत्र होता है और वसुदेव उसे लेकर कंस के पास पहुँचते हैं। कंस उनकी सत्यनिष्ठा देखकर तथा यह सोचकर कि उसकी मौत आठवीं सन्तान के हाथ में है, नवजात शिशु को वापस कर देता है। इस बीच देवर्षि नारद कंस को बताते हैं कि यदुवंशी देवता हैं और कंस की मृत्यु की तैयारी निश्चित रूप से हो रही है। कंस हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़कर वसुदेव-देवकी को बन्दीघर में डाल देता है। छह पुत्रों की हत्या के बाद, विष्णु भगवान् योगमाया को वृन्दावन भेजते हैं और कहते हैं कि देवकी के गर्भ में स्थित 'शेष' के अंश को रेवती के गर्भ में रख आओ। वह स्वयं देवकी के गर्भ में आते हैं और योगमाया यशोदा के गर्भ में स्थित होती है। कृष्ण का जन्म होते ही बन्दीगृह के लोहे के दरवाजे स्वतः खुल जाते हैं। शेषनाग अपने फनों से शिशु को वर्षा से बचाते हैं। वसुदेव कृष्ण के बदले में नन्द की कन्या लेकर व्रज से वापस लौटते हैं। कंस को संतान होने की सूचना दी जाती है। कंस आकर कन्या को पछाड़ता है। वह योगमाया बनकर आकाश में चली जाती है, यह कहते हुए कि, "हे कंस, तेरा मारनेवाला कहीं पैदा हो गया है।" कंस वसुदेव-देवकी को बन्धनमुक्त कर उनसे क्षमा-याचना करता है। कंस के दैत्य मंत्री नगर-गाँवों के बच्चों के वध की योजना बनाते हैं।

शिशु धीरे-धीरे बढ़ता है। नन्द वार्षिक कर चुकाने के बहाने मथुरा जाते हैं और वसुदेव से मिलकर वापस आते हैं। पूतना राक्षसी शिशु का वध करने आती है। वह बालक को दूध पिलाती है। लेकिन बालक दूध के साथ उसके प्राण भी पीने लगता है। वह प्राण छोड़ देती है। नन्द को मथुरा से लौटने पर इस घटना का पता चलता है। करवट बदलने के उत्सव में शिशु छकड़े के नीचे सो रहा है, यशोदा व्यस्तता के कारण दूध पिलाना भूल जाती है। बालक के पाँव से छकड़ा उलट जाता है। आहट पाकर यशोदा आती है और शिशु को उठा लेती है। तृणावर्त बवंडर बनकर आता है, और धूल फैलाकर शिशु को आकाश में ले जाता है। बालक गला दबाकर उसे मार डालता है। यदुवंश के आचार्य गर्ग नन्द से मिलने आते हैं और चुपचाप बालक का नामकरण संस्कार करते हैं। कृष्ण बलराम के साथ क्रीड़ाएँ करते हैं। वे घुटनों, हाथों के बल चलते हैं, कभी घिसटते हैं, पाँव के घुँघरू बज उठते हैं। वे माताओं के पास आते हैं। बड़े होने पर, वे दोनों व्रज के बाहर लीलाएँ करते हैं। वे व्रजबालाओं को निहाल कर तरह-तरह के खेल खेलते हैं। व्रजबालाएँ यशोदा से शिकायत करती हैं : वह दुहने के पहले बछड़ा छोड़ देता है, डाँटने पर हँसता है। बन्दरों को दूध-दही खिलाकर मटके फोड़ देता है। छींके पर रखा दही पाने के लिए वह क्या-क्या नहीं करता? पीढ़े पर पीढ़ा रखता है, ऊखल पर चढ़ता है,

किसी बालक के कन्धे पर चढ़ता है। अँधेरे में रखी चीज़ों को वह मणिमय आभूषणों के प्रकाश में पहचान लेता है। कहने पर ढिठाई करता है। नन्द और यशोदा पूर्वभव में द्रोणवसु और धरा थे। ब्रह्मा के आशीर्वाद से वे इस जन्म में नन्द और यशोदा हुए। एक बार दही मथती हुई यशोदा के पास बालक कृष्ण आता है। वह दही मथना छोड़कर दूध पिलाने लगती है। फिर उफनते दूध को उतारने जाती है। बालक को क्रोध आ जाता है और वह दही का मटका फोड़कर दूसरे कक्ष में चला जाता है। पूर्वभव के कुबेरपुत्र (नलकूबर और मणिग्रीव) को नारद ने वृक्ष बनने का अभिशाप दिया था। श्रीकृष्ण ऊखल घसीटते हुए यमलार्जुन वृक्ष के पास पहुँचते हैं, जो अभिशप्त नरकूबर थे। वह उनके बीच से निकलते हैं और वे दोनों वृक्ष तड़तड़ करके टूट जाते हैं। उत्पातों के डर से नन्द गोकुल से वृन्दावन जाने का फैसला करते हैं। वृन्दावन में बसने के बाद, एक दैत्य वहाँ बछड़ा बनकर आता है। श्रीकृष्ण उसकी पूँछ पकड़कर कैथ वृक्ष पर पछाड़ देते हैं। फिर बकासुर का नाश करते हैं। उसके बाद अघासुर का। अघासुर अजगर का रूप बनाकर लेट जाता है। कृष्ण उसके मुँह में घुसकर उसे फाड़ देते हैं। एक बार वह वन में बछड़ों को ढूँढने जाते हैं। इधर ब्रह्मा कुतूहलवश ग्वालबालों को छिपा देता है। ब्रह्मा को छकाने के लिए वे स्वयं बछड़ा बन जाते हैं। वह ब्रह्मा को मोहित करते हैं। उन्हें सभी बालक और बछड़े कृष्ण स्वरूप दिखाई देते हैं। ब्रह्मा उनकी स्तुति करते हैं।

छह वर्ष के होने पर दोनों भाई गायें चराने जाते हैं। श्रीकृष्ण बलराम की स्तुति करते हैं। श्रीदामा और स्तोक कृष्ण से पड़ोस के वन में चलने का आग्रह करते हैं। वहाँ वे गधे रूप में आये हुए दैत्य का संहार करते हैं। धेनुकासुर, भाई के मारे जाने पर, उनपर आक्रमण करता है। वे उसे परिवार के लोगों सहित ताड़ के वृक्ष पर पछाड़ देते हैं। घर लौटते हैं। यमुना के कुण्ड में रहनेवाले कालियानाग को नाथ देते हैं। नाग और उसकी पत्नियाँ भगवान् की स्तुति करती हैं। शुकदेव परीक्षित को कालियानाग का पूर्व वृत्तान्त बताते हैं। श्रीकृष्ण दिव्य माला गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और स्वर्ण-आभूषणों से अलंकृत होकर निकलते हैं। नन्द को चिन्ता। दावानल से स्वजनों का उद्धार। दोनों ग्वालबालों के साथ वन में क्रीड़ा करते हैं। एक राक्षस ग्वालबाल बनकर आता है, वह मित्र बनता है। ग्वालबाल भांडीर वट वृक्ष के पास पहुँचते हैं। प्रलम्बासुर बलराम को पीठ पर लाद कर भागना चाहता है परन्तु वह ऐसा कर नहीं पाता। बलराम उसे मार देते हैं। गायें गुंजाटवी (सरकंडों के वन) में घुस जाती हैं। वे पता लगाकर उस वन में पहुँचते हैं। तभी वन में आग लग जाती है। वह योगमाया से आग पी लेते हैं और गायें लेकर वापस आ जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं में वह वन में क्रीड़ा करते हैं। शरदऋतु में वेणुगीत का आयोजन होता है। मुरली की तान सुनकर गोपियाँ व्याकुल हो उठती हैं, वे वृन्दावन की हर चीज़ की सराहना करती हैं, उन्हें प्रेम की व्याधि लग जाती है। वे प्रतिदिन लीलाओं का स्मरण करती हैं। हेमन्त ऋतु में कात्यायनी देवी की पूजा करती हैं। सवेरे-सवेरे समूह में लीलागान करती हुई यमुना में स्नान करती हैं। कृष्ण वस्त्र उठा लेते हैं और अकेले या सामूहिक रूप में आकर वस्त्र लेने की बात करते हैं। (चीरहरण का अभिप्राय वृत्तियों का आवरण नष्ट हो जाना है और उनका, वृत्तियों का, आत्मा में रम जाना 'रास' है। गीता में धर्म से अविरुद्ध काम को परमात्मा का स्वरूप माना गया है।)

भूख मिटाने के लिए ग्वालबाल आंगिरस यज्ञ में पहुँचते हैं, जो वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा आयोजित था। ग्वालबाल कहते हैं—"हमें बलराम और श्रीकृष्ण ने भूख मिटाने आपकी

यज्ञशाला में भेजा है अतः थोड़ा भात दे दीजिए।" वेदवादी ब्राह्मण उन्हें मना कर देते हैं। ग्वालबाल भूखे वापस आ जाते हैं। श्रीकृष्ण उन्हें ब्राह्मणों की पत्नियों के पास भेजते हैं, वे उन्हें अशन-वसन से संतुष्ट कर देती हैं। वे भगवान के दर्शन करती हैं। श्रीकृष्ण उनके प्रेम का अभिनन्दन करते हैं। वेदपाठी ब्राह्मण पछताते हैं। इसी प्रकार वे 'इन्द्रयज्ञ' का विरोध करते हैं, और जब इन्द्र कुपित होकर वर्षा करता है तो गोवर्धन उठाकर, उसका घमण्ड चूर-चूर कर देते हैं। स्वर्ग से आकर कामधेनु बधाई देती है और इन्द्र भी क्षमा माँगता है। वरुण का सेवक एक असुर नन्द को पकड़कर ले जाता है, कृष्ण उन्हें छुड़ाकर लाते हैं। वरुण आकर उनकी स्तुति करता है। शरद् ऋतु में रासलीला प्रारम्भ होती है। वंशी की धुन सुनकर, गोपियाँ चल देती हैं। वे प्रियवियोग से विकल हैं। वे कृष्णमय हो उठती हैं:

'पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिः
भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्।'

अर्थात् जो आकाश के समान भीतर-बाहर सब जगह स्थित हैं उनके बारे में गोपियाँ पेड़ पौधों से पूछने लगती हैं।

श्रीकृष्ण थोड़ी दूर ही थे। वे कृष्ण की लीलाओं का अभिनय करती हैं, कृष्ण की खोज में निकलती हैं। उन्हें किसी गोपी के चरणचिह्न के साथ भगवान् के चरणचिह्न दीख पड़ते हैं। उस गोपी को वे कृष्ण की आराधिका समझती हैं, वे कृष्णमय हो उठती हैं, व्याकुल होकर कृष्ण के आने की प्रतीक्षा करती हैं। वे श्रीकृष्ण के पिछले कार्यों का पुण्य स्मरण करती हैं, अधरामृत के पान से जीवनदान की प्रार्थना करती हैं और फूट-फूट कर रो पड़ती हैं। श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं, गोपियाँ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में उनका प्रतिग्रहण करती हैं। श्रीकृष्ण व्रजबालाओं को साथ लेकर यमुना-तीर जाते हैं। यहाँ गोपियों के पूछने पर प्रेम की विभिन्न स्थितियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं—ये स्थितियाँ चार हैं—एक, जो अपने स्वरूप में मस्त रहते हैं, उन्हें द्वैत नहीं भासता। दूसरे, वे हैं जिन्हें द्वैत की प्रतीति है, परन्तु वे कृतकृत्य हो चुके हैं। तीसरे, वे हैं जो यह नहीं जानते कि कौन हमसे प्रेम करता है। चौथे, वे हैं जो हित या प्रेम करनेवालों से भी द्रोह करते हैं। कृष्ण कहते हैं—"मैं प्रेम करनेवालों से इसलिए प्रेम नहीं करता क्योंकि मैं चाहता हूँ कि प्रेम करनेवालों की वृत्ति मुझ में लगी रहे। इसीलिए मैं मिल-मिलकर छिप जाता हूँ।" यमुना के किनारे वे रासलीला करते हैं। वे स्वयं दो-दो गोपियों के बीच प्रगट हो जाते हैं। प्रत्येक गोपी समझती है कि उनका प्रिय उनके साथ है।

रास के मूल में रस शब्द है 'रसो वै सः'। रस स्वयं श्रीकृष्ण हैं। जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में परिणत हो जाए वह रास है। इस में वंशीध्वनि गोपियों का अभिसार, श्रीकृष्ण से उनकी बातचीत, रमण राधा के साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियों द्वारा दिए गए वसनासन पर बैठना, कूट प्रश्नों का उत्तर, रासनृत्य, जलकेलि और वन-विहार जैसी अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। श्रीकृष्ण के इस चिन्मय रासविलास का जो श्रद्धा से बार-बार श्रवण और मनन करता है, उसे पराभक्ति प्राप्त होती है।

नन्दबाबा अन्य गोपों के साथ जाकर शिवरात्रि के दिन पशुपतिनाथ शंकर और अम्बिकाजी का भक्तिपूर्वक पूजन करते हैं। एक अजगर नन्द को निगलना चाहता है कि तभी भगवान् उसे

भस्म कर देते हैं। यह पूर्वभव में सुदर्शन नामक विद्याधर था जो शाप के कारण अजगर योनि को प्राप्त हुआ था। वह श्रीकृष्ण की अनुज्ञा लेकर चला जाता है। एक बार श्रीकृष्ण और बलराम गोपियों के साथ, पास के वन में स्वच्छन्द विहार करते हैं। कुबेर का अनुचर शंखचूड़ 'यक्ष' गोपियों का अपहरण करता है। दोनों भाई शालवृक्ष लेकर दौड़ते हैं। श्रीकृष्ण पीछा कर एक घूंसे में उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। वह उसका चमकीला मणि लेकर आ जाते हैं और बलराम को दे देते हैं।

'युगलगीत' में गोपियों की वह प्रतिक्रिया व्यक्त है जो उस समय उनके मन में उत्पन्न होती है जब कृष्ण प्रतिदिन वन में गाय चराने जाते हैं। इनमें कृष्ण का सौन्दर्य, चेष्टाएँ, अलंकरण आदि बातें समाहित हैं। एक दिन कृष्ण के व्रज में प्रवेश करने के समय अरिष्ट दैत्य आता है। कृष्ण उसका वध करते हैं। अरिष्टासुर के वध के बाद नारद कंस को वस्तुस्थिति बताते हैं। कंस क्रुद्ध होकर वसुदेव को मार डालना चाहता है। नारद मना करते हैं। कंस वसुदेव और देवकी को बन्दीगृह में फिर से भिजवा देता है। वह केशी से वृन्दावन जाकर दोनों को मार डालने का आदेश देता है। मंचों और अखाड़ों का निर्माण होता है। कंस कृष्ण को लाने के लिए यदुवंशी अक्रूर को भेजता है। अक्रूर धनुषयज्ञ का निमंत्रण लेकर जाते हैं। केशी दैत्य अश्व के रूप में आता है। श्रीकृष्ण उसे परास्त करते हैं। देवता फूल बरसाते हैं। नारद आकर श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं तथा भावी घटनाओं और वधों का पूर्व उल्लेख करते हैं। गोचारण के समय, वह भ्यामासुर का वध करते हैं। अक्रूर व्रज की यात्रा करते हैं। नाना कल्पनाएँ करते हुए वे आते हैं। व्रजभूमि में पहुँचकर वह रथ से उतरकर व्रज की धूलि में लोट जाते हैं। दोनों भाई उन्हें घर के भीतर ले जाते हैं। नन्दबाबा यह मुनादी करवा देते हैं कि कल वे मथुरा मेला देखने जाएँगे और राजा को गोरस देंगे। गोपियों पर इसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है। वे अक्रूर को भला-बुरा कहती हैं। यमुना किनारे पहुँचकर अक्रूर स्नान करते हैं, वे दोनों भाइयों को रथ पर छोड़ आये थे, परन्तु उन्हें जल में देखकर वह आश्चर्यचकित रह जाते हैं। जल में उनका विष्णु रूप प्रतिबिम्बित है। अक्रूर उनकी स्तुति करते हैं। व्रजवासी गोप और नन्द पहले से ही मथुरा के बाहर उपवन में ठहरे हुए हैं। कृष्ण और बलराम अक्रूर को मथुरा भेज देते हैं और स्वयं वहीं ठहर जाते हैं। अक्रूर कंस को कृष्ण के आने की सूचना देते हैं। कृष्ण के मथुरा में प्रवेश करने पर वहाँ की वनिताओं की प्रतिक्रिया। धोबी से कपड़े लूटते हुए, दर्जी से प्रसन्न होते हुए, सुदामा माली के घर जाते हैं। वह उनकी पूजा करता है। रास्ते में उनकी कुब्जा से भेंट होती है, जो चन्दन का पात्र लेकर जा रही थी। वह अंगभंग के साथ, अपने को समर्पित कर देती है। श्रीकृष्ण उसके अंगों को सीधा कर देते हैं। वह एक सुन्दर स्त्री बन जाती है। वह घर चलने का आग्रह करती है। कृष्ण बाद में आने का आश्वासन देकर आगे बढ़ जाते हैं।

रंगशाला में धनुष चढ़ाकर और सेना को परास्त कर कृष्ण-बलराम आगे बढ़ते हैं। यह समाचार सुनकर कंस आग-बबूला हो जाता है। दूसरे दिन मल्लयुद्ध का आयोजन होता है जिसमें दोनों भाग लेते हैं। कुवलयपीड का उद्धार कर वह अखाड़े में मल्लों को पराजित करते हैं—कृष्ण चाणूर को और बलराम मुष्टिक को। कृष्ण कंस का काम तमाम कर देते हैं। कंस

की अन्तेष्टि के बाद, वे माता-पिता (वसुदेव-देवकी) को बन्धन-मुक्त करते हैं और कहते हैं कि हम आपके पुत्र हैं, परन्तु बाल्य और किशोरावस्था के सुख नहीं दे सके । वे नाना उग्रसेन को यदुवंशियों का राजा बना देते हैं, क्योंकि ययाति के शाप के कारण यदुवंशी राज-सिंहासन पर नहीं बैठ सकते । वसुदेव दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार कराते हैं । वहाँ से वे काश्यप-गोत्रीय सान्दीपिनी मुनि के आश्रम में उज्जयिनी आते हैं। गुरुदक्षिणा के रूप में प्रभासक्षेत्र के समुद्र में डूबकर मरे हुए गुरुपुत्र को वे दोनों शंखासुर को मारकर यम के पास से ले आते हैं । विद्याध्ययन के पश्चात् वे मथुरापुरी लौट आते हैं । कृष्ण के अनुरोध पर उद्धव (वृष्णिवंश के प्रमुख पुरुष) व्रज की यात्रा करते हैं। वहाँ उनका सम्मान होता है । आगत-स्वागत और कुशल-मंगल के बाद, उद्धव व्रज का कृष्ण के प्रति अनुराग देखकर आनन्दमग्न हो जाते हैं । फिर वे मथुरा के सारे समाचार देकर बताते हैं कि श्रीकृष्ण शीघ्र व्रज में आयेंगे । दूसरे दिन नन्द के द्वार पर स्वर्णरथ देखकर गोपियाँ आशंकित हो उठती हैं। उन्हें उद्धव कृष्ण के समान दिखाई पड़ते हैं । वे उद्धव से उलाहने के स्वर में कहती हैं, "कृष्ण ने माँ-बाप के समाचार के लिए आपको भेजा है, उन्हें गोकुल से क्या लेना-देना ? दूसरे से प्रेम सम्बन्ध का स्वांग स्वार्थवश होता है, वैसे ही जैसे कि भ्रमरों का फूलों से ।" इस प्रकार एक के बाद एक आरोप लगाती हुई वे यह भूल जाती हैं कि उन्हें किसके सामने क्या कहना चाहिए । वे आत्म-विस्मृत हो उठती हैं । एक गोपी को भ्रमर देखकर ऐसा लगता है कि जैसे प्रिय ने समझाने के लिए दूत भेजा हो । उस समय उसे मिलन-लीला की याद आ रही होती है । वह उस भ्रमर से कहती है—

"तू कपटी का सखा है, इसलिए तू भी कपटी है । तू मेरे पैरों को मत छू । झूठे प्रणाम कर अनुनय-विनय मत कर । मेरी सौतों की मली गयी वनमाला का पराग तेरी मूँछ पर लगा है । तू फूल से स्वयं प्रेम नहीं करता । यहाँ-वहाँ उड़ा करता है । जैसे तेरे स्वामी वैसा ही तू । उन्होंने तुझे व्यर्थ भेजा । तू काला वह काले । " वे लक्ष्मी के प्रति सहानुभूति दिखाती हैं जो कृष्ण की चिकनी बातों में आकर सेवा में लगी रहती हैं । "तुम जो उनकी ओर से चापलूसी कर रहे हो वह व्यर्थ है । घरबार-विहीन हमारे सामने कृष्ण का गुणगान किस काम का ? तू यहाँ से जा, वे हमारे लिए पुराने हैं। तू मथुरावासिनियों के आगे उनका गुणगान कर । वे नयी हैं और उनकी लीलाओं से अपरिचित हैं । उन्होंने उनकी पीड़ा मिटा दी है, वे तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करेंगी और मुँहमाँगी वस्तुएँ देंगी ।" वे स्वीकार करती हैं कि ऐसा कौन है जो उनके प्रति आकृष्ट न हो, परन्तु यथार्थतः वे उदात्त हैं तो दीनों पर उनकी कृपा होनी चाहिए । "हे भ्रमर, तू मेरे पैर मत पड़ । तेरी दाल यहाँ नहीं गलेगी ।"

कृष्ण के पौराणिक कृत्यों की आलोचना करती हुई गोपियाँ कहती हैं कि काली वस्तु से प्रेम करना खतरनाक होता है । वह यह भी कहती हैं कि कृष्ण-कथा का चसका छोड़ना उनके लिए असंभव है । "फिर भी तुम प्रिय के सखा हो, हमें मनाने के लिए तुम्हें भेजा गया है, तुम हमारे लिए माननीय हो, जो चाहिए हो वह ले लो ।" अन्त में वह आर्यपुत्र की कुशल-मंगल पूछती हैं। वे जानना चाहती हैं कि क्या कभी उनसे मिलने का अवसर आएगा ?

उत्तर में उद्धव कहते हैं—"तुम्हारा जीवन सफल है । तुम पूज्य हो क्योंकि तुमने अन्य साधनों को छोड़कर प्रेमाभक्ति से प्रभु का साक्षात्कार किया है । स्वजनों की उपेक्षा कर तुम ने श्रीकृष्ण को पति रूप में वरण किया है । वियोग में तुमने प्रेमाभक्ति की उच्चभूमिका को प्राप्त कर लिया है । तुम्हारे लिए कृष्ण का यह सन्देश है : 'मैं सबका उपादान कारण हूँ, सब में

अनुगत हूँ, अतः वियोग का प्रश्न ही नहीं उद्धव ! सारे सत्त्व तुममें आकर उसी प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार समुद्र में नदियाँ। मैं तुमसे मिलूँगा, निराश होने का कोई कारण नहीं।"

यह सुनकर गोपियाँ संतुष्ट हो जाती हैं। वे कृष्ण की एक-एक लीला का स्मरण करती हैं। कृष्ण की सामाजिक और राजनैतिक सफलताओं पर वे हर्ष प्रकट करती हैं। वे जानना चाहती हैं कि क्या मथुरा की स्त्रियों के प्रति भी उनका ऐसा ही प्रेम है। दूसरी सखी कहती है, "वे प्रेम-मोहिनी कला के विशेषज्ञ हैं अतः ऐसी कौन होगी जो उन पर नहीं रीझेगी ?" तीसरी गोपी पूछती है, "नागरिक स्त्रियों से कभी उनकी बात चलती है या नहीं ? क्या कृष्ण उन रात्रियों का स्मरण करते हैं जिनमें हमने रासलीला की थी ? क्या वे फिर हमारी सुध लेंगे ?" एक गोपी को यह आशंका है कि राजा बनने पर उन्हें कई राजकुमारियाँ मिल सकती हैं, फिर वे हमारी याद क्यों करने लगे ? अपना काम पूर्ण होने से, उन्हें किसी से क्या प्रयोजन ?" एक पिंगला वेश्या की यह बात दुहराती है कि "आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है (परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरि-ण्याह पिंगला) फिर भी उनकी आशा छोड़ना सम्भव नहीं। गोपियाँ उद्धव को सारे स्थान दिखाती हैं जिनसे कृष्ण का सम्बन्ध था। वे वियोग में कृष्ण से अपनी रक्षा चाहती हैं।

लेकिन उद्धव के माध्यम से प्रिय का सन्देश सुनकर गोपियाँ शान्त हो रहती हैं। उद्धव महीनों व्रज में रहते हैं। प्रिय में गोपियों की निष्ठा देखकर उद्धव प्रसन्न हो उठते हैं। वह प्रेममय दिव्य महाभाव बड़े-बड़े मुनियों को दुर्लभ है।

भगवान् की लीलाकथा का रस जिसने चख लिया वह भूल नहीं सकता। उद्धव वृन्दावन में रह जाना चाहते हैं जिससे गोपियों की चरणधूल मिल सके। वे व्रजरज को प्रणाम करते हैं। पश्चात् उद्धव मथुरा के लिए प्रस्थान करते हैं।

कुब्जा अपने घर पर कृष्ण और उद्धव की पूजा करती है। उद्धव आसन से उठकर जमीन पर बैठते हैं। वह कुब्जा के साथ क्रीड़ा करते हैं। फिर वे उद्धव के साथ लौटते हैं। वे और बलराम अक्रूर से उनके घर भेंट करते हैं। अक्रूर उनकी सेवा करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं। श्रीकृष्ण अक्रूर को पाण्डवों की कुशलता पूछने हस्तिनापुर भेजते हैं क्योंकि पाण्डु की मृत्यु के बाद धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी में ले आये हैं। अक्रूर जाकर सबसे मिलते हैं और स्थिति का अध्ययन करने के लिए महीनों वहाँ रहते हैं। अक्रूर धृतराष्ट्र का कुल-गौरव बढ़ाने की बात कहते हैं। धृतराष्ट्र स्वीकार करते हैं कि पुत्रों की ममता के कारण उनका चित्त विषम हो उठा है। बाद में अक्रूर मथुरा आकर श्रीकृष्ण को वहाँ का सारा समाचार सुनाते हैं।

शुकदेव परीक्षित् से कहते हैं—कंस की दो रानियाँ थीं, अस्ति और प्राप्ति। पति की मृत्यु के बाद वे अपने पिता जरासन्ध के पास चली जाती हैं। वह अपने दामाद के वध से क्रुद्ध होकर तेईस अक्षौहिणी सेना के साथ यदुवंशियों की राजधानी मथुरा को घेर लेता है। कृष्ण और बलराम जरासन्ध का सामना करते हैं। बलराम उसे ललकारते हैं। जरासन्ध सेना के साथ उन्हें घेर लेता है। मथुरा की वनिताओं में इसकी गहरी प्रतिक्रिया होती है। उन दोनों के प्रहार से जरासन्ध की सेना धराशायी हो जाती है। देवता फूल बरसाते हैं। कई बार यह क्रम चलता है। अठारहवीं बार कालयवन युद्ध करने आता है और म्लेच्छों की तीन करोड़ सेना के साथ मथुरा नगरी को घेर लेता है। कृष्ण और बलराम परामर्श कर पश्चिमी समुद्र में जलदुर्ग बन-वाने का फैसला करते हैं। वास्तुकला के अनुसार सुन्दर नगरी बसाई जाती जाती है। श्रीकृष्ण माया के द्वारा सबको वहाँ पहुँचा देते हैं। बलरामजी मथुरा में रहने लगते हैं और श्रीकृष्ण सादे

वेश में द्वारिका आ जाते हैं। कालयवन उनका पीछा करता है। श्रीकृष्ण उसको खूब छकाते हैं। श्रीकृष्ण पर्वत की गुफा में घुस जाते हैं। जरासन्ध गुफा में घुसता है। उसकी ठोकर से मुचुकन्द उठता है, उसकी क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल हो उठती है। मुचुकुन्द वस्तुतः मान्धाता का पुत्र था। श्रीकृष्ण उसे दर्शन देते हैं। फिर वे म्लेच्छसेना का नाश कर, सबका धन छीनकर द्वारिका आ जाते हैं।

जरासन्ध पुनः आक्रमण करता है। दोनों भाई भागते हैं, जरासन्ध उनका पीछा करता है। वे प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ जाते हैं। ढूंढने पर जब वे नहीं मिलते तो वह आग लगवा देता है और मान लेता है कि वे जल गये। पश्चात् जरासन्ध मगध देश लौट आता है।

रुक्मिणी विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या है। बड़े भाई का नाम रुक्मि है। चार छोटे भाई भी हैं—रुक्मरथ, रुक्ममालि, रुक्मबाहु और रुक्मकेश। रुक्मिणी श्रीकृष्ण में अनुरक्त है। रुक्मि कृष्ण से द्वेष रखता है। वह अपनी बहिन का विवाह शिशुपाल से कराना चाहता है। रुक्मिणी एक विश्वासपात्र ब्राह्मण श्रीकृष्ण के पास द्वारिकापुरी भेजती है। वह जाकर श्रीकृष्ण को सब वृत्तान्त सुनाता है। वे ब्राह्मण से कहते हैं, "मैं भी विदर्भकुमारी को चाहता हूं।" रुक्मिणी का संकेत था कि विवाह के एक दिन पूर्व होनेवाली देवी की कुलयात्रा में दुलहिन को जाना पड़ता है, इसलिए वहां नगर के बाहर गिरिजा के मन्दिर के सामने वह उनके चरणों की धूल प्राप्त करना चाहेगी।

इधर रुक्मि के जोर देने पर भीष्मक शिशुपाल से अपनी कन्या का विवाह करने की तैयारी कर रहे होते हैं। गिरिजा मन्दिर से श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर ले जाते हैं। रुक्मि प्रतिरोध करता है, परन्तु रुक्मिणी के भाई के प्राणों की भीख मांगने पर कृष्ण उसे विरूप बनाकर बहिन के दुपट्टे से बांध द्वारिका ले आते हैं। बलराम उसे मुक्त कर देते हैं। रुक्मि अपमान और लज्जा के कारण कुण्डिनपुर नहीं जाता, वह भोजकटक नगरी बसाकर उसमें रहने लगता है, इस प्रतिज्ञा के साथ कि वह कृष्ण को मारकर रुक्मिणी के साथ कुण्डिनपुर में प्रवेश करेगा।

श्रीमद्भागवत के अनुसार, कामदेव वासुदेव का ही अंश है। वह पहले रुद्रदेव की क्रोधाग्नि में भस्म हो गया था, जो अब रुक्मिणी के पुत्र के रूप में प्रद्युम्न के नाम से उत्पन्न हुआ। कामरूपी शम्बरासुर उन्हें उठाकर समुद्र में फेंक देता है। उसे एक मच्छ निगल लेता है। घूम-फिरकर वही मच्छ शम्बरासुर के रसोईघर में पहुँच जाता है। फाड़ने पर उसमें शिशु प्रद्युम्न निकलता है, जिसे दासी मायावती को दे दिया जाता है। मायावती पूर्व जन्म की रति है। वह दाल-भात बनाती है। वह शिशु को प्यार से पालती है। मायावती उस पर मुग्ध हो उठती है। प्रद्युम्न के पूछने पर वह अपना परिचय देती है। शम्बरासुर को मारने के लिए वह प्रद्युम्न को महामाया नाम की विद्या सिखाती है। प्रद्युम्न शम्बरासुर से युद्ध करता है। विजयी प्रद्युम्न को मायावती रति आकाशमार्ग से द्वारिकापुरी ले जाती है। प्रद्युम्न को देखकर रुक्मिणी को अपने पुत्र की याद आ जाती है। नारद वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हैं।

सत्राजित् ने पहले कृष्ण को कलंक लगाया था लेकिन अब वह स्यमंतक मणि सहित अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को दे देता है। यह मणि उसे सूर्य ने उपासना से प्रसन्न होकर दिया था। 'मणि' को देवमन्दिर में स्थापित कर दिया जाता है। वह मणि प्रतिदिन आठ भार[1] सोना

---

[1] भार का परिमाण : ४ व्रीहि = १ गुंजा, ५ गुंजा = १ पण, ८ पण = १ धरण, ८ धरण = १ कर्ष, ४ कर्ष = १ पल, १०० पल = १ तुला, २० तुला = १ भार।

देता है। श्रीकृष्ण वह मणि उग्रसेन को देने के लिए कहते हैं, जिसे वह अस्वीकार कर देता है। सत्राजित् का भाई प्रसेन वह मणि पहिनकर जंगल में जाता है। एक सिंह उसे मारकर मणि छीन लेता है, उससे ऋक्षराज जाम्बवान छीन लेता है। सत्राजित् कृष्ण पर शंका करता है। श्रीकृष्ण ऋक्षराज की गुफा से उस मणि को ढूँढ़कर लाते हैं। श्रीकृष्ण जाम्बवान को घूसों से मार डालते हैं। श्रीकृष्ण बारह दिनों तक जब गुफा से नहीं निकले तो लोग घर चले जाते हैं। श्रीकृष्ण के न लौटने पर द्वारिका में कुहराम मच जाता है। लोग सत्राजित् को बुरा-भला कहने लग जाते हैं। द्वारिकावाले दुर्गादेवी की उपासना करने लग जाते हैं। श्रीकृष्ण आकर सत्राजित् को मणि सौंप देते हैं। अन्त में श्रीकृष्ण उससे सत्यभामा स्वीकार कर लेते हैं, साथ ही वह स्यमंतक मणि न लेकर उसके बदले में उससे निकलने वाला सोना लेते रहना स्वीकार कर लेते हैं।

लाक्षागृह में पांडवों के जल मरने की बात सुनकर, श्रीकृष्ण और बलराम हस्तिनापुर जाते हैं और भीष्म पितामह आदि से मिलकर सान्त्वना प्रकट करते हैं। इधर द्वारिका में अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वा से कहते हैं, "तुम सत्राजित् से स्यमंतक मणि छीन लो, क्योंकि उसने हमसे छलकर सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याह दी।" पिता के वध को देखकर सत्यभामा जोर से बिलखती है, फलतः श्रीकृष्ण शतधन्वा को मार डालते हैं। अक्रूर और कृतवर्मा द्वारिका से भाग खड़े होते हैं। अक्रूर श्वफल्क के पुत्र थे। अक्रूर के द्वारिका से चले जाने पर वहाँ बहुत उत्पात होते हैं। श्रीकृष्ण अक्रूर को बुलवाते हैं और स्यमंतक मणि के बारे में पूछते हैं और एक बार उसे दिखा देने के लिए कहते हैं जिससे बलराम, सत्यभामा और जाम्बवती का सन्देह दूर हो जाए।

सबका सन्देह दूर कर श्रीकृष्ण वह मणि अक्रूर को लौटा देते हैं। इसके बाद श्रीकृष्ण के कई विवाह हुए। वह पाण्डवों से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ जाते हैं। वर्षाकाल वहीं बिताते हैं। वे अर्जुन के साथ शिकार खेलने जाते हैं। सूर्यपुत्री कालिन्दी, जो यमुना में रहती है, कृष्ण से विवाह करती है। वे युधिष्ठिर के पास जाते हैं। श्रीकृष्ण विश्वकर्मा से कहकर पाण्डवों के लिए सुन्दर भवन का निर्माण करा देते हैं। खांडव वन अग्निदेव को दिलवाने के लिए वे अर्जुन के सारथी बन जाते हैं। खांडव वन में भोजन मिल जाने पर अग्निदेव प्रसन्न होकर गांडीव धनुष, चार श्वेत घोड़े, एक रथ, दो अटूट बाणों वाले तरकस और अभेद्य कवच देते हैं।

कृष्ण द्वारिका लौटते हैं। वहाँ कालिन्दी का पाणिग्रहण करते हैं। अवन्ती के राजा विन्द और अनुविन्द दुर्योधन के पक्षधर हैं, उनकी बहन मित्रवृन्दा कृष्ण को चाहती है। वह उनकी बुआ की कन्या है। कृष्ण कोसल देश के राजा की कन्या सत्या से भी विवाह सात बैलों को परास्त कर करते हैं। वह द्वारिका आ जाते हैं। कृष्ण की बुआ श्रुतकीर्ति केकय देश में रहती है। उसकी कन्या भद्रा है। उसका भाई सन्तर्दन उसे कृष्ण को दे देता है। मद्रदेश के राजा की कन्या सुलक्षणा का कृष्ण स्वयंवर में हरण करते हैं। भौमासुर का वधकर कृष्ण उसकी सोलह हजार कन्याओं का उद्धार करते हैं और उनसे विवाह कर लेते हैं। पश्चात् श्रीकृष्ण गदा के प्रहार से मुर राक्षस का अन्त करते हैं। भौमासुर के वध पर श्रीकृष्ण के गले में पृथ्वी वैजयंती माला डाल देती है। वह कुण्डल, वरुण का छत्र और महामणि भी देती है। भगवान् की स्तुति के स्वर निकलते हैं। भौमासुर के पुत्र भगदत्त को अभयदान मिलता है।

श्रीकृष्ण इन्द्र के उपवन से कल्पवृक्ष उखाड़ कर लाते हैं और द्वारिका के उपवन में उसे लगा देते हैं। राजकुमारियाँ श्रीकृष्ण की सेवा करती हैं। रुक्मिणी श्रीकृष्ण की सबसे प्रिय पत्नी है। रुक्मि की कन्या रुक्मिवती स्वयंवर में प्रद्युम्न का वरण करती है। रुक्मिणी की कन्या चारुमती का विवाह कृतवर्मा के पुत्र बाल से होता है। रुक्मि अपनी पोती रुक्मिणी के पोते (नाती) अनिरुद्ध को ब्याह देता है, यद्यपि यह विवाह धर्म के अनुकूल नहीं होता। विवाहोत्सव में रुक्मि बलराम से जुआ खेलता है और मारा जाता है।

बाणासुर महात्मा बलि का पुत्र है। ताण्डवनृत्य में वाद्य बजाकर उसने शिव को प्रसन्न कर लिया है। उसकी कन्या ऊषा स्वप्न में प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को देखकर मोहित हो जाती है। उसकी सहेली चित्रलेखा कई चित्र बनाती है। उनमें से वह अनिरुद्ध को अपना प्रिय बताती है। चित्रलेखा आकाशमार्ग से अनिरुद्ध को अन्तःपुर में ले जाती है। दोनों रमण करते हैं। ऊषा को गर्भ रह जाता है। पहरेदारों से पता चलने पर, बाणासुर अन्तःपुर में जाता है। वह अनिरुद्ध को नागपाश से बाँध लेता है। नारद से अनिरुद्ध का पता पाकर श्रीकृष्ण शोणितपुर पर हमला करते हैं। शंकर बाणासुर की सहायता करते हैं। अन्त में शंकर के अनुरोध पर श्रीकृष्ण बाणासुर के हाथ काटकर उसे छोड़ देते हैं। अनिरुद्ध और ऊषा का विवाह होता है।

बलराम नन्द और गोपियों से मिलने के लिए व्रज जाते हैं, नन्द व यशोदा को प्रणाम करते हैं। ग्वालबाल, गोपियाँ उनसे श्रीकृष्ण के समाचार पूछती हैं और जानना चाहती हैं कि क्या वे हमारी याद करते हैं? क्या वे नन्द और यशोदा को देखने के लिए यहाँ आएँगे? क्या वे हमारी सेवा का स्मरण करते हैं? वे हमें छोड़कर परदेश चले गये। वे अपने ग्राम्य चरित्र के दैन्य को स्वीकार करती हुई नगर की स्त्रियों पर व्यंग्य करती हैं। उन्हें विश्वास है कि नगर-वनिताएँ चतुर होने से कृष्ण की मीठी-मीठी बातों में नहीं फँसी होंगी। वे अतीत की स्मृति कर रोने लगती हैं। बलराम उन्हें सान्त्वना देते हैं। वे चैत और बैशाख के महीने वहीं बिताते हैं। वे गोपियों के साथ यमुना में जलक्रीड़ा करते हैं।

इधर बलराम की अनुपस्थिति में पौंड्रक वासुदेव होने का दावा करता है। कृष्ण पौंड्रक और काशीनरेश पर आक्रमण कर युद्ध में उनके सिर धड़ से अलग कर देते हैं। काशीराज का पुत्र सुदाक्षिण, पिता का वध करनेवाले श्रीकृष्ण के वध के लिए, शंकर के उपदेश से दक्षिणाग्नि की अभिचार विधि से आराधना करता है। वह कृष्ण के लिए अभिचार (मारण का पुरश्चरण) करता है। मूर्तिवान अग्निदेव यज्ञ-कुण्ड से उठता है और द्वारिका को भस्म करने के लिए पहुँचता है। श्रीकृष्ण इस माहेश्वरी कृत्य को पहचान जाते हैं, सुदर्शन चक्र से वे उसकी हत्या कर देते हैं। बलराम भौमासुर के मित्र द्विविद वानर के उत्पात को शान्त करते हैं। जाम्बवती का पुत्र शाम्ब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को स्वयंवर से हरकर ले आता है। कौरव उसका पीछा करते हैं। वे शाम्ब को बाँधकर लक्ष्मणा को हस्तिनापुर ले आते हैं। इसकी यदुवंशी पर गहरी प्रतिक्रिया होती है। यदुवंशी आक्रमण करना चाहते हैं, परन्तु बलराम रोक देते हैं। वह हस्तिनापुर जाकर एक उपवन में ठहर जाते हैं और उद्धव को धृतराष्ट्र के पास भेजते हैं। कौरव उनकी अगवानी करते हैं। वे नववधू के साथ शाम्ब को वापस करने की माँग करते हैं। कौरव यह सुनकर तिलमिला उठते हैं। कौरवों के अपशब्दों से बलराम को क्रोध आ जाता है। वे हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड़ देते हैं। कौरव क्षमा माँगकर शाम्ब और लक्ष्मणा को लौटा देते हैं। भारी दहेज के साथ बलराम वापस लौटते हैं। नारद श्रीकृष्ण की

दिनचर्या देखने जाते हैं। वे पाते हैं कि योगमाया से श्रीकृष्ण सब जगह मौजूद हैं। जरासंध के द्वारा बन्दी राजाओं का दूत श्रीकृष्ण के पास आता है। वह कृष्ण की सुधर्मा सभा में मिलता है। तभी नारद वहाँ आ जाते हैं। यादवों के इस विचार पर कि आक्रमण करके जरासंध को जीत लिया जाए, उद्धव परामर्श देते हैं कि राजसूय यज्ञ और शरणागतों की रक्षा के लिए जरासंध पर विजय प्राप्त करना जरूरी है लेकिन भीम ही उसे द्वन्द्वयुद्ध में हरा सकते हैं। दूसरे वह बड़ा ब्राह्मण-भक्त है। श्रीकृष्ण जरासंध के पास गिरिव्रज दूत भेजते हैं। श्रीकृष्ण द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान करते हैं। राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीमसेन, अर्जुन और कृष्ण गिरिव्रज जाते हैं। वे ब्राह्मण के वेष में जाते हैं। दैत्यराज जरासंध इस तथ्य को जानते हुए भी उन्हें युद्ध की भीख देता है। वह भीम से द्वन्द्वयुद्ध में मारा जाता है। जरासंध की मृत्यु के बाद, बंदी राजाओं को मुक्त कर कृष्ण इन्द्रप्रस्थ वापस आ जाते हैं। राजसूय यज्ञ में 'अग्रपूजा' के प्रश्न को लेकर विवाद खड़ा हो जाता है। श्रीकृष्ण इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त समझे जाते हैं। शिशुपाल सहदेव के प्रस्ताव का न केवल विरोध करता है, प्रत्युत श्रीकृष्ण को भला-बुरा कहता है। उनके भक्त शिशुपाल पर आक्रमण करना चाहते हैं परन्तु श्रीकृष्ण ही चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। शिशुपाल के निधन के बाद, युधिष्ठिर अवभृथ-स्नान (यज्ञान्त स्नान) करते हैं।

लीला-वर्णन का मुख्य स्रोत

'रिट्ठणेमिचरिउ' के यादवकाण्ड में यादवों और कृष्ण से सम्बन्धित जिस वृत्त का वर्णन है, उसका महाभारत में उल्लेख नहीं है। महाभारत में जिस वृत्त का उल्लेख है वह आलोच्य कृति के कुरुकाण्ड और युद्धकाण्ड में आता है। प्रश्न है कि कृष्ण के जन्म से लेकर बाल्यकाल तक की जिन घटनाओं का वर्णन 'रिट्ठणेमिचरिउ' में है और जिनका प्रभाव हिन्दी साहित्य की कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि 'सूर' के सगुण-लीला गान में देखा जाता है, उनका स्रोत क्या है?

'पउमचरिउ' में स्वयंभू स्पष्टरूप से स्वीकार करते हैं कि उन्होंने आचार्य रविषेण के प्रसाद से, परम्परा से आयी हुई रामकथा रूपी नदी में अवगाहन किया। परन्तु ऐसा कोई उल्लेख 'रिट्ठणेमिचरिउ' की प्रारम्भिक प्रस्तावना में उपलब्ध नहीं है। आचार्य रविषेण का समय है ६७४ और 'हरिवंशपुराण' का ७८३ ई०। पुष्पदन्त ने स्वयंभू का उल्लेख किया है। वह १०वीं सदी में हुए। इससे यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि स्वयंभू का आविर्भाव ८वीं-९वीं शती में हुआ। लेकिन दो सौ वर्षों की यह लम्बी अवधि, किसी कवि के जीवन-वृत्त और रचनाकाल का निश्चित बिंदु निर्धारित करने में कोई अर्थ नहीं रखती।

ई० ७७८ में उद्योतनसूरि की 'कुवलयमाला' में यह उल्लेख है—

"बुहजण-सहस्स-दइयं हरिवं सुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियं पिहुं हरिवंसं चेव विमलपयं॥"

आचार्य जिनसेन द्वारा रचित 'हरिवंशपुराण' की भूमिका में, सम्पादक-अनुवादक पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने उक्त श्लोक का यह अर्थ किया है—

'मैं हजारों बुधजनों के लिए प्रिय हरिवंशोत्पत्तिकारक प्रथम वन्दनीय और विमलपद की वन्दना करता हूँ।' यहाँ श्लेष से विमलपद के (विमलसूरि के चरण, और विमल हैं पद जिसके

ऐसा हरिवंश) दो अर्थ घटित होते हैं।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के सम्पादक स्व० डॉ० हीरालाल जैन के उक्त अवतरण पर यह टिप्पणी है। उन्होंने (पं० पन्नालालजी ने) 'कुवलयमाला' में विमलकृत हरिवंशपुराण या चरित के उल्लेख का कथन किया है किन्तु उन्होंने उक्त अंश के उस पाठ को सर्वथा भुला दिया है जिसे 'कुवलयमाला' के सम्पादक (डॉ० उपाध्ये) ने अपने संस्करण में स्वीकार किया है। उसमें 'हरिवंसं' की जगह 'हरिवरिसं' पाठ होने से कुछ अन्य अर्थ भी निकाला जा सकता है। उन्होंने रविषेणाचार्य कृत 'पद्मपुराण' का प्रस्तुत रचना में, तथा 'महापुराण' में इस रचना का अनुकरण किये जाने का उल्लेख किया है, किन्तु इन महत्त्वपूर्ण मतों का जितनी सावधानी और गम्भीरता से प्रमाणीकरण वांछनीय था, वह यहाँ नहीं पाया जाता। प्रश्न है, क्या 'कुवलयमाला' के 'विमलपद' में प्राकृत 'पउमचरिउ' के रचयिता विमलसूरि का उल्लेख है या किसी दूसरे विमलसूरि का? तथ्य यह है कि जिनसेन के पूर्व लिखित 'हरिवंशपुराण या चरित' अभी तक उपलब्ध नहीं है। अतः इस विषय में कुछ कहना अटकल लगाना मात्र है। 'पउमचरिउ' के रचयिता विमलसूरि जैन चरित काव्य-परम्परा के आदि कवि हैं फिर भी स्वयंभू ने आचार्यों की लम्बी परम्परा में उनका उल्लेख नहीं किया। वह अपने रामकाव्य का सम्बन्ध सीधा रविषेण से जोड़ते हैं। यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि रामकाव्य-परम्परा की तरह 'रिट्ठणेमिचरिउ' में पूर्ववर्ती कृष्णकाव्य-परम्परा का प्रारम्भ में उल्लेख करना कवि ने क्यों नहीं उचित समझा? जबकि उद्योतनसूरि का सन्दर्भ और आचार्य जिनसेन का हरिवंशपुराण उनके सम्मुख था।

यहाँ यह भी उल्लेख है कि हरिवंशपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन (महापुराण के रचयिता जिनसेन से भिन्न) ने ६६वें सर्ग में भगवान महावीर से लेकर लोहाचार्य तक की आचार्य-परम्परा दी है। फिर वीर-निर्वाण के ६८३ वर्ष के बाद की अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—विनयधर, श्रुतिगुप्त, ऋषिगुप्त, शिवगुप्त, मन्दरार्य, मित्रवीर्य, बलदेव, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईश्वरसेन, नन्दिषेण, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शान्तिषेण, जयसेन, अमितसेन, कीर्तिषेण और जिनसेन (हरिवंश के रचयिता)। लोहाचार्य का अस्तित्व वि० सं० २१३ माना जाता है। इन नामों में विमलसूरि का नाम नहीं है।

कुवलयमाला के उक्त श्लोक का एक अर्थ यह भी हो सकता है (मूल पाठ में किसी प्रकार का परिवर्तन किये बिना)—

"हजारों बुधजनों के प्रिय और वन्दित, हरिवंश के उत्पत्तिकारक को प्रथम वन्दना करता हूँ और फिर विमलपद विशाल हरिवंश को।" हरिवंश से यह स्पष्ट नहीं है कि यह वंश का नाम है या ग्रन्थ का। जो भी हो, यदि यह पुराण का नाम है तो उसके और उसके रचयिता के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। जिनसेन के हरिवंशपुराण का रचनाकाल ७८३ ई० है। उद्योतन सूरि ७७८ में हुए। अतः यह निश्चित है कि यदि संदर्भित श्लोक में 'हरिवंश' पाठ ही है तो जिनसेन आचार्य के पहले एक और हरिवंश लिखा जा चुका था जो अभी तक अनुपलब्ध है। वह उपलब्ध भी हो जाए तो भी वस्तुस्थिति में अन्तर नहीं पड़ता। यह प्रश्न तब भी अनुत्तरित रहता है कि 'हरिवंशपुराण' या 'रिट्ठणेमिचरिउ' में वर्णित कृष्ण की बाल-

लीलाओं का मुख्य स्रोत क्या है। बहुत-सी चमत्कारी लीलाएँ श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव करते हैं, श्रीकृष्ण का बेटा प्रद्युम्न करता है, परन्तु जिस तरह की लीलाएँ श्रीकृष्ण के बचपन और यौवन से जुड़ी हुई हैं, वे नयी हैं और ऐसी हैं कि जिनकी उपेक्षा करना जैन पुराणकारों के लिए सम्भव नहीं था। जैसाकि कहा जा चुका है, और जैसाकि पाठक देखेंगे कि चाहे स्वयंभू हों या पुष्पदन्त, दोनों कृष्ण की बाल दैवी-लीलाओं का जो विस्तार से वर्णन करते हैं, दूसरे कारणों के अलावा, इसका एक कारण लोकरुचि भी रहा होगा। चूँकि जिनसेनाचार्य के 'हरिवंशपुराण' और महाकवि स्वयंभू के 'रिट्ठणेमिचरिउ' में वर्णित उक्त लीलाओं और दूसरी बातों में कतिपय असमानताओं के बावजूद काफी कुछ समानताएँ हैं, अतः तुलनात्मक अध्ययन के लिए 'हरिवंशपुराण' के घटनाक्रम का संक्षिप्त विवरण यहाँ देना उचित होगा।

हरिवंश की उत्पत्ति का विवरण देते हुए हरिवंश-पुराण के रचयिता उसका सम्बन्ध कौशाम्बी के राजा सुमुख और वनमाला से जोड़ते हैं। इसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। जहाँ तक प्रारम्भ से लेकर समुद्रविजय द्वारा राज्य की बागडोर सम्हालने तक का सम्बन्ध है यह घटनाक्रम दोनों में बहुत कुछ समान है।

यादव-काण्ड के तीन नायक

'रिट्ठणेमिचरिउ' के यादवकाण्ड में तीन लीलानायक हैं—वसुदेव, श्रीकृष्ण और प्रद्युम्न। शम्बुकुमार प्रद्युम्न के बाद आता है, वैसे वह भी कम करामाती और शौर्य सम्पन्न नहीं है, परन्तु कवियों ने विस्तार-भय से उसके व्यक्तित्व को अधिक नहीं उभारा। ये तीनों यदुवंशी हैं। उन्हें लीलाविलास पूर्वभव के पुण्य के प्रभाव से मिला या यह आदिपुरुष 'हरि' के रक्त का प्रभाव था, यह शोध का विषय है। वसुदेव और प्रद्युम्न की लीलाओं के वर्णनक्रम में 'रिट्ठणेमिचरिउ' का लीला वर्णन क्रम से थोड़ी भिन्नता है, जिसकी चर्चा अन्यत्र प्रसंग आने पर की जाएगी। बहरहाल श्रीकृष्ण के बाल्यकाल की लीलाओं से लेकर कंसवध का (कंस भी यदुवंशी था) जो रूप 'हरिवंशपुराण' में मिलता है, वह यहाँ दिया जाता है। जिनसेन लिखते हैं—जैसे-जैसे देवकी का गर्भ बढ़ रहा था वैसे-वैसे कंस उसकी प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु कृष्ण सातवें ही माह में उत्पन्न हो गये, इसलिए कंस को इसका पता नहीं चल सका। उनके जन्म पर शुभ चिह्न प्रकट हुए। घनघोर वर्षा के कारण वसुदेव ने छत्र तान लिया और बलराम ने बालक को उठा लिया। रात में वे घर से निकले, गोपुर के द्वार बालक के पैरों के स्पर्श से खुल गये। वे चुपचाप नगर के बाहर आ गये। बालक की नाक में पानी की बूँद चली गयी और वह जोर से छींका, उसका स्वर गम्भीर था। गोपुर के ऊपर उग्रसेन रहते थे। उन्होंने असीस दी, "तू निर्विघ्न रूप से चिरकाल तक जीवित रह।" बलदेव और वसुदेव ने उग्रसेन से यह रहस्य किसी को न बताने का अनुरोध किया। नगर के बाहर एक बैल अपने सींग के प्रकाश में उन्हें ले गया। श्रीकृष्ण के प्रभाव से यमुना का अखण्ड प्रभाव खण्डित हो गया। वे नदी पारकर वृन्दावन पहुँचे। अत्यन्त विश्वसनीय सुनंद गोप और यशोदा की पुत्री से बदलकर वे वापस आ गये। प्रसव की खबर लगने पर कंस देवकी के कमरे में गया, यह सोचकर कि कहीं इसका पति मेरी मृत्यु का कारण न बन जाए, उसने नवजात कन्या की नाक चपटी कर दी।

उधर वृन्दावन में बालक का नाम कृष्ण रखा गया। वह अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ चिह्नों तथा रेखाओं से युक्त थे। इस बीच कंस का भला चाहने वाला वरुण ज्योतिषी उससे कहता है कि

तुम्हारा शत्रु बढ़ रहा है उसकी खोज की जानी चाहिए। कंस ने दिन का उपवास किया, जिससे पूर्वजन्म में सिद्ध देवियाँ उसकी सहायता के लिए आयीं। एक देवी उग्र भयंकर पक्षी बनकर गयी, बालक ने उसकी चोंच तोड़ दी। दूसरी प्रपूतना भूतनी का रूप बनाकर पहुँची और स्तन से विषपान कराने लगी। बालक के काटने से वह चिल्लाती हुई भाग गयी। बालक कभी सोता है, कभी बैठता है, कभी छाती के बल रेंगता है। कभी दौड़ता है, कभी मधुर अलाप करता है, कभी मक्खन खाता है, इस प्रकार दिन-रात व्यतीत करता है।

तीसरी देवी शकट का रूप धारण कर आती है। बालक लात मारकर उसे नष्ट कर देता है। यशोदा कृष्ण का पैर उलूखल से बाँध देती है। दो देवियाँ यमल और अर्जुन वृक्ष का रूप धारण करके आती हैं, कृष्ण उन्हें गिरा देते हैं। छठी देवी बैल के रूप में आती है, कृष्ण उसे परास्त करते हैं। सातवीं देवी तीव्र वर्षा बनकर आती है, कृष्ण गोवर्धन उठाकर उसे रोकते हैं। देवकी को इन घटनाओं का पता चलता है तो वह बलराम के साथ चुपचाप कृष्ण को देखने के लिए उपवास के बहाने गोकुल जाती हैं और देखती हैं कि श्रीकृष्ण वनखण्ड में मुरली बजा रहे हैं, गोप गा रहे हैं, गायें चर रही हैं। वह प्रसन्न होती है। नन्दगोप यशोदा के साथ, उनका स्वागत करते हैं। पुत्र को देखकर देवकी के स्तन पनहा उठते हैं। भेद खुलने के भय से, बलराम दूध के घड़े से माँ का अभिषेक कर देते हैं। देवकी मथुरा वापस आती है। बलदेव श्रीकृष्ण को चुपचाप विद्याओं में पारंगत करते हैं। वह बालक्रीड़ाओं के साथ प्रस्फुटित स्तनोंवाली गोपियों को रासलीला कराते हैं, और स्वयं निर्विकार रहते हैं। जिनसेनाचार्य का कहना है कि जिस तरह संयोग में अतिशय अनुराग होता है उसी तरह वियोग में विरह-वेदना बढ़ जाती है।

कंस कृष्ण की लोकोत्तर लीलाओं से बहुत चिंतित है। वह उन्हें खोजने गोकुल आता है। आत्मीयजन बालक को बाहर भेज देते हैं। रास्ते में जब वह लकड़ी के बड़े-बड़े खम्भे उठाते हैं तो माँ यशोदा को पूरी तरह से विश्वास हो जाता है कि उसका बेटा अद्भुत शक्तिशाली है। उन्हें गोकुल वापस बुला लिया जाता है। कंस की घोषणा के अनुसार, कृष्ण नागशय्या पर चढ़ते हैं, धनुष को डोर सहित कर उसके दो टुकड़े करते हैं और शंख फूंक देते हैं। बलराम कंस की चालाकी ताड़ लेते हैं और कृष्ण को गोकुल भेज देते हैं। कंस के आदेश पर यमुना-सरोवर में कालिय सर्प का दमन करते हैं और कमल तोड़कर लाते हैं। कंस चिन्ता से व्याकुल हो उठता है। वह मथुरा में पहलवान इकट्ठे करता है। वसुदेव अपने पुत्र अनावृष्टि से परामर्श कर अपने बड़े भाइयों को फ़ौजफाटे के साथ मथुरा बुला लेते हैं। कंस को यह बताया जाता है कि वे अपने भाई को देखने मथुरा आये हैं। एक दिन बलराम यशोदा को झूठमूठ खूब डाँटते हैं। वह रो पड़ती है। श्रीकृष्ण को यह अच्छा नहीं लगता। वह बलराम से यशोदा के प्रति इस अकारण अविनय का कारण पूछते हैं। बलराम जीवंजसा (जीवद्यशा) के कटुवचन से लेकर अब तक की समूची घटनाएँ सुनाते हैं और बताते हैं कि कंस द्वारा मल्लयुद्ध का आयोजन उसी षड्यन्त्र का एक अंग है। यह सुनकर कृष्ण आगबबूला हो उठते हैं। वस्तुतः बलराम यही चाहते थे। वे मथुरा के लिए कूच करते हैं।

रास्ते में तीन असुर क्रमशः नाग, गधा और घोड़े का रूप बनाकर कृष्ण को डराते हैं परन्तु वह उनको मार भगाते हैं। चम्पक और पादामर हाथी भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाते। बलराम और कृष्ण का उनसे मल्लयुद्ध होता है। उसमें कृष्ण कंस के दोनों प्रमुख मल्लों का

काम-तमामकर, तलवार लेकर आक्रमण करते हुए कंस को पटककर मार डालते हैं। श्रीकृष्ण हँस पड़ते हैं। वह अनावृष्टि के साथ वसुदेव के पास जाते हैं। उग्रसेन-पद्मावती को बन्धनमुक्त करते हैं। इधर जीवद्यशा अपने पिता जरासंध के पास पहुँचती है।

कृष्ण के पास राजा सुकेतु का दूत आता है और सत्यभामा से विवाह करने का निवेदन करता है। कृष्ण निवेदन स्वीकार कर लेते हैं। बलराम सत्यकेतु के भाई रतिमाल की कन्या रेवती का पाणिग्रहण करते हैं।

इधर जीवद्यशा से पूरी बात सुनकर जरासंध यम के समान भयंकर अपने पुत्र कालयवन को भेजता है। शत्रुओं से सत्रह बार युद्धकर वह अतुल मालावर्त पर्वत पर वीर- गति को प्राप्त होता है। पश्चात् जरासंध का भाई अपराजित जाता है। तीन सौ छयालीस बार युद्ध कर वह भी अन्त में श्रीकृष्ण के बाण का लक्ष्य बनता है।

शौर्यपुर में, तीर्थंकर नेमिनाथ के गर्भ में आने के पहले ही समुद्रविजय के घर पन्द्रह माह तक रत्नों की वर्षा होती है। शिवादेवी स्वप्न देखती है। इन्द्र के आदेश पर कुबेर माता-पिता का अभिषेक करते हैं। नेमि जन्म लेते हैं। सुमेर पर्वत पर उनका अभिषेक होता है। कुबेर शौर्यपुर की शोभा बढ़ाता है। इन्द्र जिनेन्द्र की स्तुति करता है। शौर्यपुर में शिशु नेमि बढ़ने लगते हैं। वह जब कुछ बड़े होते हैं तो इन्द्र 'महानन्द' नाटक का अभिनय करता है जिसमें ताण्डव नृत्य सम्मिलित है।

अपराजित की मृत्यु सुनकर जरासंध संतप्त हो उठता है। वह मित्र-राजाओं को युद्ध में पहुँचने का निमन्त्रण देकर कूच करता है। वृष्णि और भोजकवंश के लोग विचारविमर्श कर शौर्यपुर से बाहर निकलते हैं, पश्चिम दिशा में कहीं आश्रय की खोज में। उन्हें विंध्याचल मिलता है। जरासंध पीछा करता है। भाग्य के नियोग से अर्धभरत क्षेत्र में निवास करनेवाली देवियाँ अपनी विक्रिया से बहुत-सी चिताएँ रचकर यादवों को उनमें जलता हुआ दिखाती हैं। एक बुढ़िया से यह जानकर कि यादव आग में जल मरे, वह लौट जाता है। दशार्ह, महाभोज, वृष्णि और कृष्ण समुद्रतट पर पहुँचते हैं, उसमें प्रवेश करना सम्भव नहीं देखकर कृष्ण और बलराम तीन दिन का उपवास करते हैं। इन्द्र के आदेश से समुद्र हट जाता है। कुबेर द्वारिका नगरी की रचना करता है। बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी। सब लोग वहाँ रहने लगते हैं। नेमिकुमार का भी बचपन वहाँ बीतने लगता है।

नारद मुनि, कृष्ण की अनुज्ञा से उनके अन्तःपुर में प्रवेश करते हैं। सत्यभामा दर्पण में मुँह देखने के कारण, उन्हें नहीं देख पाती है। नारद इसे अपनी अवज्ञा समझते हैं। मन में गाँठ बाँधकर, वह राजा भीष्म के रनिवास में जाते हैं। उनकी दृष्टि विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी पर पड़ती है। वह उसके हृदय-पटल पर कृष्ण का सौन्दर्य चित्रांकित कर देते हैं और उसका चित्रपट बनाकर द्वारिका में कृष्ण को दिखाते हैं। इधर रुक्मिणी की बुआ उसे मुनि अतिमुक्तक के भविष्य कथन की याद दिलाती है जिसके अनुसार उसे श्रीकृष्ण की पट्टरानी होना है। रुक्मि अपनी बहिन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है। बुआ रुक्मिणी का अभिप्राय: जानकर श्रीकृष्ण को लेखपत्र पहुँचाती है जिसमें उल्लेख है कि रुक्मिणी नागदेव की पूजा के दिन बाहर उद्यान में मिलेगी। श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचकर उसका अपहरण करते हैं। वह अपने हाथों उसे रथ पर बैठाते हैं। शिशुपाल और श्रीकृष्ण में जबर्दस्त भिड़न्त होती है। पहले तो रुक्मिणी को विश्वास नहीं होता कि श्रीकृष्ण और बलराम रुक्मि की भारी सेना से निपट

केगी। बाद में उसे विश्वास हो जाता है और वह उनसे अपने भाई के प्राणों की भीख माँगती है।

युद्ध जीतकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ द्वारिका आते हैं। एक दिन कृष्ण रुक्मिणी के द्वारा उगला हुआ पान वस्त्र के छोर में बाँधकर सत्यभामा के पास जाते हैं। वह उसे सुगन्धित द्रव्य समझकर, पीसकर अपने शरीर पर मल लेती है। कृष्ण उसकी खूब हँसी उड़ाते हैं। सत्यभामा रुक्मिणी को देखने का आग्रह करती है। वह रुक्मिणी को मणिमय बावड़ी के किनारे खड़ाकर, सत्यभामा के पास आते हैं। और बोलते हैं, "तुम उद्यान में चलो, मैं रुक्मिणी को लेकर आता हूँ।" सत्यभामा आगे जाती है और कृष्ण पीछे-पीछे जाकर झाड़ी की ओट में छिपकर खड़े हो जाते हैं। रुक्मिणी आम्र की शाखा के सहारे पंजों के बल खड़ी हुई है, आँखें फलों पर हैं। सत्यभामा उसे देवी समझती है और अंजली से फूल बखेर देती है। वह अपने सौभाग्य की भीख माँगती है और सौत के लिए दुर्भाग्य। इतने में कृष्ण आ जाते हैं। रुक्मिणी सत्यभामा को प्रणाम करती है। दोनों में सुलह हो जाती है।

हस्तिनापुर से दुर्योधन कृष्ण को खबर भेजता है जिसमें यह उल्लेख है—यदि मेरे कन्या हुई, तो दोनों रानियों—सत्यभामा और रुक्मिणी में से जिसके पुत्र होगा, वह उसका पति होगा। यह समाचार पाकर, रुक्मिणी और सत्यभामा में यह तय हो जाता है कि जिसके पुत्र न होगा उसकी कटी हुई केशलता को विवाह के समय पैरों के नीचे रखकर वरवधू स्नान करेंगे। दोनों के एक साथ पुत्र हुए परन्तु रुक्मिणी के पुत्रजन्म की सूचना पहले मिलने पर वह बड़ा घोषित किया जाता है। धूमकेतु नामक असुर रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न को उठाकर ले जाता है, और खदिरवन में तक्षशिला के नीचे उसे रखकर चला जाता है। मेघकूट नगर का राजा कालसंवर अपनी पत्नी कनकमाला के साथ उसे अपने घर ले जाता है। कनकमाला बालक को इस शर्त पर स्वीकार करती है कि उसे युवराज बनाया जाएगा।

जागने पर पुत्र को न पाकर रुक्मिणी खूब विलाप करती है। श्रीकृष्ण उसे खोजने का आश्वासन देते हैं। वह जैसे ही शिशु को खोजने का प्रयत्न करते हैं वैसे ही नारद आ जाते हैं, और उन्हें पुत्र मिलने की आशा बंधाते हैं। नारद रुक्मिणी को खूब ढाढस बँधाते हैं। वह वहाँ से सीमंधर स्वामी के पास (पुष्कलावती देश के पुण्डरीकिणी देश में) जाते हैं। चक्रवर्ती पद्मरथ के पूछने पर, सीमंधर स्वामी प्रद्युम्न के पूर्वभवों का वर्णन करते हैं जो मधु और कैटभ के पर्यायों तक चलती है। मधु का जीव रुक्मिणी की कोख से प्रद्युम्न के रूप में जन्मता है जब कि कैटभ का जीव जाम्बवती की कोख से शम्ब के नाम से जन्म लेगा। यह वृत्तान्त जानकर नारद मेघकूट नगर जाते हैं। वहाँ से द्वारिका जाते हैं और रुक्मिणी को शुभ सूचना देते हैं कि प्रद्युम्न प्रज्ञप्ति विद्या प्राप्त कर सोलहवें वर्ष में अवश्य आएगा।

एक समय, नारद कृष्ण की सभा में आते हैं, और जाम्बवती के बारे में कहते हैं। कृष्ण जाम्ब विद्याधर की कन्या जाम्बवती से विवाह करते हैं। जाम्बवती का भाई विश्वक्सेन भी उनके साथ आता है। इसके बाद श्रीकृष्ण और भी अनेक कन्याओं से विवाह करते हैं। उनमें से कुछेक के नाम इस प्रकार हैं—

१. श्लक्ष्णरोम की कन्या लक्ष्मणा, २. राष्ट्रवर्धन की कन्या सुसीमा, ३. मेघ की कन्या गौरी, ४. हिरण्यनाभ की कन्या पद्मावती, और ५. इन्द्रगिरि की कन्या गान्धारी।

इस प्रकार सत्यभामा, रुक्मिणी और जाम्बवती को मिलाकर उनकी कुल आठ पट्टरानियाँ होती हैं।

रिट्ठणेमिचरिउ और हरिवंशपुराण

रिट्ठणेमिचरिउ के यादवकाण्ड की कुछ घटनाएँ और कथाएँ 'हरिवंशपुराण' में नहीं हैं। ऐसा होना सहज है। 'हरिवंशपुराण' पुराण है, और पुराण विस्तार चाहता है। इस कारण अन्तर होना स्वाभाविक है। 'हरिवंशपुराण' के अनुसार नेमिनाथ का जन्म शौर्यपुर में होता है जबकि रिट्ठणेमिचरिउ के अनुसार उनका जन्म द्वारिका में होता है। यह अन्तर तथ्यात्मक अन्तर है, जो विस्तार से विचार की अपेक्षा रखता है। स्व० डॉ० हीरालाल जैन तथा स्व० डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के प्रधान सम्पादक द्वय) ने 'हरिवंशपुराण'(डॉ०पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित)की भूमिका में लिखा है—"पुराण विषयक जैन ग्रन्थों की संख्या सैकड़ों में है और वे प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा तमिल, कन्नड़ आदि सभी भारतीय भाषाओं में मिलते हैं। इन विविध रचनाओं में वर्णन-भेद पाया जाता है जिसका परस्पर तथा वैदिक पुराणों के साथ तुलनात्मक अध्ययन-अनुसंधान एक रोचक और महत्त्वपूर्ण विषय है। जैन 'हरिवंशपुराण' में उक्त प्रकार से विषय-प्रतिपादन के साथ-साथ हरिवंश की एक शाखा यादवकुल और उसमें उत्पन्न हुए दो शलाकापुरुषों का चरित्र विशेष रूप से वर्णित हुआ है। एक बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और दूसरे नवें नारायण श्रीकृष्ण। ये दोनों चचेरे भाई थे। इनमें से एक ने अपने विवाह के समय निमित्त पाकर संन्यास ले लिया और दूसरे ने कौरव-पाण्डव युद्ध में अपना बल-कौशल दिखलाया। एक ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श प्रस्तुत किया, दूसरे ने भौतिक लीला का। एक ने निवृत्ति-परायणता का मार्ग प्रशस्त किया, दूसरे ने प्रवृत्ति का। इसी प्रसंग से 'हरिवंशपुराण' में महाभारत का कथानक सम्मिलित पाया जाता है। इस विषय की संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की प्राचीन रचनाएँ बहुसंख्यक हैं। 'हरिवंशपुराण' के नाम से संस्कृत में धर्मकीर्ति, श्रुतकीर्ति, सकलकीर्ति, जयसागर, जिनदास व मंगरस कृत काव्यग्रन्थ हैं।

'पाण्डवपुराण' नाम से श्रीभूषण, शुभचन्द्र, वादिचन्द्र, जयानन्द, विजयगणि, देवविजय, देवप्रभ, देवभद्र और शुभवर्धन कृत काव्यग्रन्थ हैं।

नेमिनाथचरित के नाम से सूराचार्य, उदयप्रभ, कीर्तिराज, गुणविजय, हेमचन्द्र, भोजसागर, तिलकाचार्य, विक्रम नरसिंह, हरिषेण, नेमिदत्त आदि कृत रचनाएँ ज्ञात हैं।

प्राकृत में रत्नप्रभ, गुणवल्लभ और गुणसागर द्वारा रचित रचनाएँ हैं। तथा अपभ्रंश में स्वयंभू, धवल, यशःकीर्ति, श्रुतकीर्ति, हरिभद्र, रयधू द्वारा रचित पुराण व काव्य ज्ञात हो चुके हैं।

इन स्वतन्त्र रचनाओं के अतिरिक्त जिनसेन, गुणभद्र व हेमचन्द्र तथा पुष्पदंत कृत संस्कृत एवं अपभ्रंश महापुराणों में भी यह कथानक वर्णित है, एवं उसकी स्वतन्त्र प्राचीन प्रतियाँ भी पाई जाती हैं। हरिवंशपुराण, अरिष्टनेमि या नेमिचरित, पाण्डवपुराण व पाण्डवचरित आदि नामों से न जाने कितनी संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश रचनाएँ अभी भी अज्ञात रूप से भण्डारों में

पड़ी होनी सम्भव हैं। प्राचीन हिन्दी और कन्नड़ में रचित ग्रन्थ भी अनेक हैं। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ (हरिवंशपुराण) के सम्पादक ने अपनी प्रस्तावना के पृष्ठ दो पर, प्रस्तुत रचना के अतिरिक्त एक संस्कृत और एक अपभ्रंश रचनामात्र का जो उल्लेख किया है उससे इस विषय पर जैन साहित्य-रचना के सम्बन्ध में भ्रम नहीं होना चाहिए।"

उक्त विद्वानों ने 1962 में जैन पुराण-साहित्य के सम्पादन, प्रकाशन और तुलनात्मक अध्ययन की जो आवश्यकता प्रतिपादित की थी, उसमें अभी तक विशेष प्रगति परिलक्षित नहीं हुई है। कोई भी पुराण साहित्य हो वह भारतीय जीवन और संस्कृति का सन्दर्भ ग्रन्थ है, क्योंकि उसमें समग्र जीवन का प्रतिबिम्ब अंकित होता है, पुरानता के बावजूद उसमें समकालीनता का बोध होता है। यह सच है कि सारा पुराणसाहित्य मौलिक, प्रामाणिक और जीवनबोध से भरपूर नहीं है, फिर भी ऐतिहासिक स्रोत का पता लगाने के लिए चुनी हुई पुराण-कृतियों का, सघन वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के साथ, सम्पादन-प्रकाशन पहली और महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। संस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रंश किसी सम्प्रदाय या प्रदेश की भाषाएँ न होकर, एक ही राष्ट्रीय अभिव्यक्ति की माध्यम रही हैं। उन भाषाओं में लिखित पुराण साहित्य का जितना सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महत्त्व है, उससे कहीं अधिक उसका भाषिक महत्त्व है और जब तक 'हरिवंश पुराण' से सम्बन्धित प्राचीन स्रोतों और साहित्य की प्रतिनिधि रचनाओं का ऐतिहासिक अनुक्रम में अध्ययन नहीं होता, तब तक तथ्य सम्बन्धी मतभेदों का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण सम्भव नहीं है। इसके लिए जरूरी है कि आचार्य जिनसेन और गुणभद्र, और स्वयंभू के पूर्ववर्ती हरिवंश साहित्य की खोजकर उसे प्रकाश में लाया जाए। उक्त सामग्री के अभाव में यह कहना कठिन है कि जिनसेन के हरिवंशपुराण का प्रभाव 'रिट्ठणेमिचरिउ' पर कितना है, या है ही नहीं; या 'रिट्ठणेमिचरिउ' की कथावस्तु, रचना-प्रेरणा और संदर्भ का उपजीव्य क्या है।

रिट्ठणेमिचरिउ : यादवकाण्ड

'रिट्ठणेमिचरिउ' (अरिष्टनेमिचरित) का दूसरा नाम 'हरिवंशपुराण' है। अरिष्टनेमि जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हैं, उनका सम्बन्ध हरिवंश से है। जन्म से लेकर मोक्ष-प्राप्ति तक उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं और कार्यों की सही जानकारी के लिए हरिवंश की उत्पत्ति, उसकी प्रमुख शाखाओं और पात्रों के प्रमुख जीवन-कार्यों का उल्लेख जरूरी है। यही कारण है कि 'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रारम्भ यादवकाण्ड से होता है, जिसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

परम्परागत मंगलाचरण, आत्मविनय और हरिवंश के महत्त्व का कथन कर चुकने के बाद, कवि सबके आशीर्वाद से कथा प्रारम्भ करता है। मगधराज श्रेणिक अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामी से पूछता है, "जिनमत में हरिवंश किस प्रकार है? दूसरों के मत में यह कथा उल्टी है।" राजा श्रेणिक के मन में भ्रान्ति है जिसे वह दूर करना चाहता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारे पास यह जानने का कोई प्रमाण नहीं है कि वस्तुतः भगवान महावीर के समय जैन मत और दूसरे मत में हरिवंश की कथा का स्वरूप क्या था। राजा श्रेणिक दूसरे मत की जिस हरिवंश-कथा की आलोचना करता है वह वस्तुतः व्यास द्वारा रचित 'महाभारत' की कथा है जो भगवान महावीर के समय लोगों को ज्ञात थी या नहीं—यह कहना कठिन है

फिर भी जब राजा श्रेणिक कहता है कि दूसरे मत में हरिवंशकथा उल्टी-उल्टी सुनी जाती है, जैसे नारायण नर की सेवा करते हैं, बलराम खेती करते हैं, घोड़ों का संवरण करते हैं। धृतराष्ट्र और पाण्डु का जन्म नियोग से हुआ, द्रौपदी के पाँच पति बताये जाते हैं। इस प्रकार असत्य कथन किया जाता है। भीष्मपितामह के बारे में श्रेणिक को शंका है कि यदि उन्हें इच्छा-मरण का वर प्राप्त था तो उन्होंने कालगति क्यों की? द्रोणाचार्य धनुर्विद्या में अजेय थे तो उनकी मृत्यु क्यों हुई? कर्ण यदि कान से जन्म लेता तो उसे जन्म देने वाली कुन्ती क्यों नहीं मर जाती? क्या मनुष्य घड़े से उत्पन्न होता है? फिर कुरुकुलगुरु अगस्त घड़े से कैसे पैदा हुए? भाई आपस में कितने ही लड़ें, वे एक-दूसरे का खून नहीं पी सकते। वस्तुतः ये शंकाएँ स्वयंभू के समय की हैं, जिनका समाधान खोजने के लिए अन्य जैन पुराणकारों की तरह कवि ने भी 'रिट्ठणेमिचरिउ' की रचना की। गौतम गणधर, राजा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में, जो कुछ कहते हैं उसका सार इस प्रकार है—

हरिवंश में दो प्रमुख पुरुष हुए शूर और सुवीर[1] जो क्रमशः शौरीपुर और मथुरा के राजा थे। शूर से अंधकवृष्णि जनमे और सुवीर से नरपति वृष्णि। अंधकवृष्णि का विवाह पाराशर की पुत्री और व्यास की बहिन सुभद्रा से हुआ जिससे उसे दस पुत्र उत्पन्न हुए—१. समुद्र-विजय, २. अक्षोभ्य, ३. प्रजापति स्तिमितसागर, ४. हिमगिरि (हिमवान), ५. अचल ६. विजय, ७. धारण, ८. पूरण, ९. अभिचंद और १०. वसुदेव। ये दस धर्मों के समान थे और 'दशार्ह' (दस योग्य) के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके अतिरिक्त दो कन्याएँ थीं—कुन्ती और मद्री। मथुरा के राजा नरपतिवृष्णि को पत्नी पद्मावती से तीन पुत्र (उग्रसेन, महासेन और देवसेन) तथा एक कन्या (गांधारी) थी। इसी समय मागधमण्डल में राजा जरासंध अत्यन्त समृद्ध और शक्तिशाली हो उठा था। उसके पिता का नाम बृहद्रथ था जो राजगृह नगर का स्वामी था। बृहद्रथ, राजा वसु के पुत्र सुवसु की परम्परा में हुआ। जिसने नागपुर में राजधानी की स्थापना की। जरासंघ की पट्टरानी कालिन्दीसेना थी। जरासंध के अपराजित आदि कई भाई थे। उसका प्रभाव दूर-दूर तक था।

एक दिन शौर्यपुर के गन्धमादन पर्वत पर सुप्रतिष्ठ मुनि प्रतिमायोग में ध्यान - लीन थे।

---

१. जैन परम्परा के अनुसार पहला वंश इक्ष्वाकुवंश था। उससे सूर्यवंश और चन्द्रवंश उत्पन्न हुए। इसी समय कुरुवंश और उग्रवंश तथा अन्य दूसरे वंश उत्पन्न हुए। तीर्थंकर शीतल-नाथ के समय हरिवंश की उत्पत्ति हुई। जम्बूद्वीप के वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी का राजा सुमुख था। वह वीरक सेठ की सुन्दर पत्नी वनमाला का अपहरण कर लेता है। विरह से व्याकुल सेठ दीक्षा ग्रहण कर तप करता है और मरकर प्रथम स्वर्ग में देव होता है। राजा सुमुख-दम्पती भी बाद में जैन धर्म धारण कर, दूसरे जन्म में विजयार्ध पर्वत पर 'आर्य और मनोरमा' नामक दम्पती होते हैं। पूर्वभव के बैर के कारण देव (सेठ का जीव) विद्याओं को भेदकर उन्हें चम्पापुर में छोड़ देता है। आर्य अपनी पत्नी के साथ वहीं का राजा बन जाता है। उसका पुत्र 'हरि' हुआ। इसी राजा की परम्परा में कुशाग्रपुर (राजगृह) में राजा सुमित्र हुआ। उसकी पत्नी का नाम पद्मावती था। इन्हीं से मुनिसुव्रत (बीसवें) तीर्थंकर का जन्म हुआ। मुनिसुव्रत तीर्थंकर का पुत्र सुव्रत था। उसका पुत्र दक्ष। उसके इला नाम की पत्नी से ऐलेय नामक पुत्र और मनोहारी कन्या थी।

पूर्व बैर के कारण सुदर्शन नामक यक्ष मुनि पर उपसर्ग करता है। उपद्रव शान्त होने पर मुनि धर्मोपदेश देते हैं। उनसे अपने पूर्वभव सुनकर अंधकवृष्णि और नरपतिवृष्णि जिनदीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। समुद्रविजय शौरिपुर की बागडोर संभाल लेते हैं और उग्रसेन मथुरा की। अंधकवृष्णि के सबसे छोटे पुत्र वसुदेव के सौन्दर्य की नगर की स्त्रियों पर व्यापक प्रतिक्रिया होती है। नागरिकों की शिकायत पर राजा समुद्रविजय अपने भाई को चतुराई से घर में ही खेलने के लिए कहते हैं। वसुदेव भाई की बात मान लेते हैं। लेकिन उबटन ले जाती हुई धाय से सही बात जानकर वह अपने एक अनुचर के साथ घोड़े पर बैठकर चुपचाप घर से निकल जाते हैं। यहाँ से वसुदेव की रोमांचक और साहसी यात्राएँ शुरू होती हैं। मरघट में पहुँचकर वह सहचर को दूर खड़ा करते हैं तथा सारे आभूषण चिता में डालकर घोड़े की पीठ पर पत्र बाँधकर चले जाते हैं। सहचर घर जाकर इसकी सूचना देता है। घर के लोग आकर पत्र और गहनों को देखकर निश्चय कर लेते हैं कि सचमुच वसुदेव की मृत्यु हो गयी। अनेक लीलाओं और यात्राओं में सफलता पाने के बाद, जिस समय वसुदेव अरिष्टनगर में रोहिणी के स्वयंवर में भाग लेते हैं, उस समय उसके साथ कई सुन्दर युवतियाँ थीं और वह सात सौ साल पूरे कर चुका था। रोहिणी पटह-वादक के रूप में उपस्थित वसुदेव के गले में वरमाला डाल देती है। यह देखकर कुलीनता का दावा करनेवाला सामन्तवर्ग भड़क उठता है। घमासान लड़ाई के बाद, समुद्रविजय और वसुदेव की नाटकीय ढंग से भेंट होती है। इस प्रसंग में उसकी जरासंध से भी भिड़ंत होती है। अन्त में वसुदेव का रोहिणी से विवाह हो जाता है।

वसुदेव शौर्यपुर में धूमधाम से प्रवेश करते हैं। कालान्तर में रोहिणी से बलराम का जन्म होता है। वसुदेव धनुर्वेद विद्या के आचार्य भी हैं। कंस उनकी शिष्यता ग्रहण करता है। गुरु-शिष्य में खूब पटती है। इस बीच मगधनरेश जरासंध घोषणा करता है कि जो सिंहरथ को बाँधकर लाएगा, उसे मनचाहा राज्य और कन्या दी जाएगी। गुरु-शिष्य जाकर सिंहरथ को बाँधकर ले आते हैं। वसुदेव जरासंध से कहते हैं कि कंस ने सिंहरथ को पकड़ा है अतः कन्या उसे दी जाए। यह विश्वास हो जाने पर कि कंस कुलीन है, जरासंध उसे अपनी कन्या जीवंजसा के साथ मथुरा देश दे देता है। मथुरा का राज्य मिलते ही कंस अपने माता-पिता उग्रसेन और पद्मावती को बन्दी बना लेता है। पश्चात् वह शौर्यपुर से गुरु वसुदेव को बुलाकर अपनी चचेरी बहन देवकी का विवाह उनसे कर देता है। वे दोनों मथुरा में ही रहने लगते हैं।

एक दिन जीवंजसा देवकी का रमण-वस्त्र मुनि अतिमुक्तक को दिखाती है। मुनि कुपित होकर कहते हैं— तुम्हारे पिता (मगधराज) की मृत्यु इसके पास है। जीवंजसा डर जाती है। वह सारा वृत्तान्त अपने पति कंस को सुनाती है। वह वसुदेव से यह प्रतिज्ञा करा लेता है कि 'देवकी के गर्भ से जो भी पुत्र होगा, उसे मैं चट्टान पर पछाड़ूँगा।' उन्हें 'हाँ' कहने के सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं रहता। जैन मुनि अतिमुक्तक वसुदेव-दम्पती को आश्वस्त करते हैं कि उनके पहले छह पुत्र चरमशरीरी हैं, उनका पालन अन्यत्र होगा। सातवाँ पुत्र नारायण के हाथों दोनों (कंस और जरासंध) की मृत्यु होगी। दोनों निश्चिन्त हो जाते हैं। वसुदेव-दम्पती के एक-एक कर छह पुत्र उत्पन्न होते हैं, जिन्हें कंस के हवाले कर दिया जाता है। वे नैगमदेव के द्वारा बचा लिये जाते हैं।

अनन्तर देवकी की यशोदा से भेंट होती है। दोनों गर्भवती हैं। यशोदा प्रस्ताव करती है कि वह देवकी के बच्चे का पालन करेगी और उसके बच्चे का देवकी। देवकी इसे स्वीकार

कर लेती है। कृष्ण का जन्म होता है। वसुदेव उसे उठाते हैं और तभी बलराम छत्र धारण करते हैं। वे उसे नन्द-यशोदा को सौंपकर उनकी कन्या लेकर आ जाते हैं। बालक धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। इसकी गोकुल में अच्छी प्रतिक्रिया होती है और मथुरा में बुरी। कंस के मन में आशंका हो उठती है। कंस के पास पूर्वजन्म में सिद्ध हुई देवियाँ आती हैं। वह उन्हें आज्ञा देता है कि नन्द के घर जाकर शिशु कृष्ण को मार डालें। आदेश के अनुसार, देवियाँ वहाँ पहुँचती हैं लेकिन पराजित होकर लौट आती हैं।

एक दिन देवकी और बलराम कृष्ण को देखने के लिए गोकुल जाते हैं। देवकी बालक को देखकर प्रसन्न हो उठती है। वह गोपियों की उन बातों को सुनती है, जो वे शिशु कृष्ण से कहती हैं। दुग्धकलश से अभिषेक कर वे दोनों लौट जाते हैं।

कंस कृष्ण को मारने के लिए तरह-तरह के षड्यन्त्र रचता है परन्तु हर बार वह असफल रहता है। कंस के बुलावे पर बलराम और कृष्ण मथुरा पहुँचते हैं। वहीं युद्ध में श्रीकृष्ण कंस को पछाड़ देते हैं। उग्रसेन की धरती उन्हें ही सौंप दी जाती है। बलराम का रेवती, और श्रीकृष्ण का सत्यभामा से विवाह सम्पन्न होता है। नन्द और यशोदा को भी वहाँ बुलवा लिया जाता है। वे जाकर शौर्यपुर में रहने लगते हैं।

अपने पति कंस की मृत्यु से दुःखी जीवंजसा जरासंघ के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाती है। जरासंध बदला लेने के लिए अपने भाई को वहाँ भेजता है। कृष्ण और उसकी सेना का आमना-सामना होता है। अन्त में पराजित होकर वह लौट जाता है। जरासंध क्रुद्ध होकर इस बार अपने भाई के निर्देशन में सम्पूर्ण सेना भेज देता है। इस प्रकार तीन सौ छयालीस बार युद्ध होता है। जरासंध के भाई कालयवन के भयंकर आक्रमण देखकर, यादवसेना उस समय पश्चिमी तट पर हट जाना उचित समझती है। देवियाँ कृत्रिम धुआँ और आग दिखाकर यह भ्रम उत्पन्न कर देती हैं कि यादवसेना और कृष्ण का परिवार जलकर खाक हो गया। शत्रु का अन्त समझकर कालयवन लौट जाता है।

यादव-सेना गिरनार पर्वत पर पहुँचती है। वहाँ से वह समुद्र की ओर कूच करती है। कृष्ण और बलराम समुद्र में रास्ता पाने के लिए दर्भासन पर बैठकर उपवास करते हैं। तभी इन्द्र के आदेश से एक देव आता है और समुद्र को सन्देश देता है। समुद्र बारह योजन हट जाता है। इन्द्र के ही आदेश से वहाँ कुबेर द्वारिका नगरी का निर्माण करता है। दोनों भाई नगरी में प्रवेश करते हैं।

इधर शिवादेवी सोलह सपने देखती हैं। सत्रह देवियाँ गर्भशोधन करने आती हैं। नेमि तीर्थंकर का जन्म होता है। इन्द्र नेमिजिन की स्तुति करता है। श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करते हैं, रुक्मिणी का पता उन्हें नारद मुनि देते हैं। इस कार्य में बलराम उनकी मदद करते हैं। शिशुपाल इसका विरोध करता है। युद्ध होता है। रुक्मिणी भयभीत होती है। दोनों भाई रुक्मिणी के साथ द्वारिका में प्रवेश करते हैं। नारद मुनि जम्बूवती कन्या का पता देते हैं। दोनों भाई उपवास कर हरिवाहिनी और खड्गवाहिनी विद्याएँ प्राप्त करते हैं और कृष्ण जम्बूवती से विवाह कर लेते हैं।

एक दिन श्रीकृष्ण सत्यभामा के भवन के उद्यान में रुक्मिणी का प्रवेश कराते हैं। सौतिया डाह का सुन्दर द्वन्द्व रचा जाता है। रुक्मिणी और सत्यभामा में ठन जाती है। दोनों में यह तय होता है कि पहले जिसके पुत्र का कुरुराज की कन्या से विवाह होगा, दूसरी के सिर के बाल

स्नान करते हुए के पैर के नीचे होंगे ।

दोनों के एक साथ पुत्र होते हैं। चूंकि रुक्मिणी के पुत्र की सूचना पहले मिलती है अतः उसका पुत्र प्रद्युम्न बड़ा मान लिया जाता है और सत्यभामा का छोटा। दैवयोग से प्रद्युम्न को उसके पूर्वभव का बैरी धूमकेतु उठा ले जाता है और खदिरवन में शिला के नीचे दबाकर चला जाता है। विद्याधर दम्पती संवर-कंचनमाला उसे पाल-पोसते हैं। बालक कई लीलाओं का केन्द्रबिन्दु और अनेक सिद्धियों का धारक बनता है। कंचनमाला उसके रूप पर मुग्ध हो जाती है। इच्छा पूरी न होने पर लांछन लगाती है। अन्त में वह बालक कालसंवर और उसके सैकड़ों पुत्रों को पराजित करता है।

द्वारिका में रुक्मिणी पुत्र-वियोग में दुःखी है। श्रीकृष्ण उसे ढाढ़स बँधाते हैं। नारद बालक की खोज में निकलते हैं। वह बालक के साथ विमान से जब लौटते हैं तो उन्हें भानुकुमार की बरात द्वारिका जाती हुई दिखाई देती है। प्रद्युम्न आकाश में विमान खड़ाकर, नीचे उतरकर, अपनी लीलाओं का प्रदर्शन करता है। पाण्डवों के स्कंधावार को अवरुद्ध कर लेता है। वहाँ से वह द्वारावती जाता है। सत्यभामा को तरह-तरह से तंग करता है, उसका उद्यान उजाड़ देता है। तभी रुक्मिणी सुन्दर निमित्त देखती है। प्रद्युम्न माँ से भेंट करता है। इसी समय नाई आता है सत्यभामा का सन्देश लेकर। प्रद्युम्न अपमानित कर भगा देता है। कृष्ण और प्रद्युम्न की परस्पर भेंट होती है। दुर्योधन की पुत्री से प्रद्युम्न का विवाह होता है। सत्यभामा यह सबूत चाहती है कि यह युवा उसी का पुत्र है। नारद विस्तार से सारी घटना का उल्लेख करते हैं। यह मालूम होने पर कि मधु का दूसरा भाई कैटभ भी स्वर्ग से अवतरित होकर कृष्ण का पुत्र होगा, सत्यभामा चाहती है कि रजस्वला होने के चौथे दिन कृष्ण उससे समागम करें जिससे वह यशस्वी पुत्र की माता बन सके। परन्तु प्रद्युम्न विद्या की सहायता से जम्बुवती को उसके रूप में भेज देता है, उससे शम्बुकुमार का जन्म होता है। रुक्मिणी विदर्भराज से दूसरी कन्या माधवी अपने पुत्र के लिए माँगती है। विदर्भराज दूत को डाँटकर भगा देता है। प्रद्युम्न और शम्भुकुमार कुण्डनपुर जाते हैं। कन्या के बाप के यह कहने पर कि चण्डालकुल में कन्या दे देना अच्छा परन्तु जिसने अपनी माँ और भाई का अपमान किया है उसको कन्या देना अच्छा नहीं—दोनों उत्पात मचा देते हैं। कन्या स्वयं विद्रोह कर बैठती है और अपनी सखी से कहती है कि मैंने स्वयंवर माला से इनका वरण कर लिया, कहाँ का बाप और कहाँ की माँ? मेरी इच्छा इन पर है, जो कुछ हुआ सो हो गया अब कुल से क्या? वे दोनों कन्या को वधू बनाकर ले आते हैं।

वंशों का विकास : जैन पौराणिक परम्परा

जैन पौराणिक मान्यता के अनुसार, मूल वंश दो हैं—इक्ष्वाकुवंश और विद्याधरवंश। इनमें इक्ष्वाकुवंश मानव वंश है। मानववंश और विद्याधर वंश के मेल से राक्षस-वंश की उत्पत्ति हुई। आगे चलकर इक्ष्वाकुवंश के दो भेद हुए—सूर्यवंश और चन्द्रवंश। चन्द्रवंश का विकास बाहुबलि के पुत्र सोमयश से हुआ। जहाँ तक यादववंश के विकास का सम्बन्ध है वह हरिवंश का ही एक परवर्ती विकास है। तीर्थंकर शीतलनाथ के समय, वासुदेश का राजा सुमुख कौशाम्बी नगरी में रहता था। उसने अपने ही नगर के सेठ वीरक की पत्नी वनमाला का अपहरण कर लिया था, दोनों जैनधर्म में निष्ठा के कारण आगामी जन्म में विजयार्ध पर आर्यक और मनोरमा

नाम से विद्याधर और विद्याधरी उत्पन्न हुए। वीरक सेठ का जीव मरकर देव होता है और [illegible] उन दोनों (विद्याधर-दम्पती) को चम्पानगर में फेंक देता है। वे वहीं रहने लगते हैं, जहाँ वे 'हरि' नामक बालक को जन्म देते हैं। यहीं से हरिवंश इस प्रकार शुरू हुआ—

आर्यक-मनोरमा
|
हरि
|
कई पीढ़ियों के बाद राजा सुमित्र-पद्मावती
|
बसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत
|
सुव्रत
|
दक्ष-इला

दक्ष अपनी ही कन्या मनोहारी को पत्नी बना लेता है। इला रूठकर, अपने पुत्र ऐलेय के साथ दुर्गम वन में चली जाती है और इलावर्धन नगर बसाती है। राजा होने पर ऐलेय ताम्रलिप्ति और नर्मदा के तट पर माहिष्मती नगर की स्थापना करता है। यहाँ से हरिवंश की दूसरी स्वतन्त्र शाखा फूटती है, जिसमें अरिष्टनेमि और मत्स्य नामक राजा प्रमुख थे।

राजा मत्स्य हस्तिनागपुर और भद्रपुर नगरों को जीत लेता है। उसके सौ पुत्रों में आयोधन सबसे प्रतापी था। आयोधन के आगे के वंश की परम्परा इस प्रकार मिलती है—

आयोधन
|
सूर्य (तीसरी पीढ़ी)
|
अभिचन्द (सातवीं पीढ़ी)
|
वसु (नारद और पर्वतक का सहपाठी)
|

दस पुत्र (वसु के पतन के बाद एक-के-बाद एक आठ पुत्रों की मृत्यु, नौवाँ पुत्र सुवसु नागपुर चला गया तथा दसवाँ बृहद्ध्वज मथुरा में जा बसा।)
बृहद्ध्वज की परम्परा में यदु राजा हुआ।
|
नरपति
|
शूर — वीर

'रिट्ठणेमिचरिउ' में हरिवंश का प्रारम्भ इन्हीं दोनों भाइयों (शूर और वीर) से होता है जो इस प्रकार है—

शूर और सुन्दरी (पत्नी)
|
अंधकवृष्णि-सुभद्रा (पत्नी)
|
१० पुत्र (समुद्रविजय आदि)
२ पुत्रियाँ मद्री और कुन्ती
|
वसुदेव-देवकी
|
सात पुत्र (उनमें से कृष्ण अन्तिम)
कई पत्नियाँ थीं जिनमें रेवती से
बलराम

वीर और पद्मावती (पत्नी)
|
भोजकवृष्णि—सुमुखी
|
३ पुत्र (उग्रसेन, देवसेन, महासेन)
१ पुत्री (गान्धारी)
|
उग्रसेन —पद्मावती (पत्नी)
|
कंस तथा देवकी (वसुदेव की पत्नी)

राजा वसु का जो पुत्र (सुवसु) नागपुर जा बसा था, उसकी परम्परा में बृहद्रथ हुआ जो जरासंध का पिता था। जरासंध और कालिन्दीसेना से जीवंजसा कन्या हुई। जरासंध के कई भाई और पुत्र थे। उक्त वंशवृक्ष और उसकी शाखाओं से स्पष्ट है कि यादवकुल का मूलपुरुष 'यदु' हरिवंश की उस शाखा से हुआ जो दक्ष के समय स्वतन्त्र हो गयी थी। यदु के पोतों (शूर और वीर) से यदुवंश दो शाखाओं में फैलता है, परन्तु उनमें सौहार्द है। दूसरी पीढ़ी में, एक शाखा में वसुदेव हुए और दूसरी में देवकी और कंस। इस प्रकार वे सगोत्री थे परन्तु कंस अपनी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से कर देता है। मगध का राजवंश और विदर्भ का राजवंश भी हरिवंश की विच्छिन्न हुई (इला-ऐलेय) शाखा के पत्ते थे। पाण्डवकुल अलग था। परन्तु यदुकुल की कन्याएँ कुन्ती, मद्री और गान्धारी उन्हें ब्याही थीं। तीर्थंकर नेमिनाथ समुद्रविजय-शिवादेवी से उत्पन्न हुए। समुद्रविजय वसुदेव के बड़े भाई थे। इस प्रकार कृष्ण और नेमि दोनों चचेरे भाई थे। वसुदेव और कंस में एक पीढ़ी का अन्तर है। कंस और कृष्ण में भी एक पीढ़ी का अन्तर है। परन्तु अपनी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से करने के कारण वह बहनोई बने और कृष्ण भानजे। कंस के विद्रोह का प्रत्यक्ष कारण माता-पिता (उग्रसेन और पद्मावती) का क्रूर व्यवहार है। वास्तविकता का पता चलने पर वह विद्रोह ग्रंथि बन जाता है। जीवंजसा देवकी का रमणवस्त्र दिखाकर आग में घी का काम करती है। जैन पुराणकारों का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि राग की क्रिया-प्रतिक्रिया से एक ही कुल के लोग न केवल एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं, बल्कि उनमें भयंकर युद्ध ठन जाते हैं। चूँकि जैन पुराणकार दूसरे मत (वैदिक मत) में प्रचलित हरिवंश परम्परा से जैन हरिवंश-परम्परा का अन्तर बताने के लिए ही पुराण की रचना करते हैं अतः यहाँ हिन्दू पुराणों की हरिवंश परम्परा का जानना आवश्यक है जिससे सही स्थिति का पता लग सके।

महाभारत : वंश-परम्परा

महाभारत के अनुसार[1] सूर्यवंश और चन्द्रवंश की परम्परा इस प्रकार है—

१. नारायण
|
२. ब्रह्मा

सूर्यवंश	चन्द्रवंश
३. मरीचि	३. अत्रि
४. कश्यप	४. चन्द्र
५. विवस्वान् (सूर्य)	५. बुध
६. वैवस्वत् मनु	६. पुरुरवा
७. इला (सुद्युम्न)	७. आयुष्

चन्द्रवंश की आगे की वंशावलि इस प्रकार है—

८. नहुष, ९. ययाति, १०. पुरु, ११. जनमेजय, १२. प्राचिन्वान्, १३. संयाति, १४. अहंयाति, १५. सार्वभौम, १६. जयसेन, १७. अवाचीन, १८. अरिह, १९. महाभौम, २०. अयुतनायी, २१. अक्रोधन, २२. देवातिथि, २३. अरिह, २४. ऋक्ष, २५. मतिनर, २६. तंसु, २७. इलिन, २८. दुष्यन्त, २९. भरत, ३०. सुमन्यु, ३१ सुहोत्र, ३२. हस्ती, ३३. विकुण्ठन, ३४. अजमीढ, ३५. संवरण, ३६. कुरु, ३७. विदुर, ३८. अनश्वा, ३९. परीक्षित, ४०. भीमसेन, ४१. प्रतिश्रवा, ४२. प्रतीप, ४३. शंतनु, ४४. विचित्रवीर्य, ४५. धृतराष्ट्र, ४६. धृतराष्ट्र के पुत्र।

इस प्रकार पाण्डव आदिनारायण की ४६वीं पीढ़ी में आते हैं।

चन्द्रवंश और पाण्डववंश

स्व० डॉ० चिन्तामणि राव वैद्य के अनुसार मनु की पुत्री इला और चन्द्र से चन्द्रवंश की उत्पत्ति हुई।[2] पहला राजा पुरुरवा हुआ। पुरुरवा और उर्वशी की प्रेमकथा ऋग्वेद में भी है। दूसरे राजा ययाति हैं।

ययाति नहुष के दूसरे पुत्र थे। इनके बड़े भाई यतियोग का आश्रय लेकर ब्रह्मीभूत हो गए थे। ययाति की दो पत्नियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। दोनों से पाँच पुत्र हुए : ययाति-देवयानी से यदु और तुर्वसु तथा ययाति-शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पुरु।

देवयानी शुक्राचार्य की कन्या थी, अतः ययाति मुनिकोप के डर से उससे विवाह नहीं करते। लेकिन बाद में स्वीकृति मिल जाने पर वह विवाह कर लेते हैं। शर्मिष्ठा के पुत्रों का पता चलने पर देवयानी अपने पिता के पास जाती है और उन्हें सारी बात बताती है। शुक्रा-

---

१. कल्याण, वर्ष ३, संख्या ११, सितम्बर १९५८

२. कल्याण, वर्ष ३, संख्या, १०, अगस्त १९५८

चार्य इन्हें जराग्रस्त होने का शाप देते हैं। पुरु अपना यौवन पिता को दे देता है, क्योंकि शुक्राचार्य के अभिशाप का निवारण एकमात्र यही था कि यदि पुत्र अपना यौवन दे दे तो राजा ययाति युवा हो सकता है। हजारों वर्षों तक विषय-सेवन करने पर भी तृप्ति नहीं होने पर, ययाति पुरु को यौवन वापस देकर और उसका राज्याभिषेक कर वन के लिए प्रस्थान करता है। इतिहासविदों का मत है कि यदु से यादव, तुर्वसु से यवन, द्रुह्यु से भोज, पुरु से कौरव और अनु से म्लेच्छ हुए।

ययाति की दूसरी पत्नी शर्मिष्ठा वृषपर्वा की पुत्री थी। श्री वैद्य का मत है कि पुरु के वंश में पहला राजा दुष्यन्त हुआ। भरत के वंशज हस्ति ने हस्तिनापुर बसाया। हस्ति के प्रपौत्र कुरु ने गंगा और यमुना के दोआब के ऊपरी क्षेत्र में कुरुक्षेत्र का विस्तार किया। गंगा के पूर्व और दक्षिण में बसने वालों को ब्राह्मण-ग्रन्थों में उन्नत और प्रतापी बताया गया है। चन्द्रवंशी राजा सिन्धुनदी के तट पर राज करते थे। राजा वृषपर्वा (ईरान के राजा) का राज्य ययाति के राज्य से लगा हुआ था।

उक्त दोनों कथनों की तुलना से हम इस समान निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाभारत के अनुसार, चन्द्रवंशी ययातिपुत्र यदु से जिस समय यादव हुए उसी समय, ययाति के दूसरे-दूसरे पुत्रों से अन्य अनेक क्षत्रियवंशों का विकास हुआ। चन्द्रवंश और सूर्यवंश के आदि पुरुष नारायण हैं। जैन परम्परा के अनुसार भी यादवों का आदिपुरुष यदु था। यदु मूलतः हरिवंश का था तथा हरिवंश का मूल पुरुष 'हरि' था जो विद्याधर दम्पती आर्यक और मनोरमा की सन्तान था। जैन परम्परा सूर्यवंश और चन्द्रवंश की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवंश से मानती है।

नर-नारायण और नरोत्तम

महाभारत में वेदव्यास का यह मंगलाचरण है—

"ओं नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।"

इसमें पहले नारायण को नमस्कार है, फिर नर को और तब नरोत्तम को। विद्वानों का मत है कि 'नर-नारायण' मूल उपास्य देव हैं। ये 'नर-नारायण' ही अर्जुन और कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। महाकवि स्वयंभू ने 'अर्जुन' के अर्थ में 'नर' का प्रयोग किया है। महाभारत के अनुसार नर और नारायण एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। नर और नारायण की स्तुति के बाद नरोत्तम को नमस्कार किया गया है। यह नरोत्तम श्रीकृष्ण हैं, ये नारायण ऋषि के अवतार नहीं। नरोत्तम कृष्ण ही सबके मूल, सर्वव्यापी, सर्वातीत, सच्चिदानन्दघन, स्वयं भगवान्, परात्पर ब्रह्म हैं। अवतार रूप में वह परमब्रह्म स्वरूप वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण हैं। 'रिट्ठणेमिचरिउ' में श्रीकृष्ण की जिन बाललीलाओं का वर्णन और यौवनलीलाओं का संकेत है उनका स्रोत महाभारत नहीं है। महाभारत में श्रीकृष्ण पहले पहल आदिपर्व में राजा द्रुपद की राजधानी में द्रौपदी के स्वयंवर के अवसर हमारे सामने आते हैं। लक्ष्यभेद के फलस्वरूप द्रौपदी अर्जुन के गले में जयमाला डाल देती है। इस पर कौरव युद्ध प्रारम्भ कर देते हैं। श्रीकृष्ण तब पाण्डवों का पक्ष लेते हैं और कर्ण को परास्त करते हैं। पाण्डवों को ब्राह्मणवेष में देखकर उपस्थित राजा सामूहिक युद्ध की बात सोचते हैं परन्तु कृष्ण सबको समझा-बुझा देते हैं। दूसरी बार बलराम के साथ श्रीकृष्ण उस समय उपस्थित होते हैं जब पाण्डव माँ कुन्ती और द्रौपदी

के साथ हस्तिनापुर जाते हैं। वह भीष्म, द्रोण, विदुर आदि के साथ धृतराष्ट्र को समझाकर इस बात के लिए राजी करते हैं कि पाण्डवों को उनका न्यायसम्मत आधा राज्य दिया जाए। उन्हें 'खाण्डवप्रस्थ' मिलता है। उनके आदेश पर इन्द्र खाण्डवप्रस्थ में इन्द्रपुरी के समान 'इन्द्रप्रस्थ' नगरी की रचना करता है। वे धूमधाम से नगर में प्रवेश करते हैं। तीसरी बार, वह तब सामने आते हैं जब बारह वर्ष के वनवास-काल में तीर्थों का पर्यटन करते हुए पाण्डव प्रभास तीर्थ पहुंचते हैं। वे चिरसखा अर्जुन से मिलने आते हैं। अर्जुन के साथ वे द्वारिका नगरी जाते हैं। चौथी बार वह खाण्डववन-दाह के प्रसंग में दिखाई देते हैं। पांचवीं बार, युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय यज्ञ के समय आते हैं। वह बड़ी कुशलता से जरासंध का वध करवाते हैं। इसके बाद राजसूय यज्ञ शुरू होता है। उसमें ब्राह्मणों के पैर पखारने का काम श्रीकृष्ण स्वयं अपने ऊपर लेते हैं। श्रीकृष्ण की प्रशंसा शिशुपाल को सहन नहीं होती। वह भड़क उठता है। वह युद्ध के लिए उन्हें ललकारता है। सौ अपराध क्षमा करने के बाद, श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं। छठी बार, वह द्रौपदी के चीरहरण प्रसंग पर उपस्थित होते हैं और वस्त्रावतार धारण कर अपनी भगवत्ता प्रकट करते हैं। सातवीं बार वह पाण्डवों के वनवास प्रसंग पर, उनसे वन में मिलने आते हैं और आवेश में कहते हैं—लगता है कि यह धरती दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन के रक्त का पान करेगी। वह कृष्णा (द्रौपदी) से कहते हैं—'शिशुपाल के भाई शाल्व ने द्वारिका पर आक्रमण कर दिया था। उसे परास्त करने में समय लग गया अतः मैं नहीं आ सका। यदि आ सकता तो युधिष्ठिर को जुआ खेलने से रोक देता।' मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि, मुझे पुरातन प्रलय के समय जिन देवता भगवान् (बालमुकुन्द) का दर्शन हुआ था वही ये कृष्ण हैं। आठवीं बार वह दुर्वासा के कोप से द्रौपदी की रक्षा करते हैं। दुर्वासा युधिष्ठिर के अतिथि बनकर आते हैं। युधिष्ठिर उनसे भोजन का आग्रह करते हैं। परन्तु द्रौपदी भोजन कर चुकी होती है। वह संकट में पड़ जाती है। उस समय श्रीकृष्ण उसकी सहायता करते हैं। नौवीं बार वह विराट की सभा में अभिमन्यु-उत्तरा के विवाह में सम्मिलित होते हैं। वहां यह प्रश्न उठाया है कि पाण्डवों का राज्य किस प्रकार वापस दिलाया जाए। युद्ध में सहायता करने के लिए अर्जुन और दुर्योधन श्रीकृष्ण के पास द्वारिका पहुंचते हैं। उनमें से एक (अर्जुन) पैरों के पास बैठता है और दूसरा सिरहाने। अर्जुन दस करोड़ सेना के विकल्प में श्रीकृष्ण को अपने पक्ष में रखना पसन्द करता है, भले ही वह युद्ध में न लड़ें। दुर्योधन इस बात से प्रसन्न है कि कृष्ण की दस करोड़ सेना उसकी ओर से लड़ेगी।

□

विषय अनुक्रम

पहला सर्ग

मंगलाचरण। तीर्थंकर नेमिनाथ का स्तवन। ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य। शौरीपुर और मथुरा के राजा 'शूर' और 'वीर' से क्रमशः अन्धकवृष्णि और नरपतिवृष्णि का जन्म। अन्धकवृष्णि और सुभद्रा से समुद्रविजय आदि दस पुत्रों की उत्पत्ति। दसवें पुत्र वसुदेव। दो पुत्रियाँ भी—कुन्ती और माद्री। मथुरा के राजा नरपति-वृष्णि और उनकी पत्नी पद्मावती से उग्रसेन आदि तीन पुत्र तथा गान्धारी नाम की एक कन्या की उत्पत्ति। मगधनरेश जरासन्ध की अनुपम बल-ऋद्धि। सुप्रतिष्ठ मुनि के उपदेश से अन्धकवृष्णि और नरपतिवृष्णि द्वारा दीक्षा-ग्रहण। शौरीपुर में समुद्र-विजय का तथा मथुरा में उग्रसेन का शासन। वसुदेव की कुमार अवस्था का वर्णन। वसुदेव के सौन्दर्य की नगर की युवतीजन पर व्यापक प्रतिक्रिया। समुद्रविजय द्वारा वसुदेव पर अनुशासन। वसुदेव का राजप्रासाद से चुपचाप निष्क्रमण। श्मशान में पहुँचकर एक चिता में आभूषणों को डालकर तथा घोड़े की पीठ पर पत्र बाँधकर वहाँ से चल देना। पत्र और चिता में पड़े गहनों से परिवार और नगरवासियों द्वारा वसुदेव की मृत्यु हो जाने का अनुमान। उधर वसुदेव का विजयखेट नगर पहुँचना और सुग्रीव की कन्याओं के साथ पाणिग्रहण। १-१२

दूसरा सर्ग

वसुदेव का महावन में प्रवेश। महावन का वर्णन। सलिलावर्त सरोवर में अव-गाहन। महागज का सामना। महागज को वश में कर लेना। अर्चिमाली और वायु-वेग से भेंट। विजयार्धपर्वत पर विद्याधर अशनिवेग की कन्या श्यामा से विवाह। रात्रि में अंगारक द्वारा विमान से वसुदेव का अपहरण। श्यामा द्वारा ससैन्य अनुसरण। विमान का आहत हो जाना। वसुदेव का चम्पानगरी में प्रवेश। वासु-पूज्य जिनेन्द्र की वन्दना। चम्पानगरी का वर्णन। वीणावादन में विजय प्राप्त कर नगरश्रेष्ठी चारुदत्त की कन्या गन्धर्वसेना से विवाह। विद्याधरबाला नीलंजसा, सोमलक्ष्मी और मदनवेगा से पाणिग्रहण। सात सौ वर्ष पूरे होने पर अरिष्टनगर में लोहिताक्ष राजा की कन्या रोहिणी के स्वयंवर में वसुदेव का पहुँचना। १३-२३

तीसरा सर्ग

स्वयंवर में पटहवादक के रूप में वसुदेव का द्वार पर स्थित होना। स्वयंवर का वर्णन। रोहिणी द्वारा वसुदेव का वरण। स्वयंवर में आये हुए विरोधी राजाओं से युद्ध। विजय-प्राप्ति। पुन: जरासन्ध की सेना से युद्ध। वसुदेव द्वारा सभी को पराजित करना। युद्ध में एकाएक अपने बड़े भाई समुद्रविजय को देखकर आक्रामक वृत्ति का त्याग। बाद में दोनों भाईयों का स्नेहमिलन। २४-३६

चौथा सर्ग

राजा वसुदेव द्वारा धनुर्विद्या की शिक्षा। कंस द्वारा शिष्यत्व ग्रहण करना। मगधनरेश जरासन्ध की घोषणा के अनुसार गुरु-शिष्य द्वारा सिंहरथ को बांधकर लाना। परिणामस्वरूप जरासन्ध की पुत्री जीवंजसा से कंस का विवाह। कंस द्वारा भी वसुदेव के साथ अपनी बहिन देवकी का विवाह। एक दिन अतिमुक्तक देवर्षि का चर्या के लिए मथुरा में प्रवेश। जीवंजसा द्वारा कुतूहलवश देवकी का रमणवस्त्र देवर्षि को दिखाना। देवर्षि का क्रोध। जरासन्ध और कंस की मृत्यु की भविष्य-वाणी। भयभीत कंस का वसुदेव से वचन प्राप्त कर लेना कि देवकी के गर्भ से जो भी उत्पन्न होगा वह उसे चट्टान पर पछाड़कर मार डालेगा। चिन्तित देवकी और वसुदेव का अतिमुक्तक के पास जाना। देवर्षि से यह जानकर कि उनके छह पुत्र चरमशरीरी होंगे, उनकी मृत्यु नहीं होगी तथा सातवाँ पुत्र मथुरा और मगध के नरेश के क्षय का कारण बनेगा, दम्पती को आत्मसन्तुष्टि। देवकी के क्रम से छह पुत्रों का जन्म, नैगमदेव द्वारा मलयगिरि पर ले जाकर उनका लालन-पालन। देवकी के सातवें पुत्र के रूप में कृष्ण का जन्म। शिशु के शुभ लक्षण। रात्रि में वसुदेव द्वारा शिशु को उठाकर ले जाना और यशोदा को देकर उनकी सद्य:जात पुत्री लाकर कंस को सौंप देना। गोकुलपुरी में हर्ष। ३७-४८

पाँचवाँ सर्ग

नन्द के घर शिशु का लालन-पालन। कंस को सूचना। उसका शंकित हो उठना। कंस द्वारा सिद्ध देवियों को कृष्ण-वध का आदेश। मायामयी पूतना द्वारा कृष्ण को विषपूर्ण स्तनपान कराना और पीड़ित होकर भाग जाना। कृष्णवध के लिए और भी अनेक विद्यादेवियों द्वारा रचे गये षड्यन्त्रों का असफल होना। कालान्तर में देवकी और बलराम का बालक कृष्ण को देखने के लिए गोकुल-गमन। देवकी की प्रसन्नता। इधर कंस का भय उत्तरोत्तर बढ़ते जाना। कंस के आदेश से बालक कृष्ण का नाग-शय्या पर लेटना। कृष्ण को मारने के लिए कंस द्वारा अनेक उपाय। ४९-६०

छठा सर्ग

यमुना के महाद्रह सरोवर में कृष्ण का प्रवेश। कालियनाग का दमन। कंस के पक्ष

के चाणूर और मुष्टिक महामल्लों का कृष्ण और बलभद्र द्वारा पराजित करना। कंस-वध। अन्त में बलराम से रेवती का और कृष्ण से सत्यभामा का पाणिग्रहण। ६१-७३

सातवाँ सर्ग

कंस की मृत्यु पर जीवंजसा का पिता जरासंध के समक्ष विलाप। जरासंध के आदेश से कालयवन का यादवसेना पर आक्रमण। दोनों ओर से भयंकर युद्ध। परिस्थितिवश यादवसेना का पश्चिमी तट की ओर हट जाना। समुद्रवर्णन। ७४-८६

आठवाँ सर्ग

समुद्र में मार्ग पाने के लिए कृष्ण और बलराम का दर्भासन पर बैठकर उपवास। समुद्र का बारह योजन हट जाना। इन्द्र के आदेश से द्वारिका नगरी का निर्माण। शिवादेवी को सोलह स्वप्न। सत्रह देवियों द्वारा शिवादेवी के गर्भ का शोधन। शुभ लग्न में तीर्थंकर (नेमि) का जन्म। इन्द्र का आगमन। ऐरावत हाथी का वर्णन। इन्द्र द्वारा जिन-स्तुति। सुमेरु पर इन्द्रादि देवों द्वारा शिशु का जन्माभिषेक। शिशु का 'नेमि' नामकरण। ८७-९८

नौवाँ सर्ग

महर्षि नारद का द्वारिकापुरी आगमन। शृंगार में दत्तचित्त सत्यभामा द्वारा नारद मुनि को न देख पाना। नारद का क्रोध और संकल्प। बलभद्र और नारायण द्वारा महर्षि नारद का सत्कार। नारद के परामर्श से कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का अपहरण। शिशुपाल द्वारा विरोध। युद्ध-वर्णन। ९९-११४

दसवाँ सर्ग

रुक्मिणी से विवाह कर श्रीकृष्ण का बलराम के साथ द्वारिका में प्रवेश। देवर्षि नारद का पुनः आगमन। जम्बुपुर के राजा की कन्या जम्बुवती के साथ परिणय हेतु श्रीकृष्ण को उकसाना। बलराम और कृष्ण द्वारा णमोकार मंत्र का जाप। यक्षदेव का सन्तुष्ट होना और उन्हें आकाशतलगामिनी आदि विद्याओं का दान। श्रीकृष्ण का जम्बुवती से विवाह। एक दिन सत्यभामा के प्रासादोद्यान में कृष्ण के आग्रह पर रुक्मिणी का प्रवेश। सत्यभामा का सौतिया डाह। एक-दूसरे को नीचा दिखाने का निश्चय। कालान्तर में दोनों को एक ही दिन पुत्र-लाभ। रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म। दैवयोग से विद्याधर धूमकेतु का आकाशमार्ग से वहाँ से होकर निकलना। विभंग अवधिज्ञान से अपना पूर्वभव का शत्रु जानकर उसके द्वारा शिशु प्रद्युम्न का अपहरण और खदिरवन में ले जाकर एक शिला के नीचे दबा देना। विद्याधर कालसंवर का वहाँ से निकलना। शिला का हिलना, बालक को उठाना और अपनी पत्नी कंचनमाला को सौंप देना। इधर रुक्मिणी का पुत्र-वियोग से दुःखी होना। नारद का आगमन और धीरज बँधाना। ११५-१२५

ग्यारहवाँ सर्ग

कंचनमाला के घर प्रद्युम्न का यौवनावस्था को प्राप्त होना। कंचनमाला द्वारा प्रद्युम्न को प्रज्ञप्ति-विद्या का दान। प्रद्युम्न के रूप-सौन्दर्य पर उसका मोहित होना। कंचनमाला की कामवेदना। प्रणय-याचना। इच्छा पूर्ण न होने से पति कालसंवर के समक्ष प्रद्युम्न पर लांछन लगाना। प्रद्युम्न को मारने के लिए कालसंवर के अनेक असफल षड्यन्त्र। तभी महामुनि नारद का आगमन और कालसंवर को वस्तुस्थिति से अवगत कराना। १२६-१३७

बारहवाँ सर्ग

नारद के साथ कुमार प्रद्युम्न का आकाशमार्ग से जाना। मार्ग में कुरुराज की नगरी का आकाश से अवलोकन। नगर-वर्णन। भानुकुमार की बारात को जाते हुए देखना। प्रद्युम्न का विमान से उतरकर नगर में प्रवेश। उसकी अनेक लीलाओं का वर्णन। पश्चात् आकाशमार्ग से द्वारिका पहुँचना। अनेक लीलाओं का प्रदर्शन। माता रुक्मिणी से मिलाप। अपरिचय की स्थिति में कृष्ण का प्रद्युम्न से युद्ध। नारद के द्वारा परिचय पाने पर पिता द्वारा पुत्र का आलिंगन। १३८-१५०

तेरहवाँ सर्ग

कुरुराज की पुत्री उदधिमाला का प्रद्युम्न से विवाह। रुक्मिणी और सत्यभामा के बीच परस्पर आक्षेप। सत्यभामा द्वारा प्रमाण माँगना कि यह युवा रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न ही है। नारद द्वारा विस्तार से सारी घटना का उल्लेख। कालान्तर में यह ज्ञात होने पर कि मधु का भाई कैटभ स्वर्ग से अवतरित होकर कृष्ण का पुत्र होगा, यशस्वी पुत्र की माँ बनने की अभिलाषा से सत्यभामा द्वारा कृष्ण से समागम की याचना। प्रद्युम्न की युक्ति। जम्बुवती से शम्बुकुमार का जन्म। रुक्मिणी द्वारा अपने पुत्र के लिए विदर्भराज से उसकी कन्या माधवी को माँगना। मना करने पर प्रद्युम्न और शम्बुकुमार द्वारा विदर्भराज की नगरी में उत्पात। विदर्भराज का क्रोधित होना। नारद द्वारा स्थिति स्पष्ट होने पर हर्ष। विवाहोत्सव। १५१-१६०

परिशिष्ट १६१-१६६

कइराज-सयंभूएव-किउ

रिट्ठणेमिचरिउ

पढमो सग्गो

सिरिपरमागमणालु सयलकला-कोमलदलु ।
करहु विहूसणु कण्णे जायवकुरुव-कव्वुप्पलु[1] ॥

पणवामि णेमितित्थंकरहो ।
हरिबल-कुल-णहयल-ससहरहो ॥
तइलोय-लच्छि-लंछिय-उरहो ।
परिपालिय-अजरामरपुरहो ॥
कल्लाण-णाण-गुण-रोहणहो ।
पंचिंदियगाम-णिरोहणहो ॥
भामंडलमंडिय-अवयवहो ।
परिपक्क-मोक्खहल-पायवहो[2] ॥
तइलोक्कसिहर-सिंहासणहो ।
णिरुणिरुवमचामर-वासणहो ॥
जसु तणइ तित्थे उप्पण्णाहा ।
जिह छणचंदुग्गमे विमलपहा ॥

श्री परमागम जिसका नाल है, जो समस्त कलाओं रूपी कोमल दलोंवाला है, ऐसे यादवों और कौरवों के काव्यरूपी कमल को कान का आभूषण बनाओ ।

मैं नेमि तीर्थंकर को प्रणाम करता हूँ जो नारायण और बलभद्र के कुलरूपी आकाश-तल के चन्द्र हैं, जिनका वक्षस्थल त्रिलोक की लक्ष्मी से शोभित है, जिन्होंने अजरामरपुर (मोक्षपुर) का परिपालन किया है, जो कल्याणों, ज्ञानों और गुणस्थानों में आरोहण करनेवाले हैं, जिन्होंने पाँच इन्द्रियों के समूह का निरोध किया है, जिनके शरीर के अंग भामंडल से मंडित हैं, जो ऐसे वृक्ष हैं जिनका मोक्ष रूपी फल पक चुका है; जिनके चामर और छत्र अनुपम हैं, जिनके तीर्थ में उत्पन्न हुई आभा ऐसी प्रतीत होती है जैसे पूर्णिमा के चन्द्रमा के उदित होने पर स्वच्छ प्रभा हो ।

---

१. अ—कुडुप्पलु । म—कुहुप्पलु । ब—कुहुप्पलु । वस्तुतः कव्वुप्पलु पाठ उचित है, प० च० में पाठ है—'सयंभूकव्वुप्पलं जयउ' अर्थात् स्वयंभू के काव्यरूपी कमल की जय हो । २. ब मोहफलपायवहो ।

घत्ता—सासय-सुक्ख-णिहाणु अमरभाव-उप्पायणु ।
कण्णंजलिहिं पिएहु जिणवर-वयण-रसायणु ॥१॥

चिंतवइ सयंभु काइं करमि ।
हरिवंस-महण्णउ केम तरमि ॥
गुरुवयण-तरंडउ लद्धु णवि ।
जम्महो वि ण जोइउ को वि कवि ॥
णउ णायउ बाहत्तरि कलउ ।
एक्कु वि ण गंथु परिमोक्कलउ ॥
तहिं अवसरि सरसइ धीरवइ ।
करि कव्वु दिण्ण मइं विमलमइ ॥
इंदेण समप्पियउ वायरणु ।
रसु भरहेण वासें वित्थरणु ॥
पिंगलेण छंद-पय-पत्थारु ।
भम्महें दंडिणिहिं अलंकारु ॥
बाणेण समप्पियउ घणघणउ ।
तं अक्खरडंबरु अप्पणउ ॥
सिरिहरिसें णियउ णिउणत्तणउ ।
अवरेहिं मि कइहिं कइत्तणउ ॥
छड्डणि-दुवई-धुवएहिं जडिय ।
चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय ॥
जणणयणाणंद जणेरिए ।
आसीसिए सव्वहुं केरिए ॥
पारंभिय पुणु हरिवंसकह ।
ससमय-परसमय-वियार-सह ॥

घत्ता—जो शाश्वत सुख का निधान है तथा अमरभाव को उत्पन्न करनेवाला है; जिनवर के ऐसे वचन रूपी रसायन (अमृत) का कानों की अंजलि से पान करो ॥१॥

कवि स्वयंभू विचार करता है कि क्या करूँ ? हरिवंशरूपी महासमुद्र को किस प्रकार पार करूँ ? मैंने गुरुवचन रूपी नाव प्राप्त नहीं की और न जन्म से किसी कवि के काव्य को देखा । मैंने बहत्तर कलाओं को नहीं जाना । एक भी ग्रन्थ को खोलकर नहीं देखा । उस अवसर पर सरस्वती धीरज बँधाती है—'तुम काव्य की रचना करो । मैंने तुम्हें विमल मति (प्रतिभा) दी ।' तब इन्द्र ने व्याकरण दिया, भरत ने रस और व्यास ने विस्तार करना दिया । पिंगलाचार्य ने छंद और पदों का प्रस्तार दिया, भामह और दंडी ने अलंकार-शास्त्र दिया, बाण ने वह अपना सघन अक्षराडंबर दिया । श्रीहर्ष ने अपना निपुणत्व दिया । दूसरे कवियों ने अपना कवित्व दिया । छड्डणी, दुवई और ध्रुविकाओं से जड़ित पद्धडिया चतुर्मुख ने प्रदान किया । लोगों के नेत्रों को आनन्द देनेवाली सबकी असीस से मैंने तब यह हरिवंश-कथा प्रारंभ की जो स्वमत और परमत के विचारों को सहन करनेवाली है ।

घत्ता—पुच्छइ मागहणाहु भव-जर-मरण-वियारा।
थिउ जिणसासणि केम कहि हरिवंसु भडारा ॥२॥

णउ फिट्टइ अज्जवि भंति मणे।
विवरेरउ सुव्वइ सव्वजणे ॥
णारायणु णरहो सेव करइ।
रहु खेडइ घोडा संवरइ ॥
धयरट्ठु पंडु अदार[1] जणिया।
कोंतिहि भत्तार-पंचभणिया ॥
पंचालिहिं पंडव पंच जहिं।
बोल्लेव्वउ[2] सच्चु-असच्चु तहिं ॥
दुच्चरिउ जि लोयहुँ मंडणउ।
णउ चिंतवंति जस खंडणउ ॥
सच्छंदमरणु गंगेउ जइ।
तो तेण काइं किय कालगइ ॥
सचावेण सरेण वि जइ अजउ।
तो दोणु काइं रणे खयहो गउ ॥
कण्णेण कण्णु जइ णीसरइ।
तो कोंति वियंति किण्ण मरइ ॥

घत्ता—माणुस कलसेण होइ कुलगुरु कलस-समुब्भव।
जइवि विरुद्धा सुट्ठु रुहिरु पियंति ण बंधव ॥३॥

घत्ता—मगधनाथ (श्रेणिक) पूछता है—जन्म, जरा और मृत्यु का नाश करनेवाले हे आदरणीय! बताइए, जिन-शासन में हरिवंश की कथा का क्या स्वरूप है? ॥२॥

आज भी मन से भ्रांति नष्ट नहीं होती। सब लोगों में यह उल्टी बात सुनी जाती है कि नारायण नर की सेवा करता है, रथ हाँकता है, घोड़े की देखभाल करता है, धृतराष्ट्र और पंडु अदारजनित—अन्य स्त्री से उत्पन्न हैं (नियोग प्रथा के अनुसार, व्यास द्वारा, राजा विचित्रवीर्य की विधवाओं से उत्पन्न हैं।), जहाँ पांचाली के पाँच पांडव कहे जाते हैं, वहाँ आप बतायें कि सत्य और असत्य क्या है? दुश्चरित्र ही जिन लोगों का मंडन है, वे यश के खंडित होने की चिंता नहीं करते। यदि भीष्म पितामह का मरण स्वच्छंद था, तो उन्होंने कालगति क्यों की? यदि धनुष और तीर से द्रोणाचार्य अजेय थे तो वह युद्ध में विनाश को क्यों प्राप्त हुए? कर्ण यदि कान से निकले तो उन्हें जन्म देनेवाली कुन्ती की मौत क्यों नहीं हुई?

घत्ता—भले ही मनुष्य घट से उत्पन्न होता हो, कौरवों के कुलगुरु अगस्त का जन्म घट से हुआ हो; भाई अपने भाई से कितना ही विरुद्ध क्यों न हो जाए, वे एक दूसरे का रक्तपात नहीं करते ॥३॥

---

१. ब—अपरे जणिया। २. अ ब—बोलवउ सच्च समच्चु तहिं।

तं णिसुणिवि वयणु मुणिमणोहरु ।
सुणि सेणिय आहासइ गणहरु ॥
सूरवीर-हरिवंस पहाणा ।
सउरी-महुरा-पुरवर-राणा ॥
अंधयविट्ठि जाणिज्जइ[1] एक्कें ।
णरवइविट्ठि पुणु अण्णेक्कें ॥
सूरसुयहो तहो रज्ज करंतहो ।
सउरीपुरहो परिपालंतहो ॥[2]
सत्तावीस जोअण महियहो ।
वासहो ससहो परासर दुहियहो[3] ॥
पुत्त सुहद्दहे दस उप्पण्णा ।
णं बहुलोयवाल अवइण्णा ॥
तेत्थु समुद्दविजउ पहिलारउ ।
पुणु अक्खोह रणभर-धुरधारउ ॥
थिमिहय पयावइ सयरु उप्पज्जइ ।
हिमगिरि-अचलु-विजउ जाणिज्जइ ॥
धारणु पूरणु सहुं अहिचंदें ।
पुणु वसुएउ जाउ आणंदें ॥

घत्ता— ताहं सहोयरियाउ कोंति मद्दि वे कण्णउ ।
णं दहधम्म-हुयाउ[4] खंति-दयाउ उप्पण्णउ ॥४॥

मुनियों के लिए सुन्दर उन वचनों को सुन कर गणधर (गौतम) कहते हैं—हे श्रेणिक ! सुनो, हरिवंश के प्रमुख सूर और वीर श्रेष्ठ नगरों शौर्यपुरी और मथुरा के राजा थे। एक (सूर) से अंधकवृष्णि का जन्म हुआ और दूसरे से नरपतिवृष्णि का। राज्य करते हुए और सत्ताईस योजन आयाम वाली शौर्यपुरी का परिपालन करते हुए सूर के पुत्र अंधकवृष्णि के व्यास की बहन, और पाराशर की पुत्री सुभद्रा से दस पुत्र उत्पन्न हुए, मानो दस लोकपाल ही अवतीर्ण हुए हों। उनमें समुद्रविजय पहला था। दूसरा अक्षोभ्य युद्ध के भार की धुरी को धारण करनेवाला था। फिर स्तमित, प्रजापति और सागर उत्पन्न हुए। फिर हिमवान, अचल और विजय (नाम से) जाने जाते हैं। अभिचन्द के साथ धारण और पूरण का जन्म हुआ, फिर आनन्दपूर्वक वसुदेव उत्पन्न हुए।

घत्ता—उनकी कुन्ती और माद्री नाम की दो कन्याएँ सगी बहनें थीं जो ऐसी जान पड़ती थीं मानो दस धर्मों से शान्ति और क्षमा का जन्म हुआ हो। ॥४॥

१. ज, ब—जाणिज्जइ। २. ज, अ, ब—सउरीपुरवर परिपालंत हो। ३. ब में दुरियहे पाठ सही है, परन्तु तुक के कारण दुहियहो पाठ रखा गया। ४. ब—हुवाउ।

[1]णरवइ-विट्ठिएं रज्जु करंतें।
महुरापुरवरु परिपालंतें ॥
वासहो-सणिय बहिणि पउमावइ।
परिणिय चंदें रोहिणी णावइ ॥
ताहे णंदणु दिणमणि[2] व जायउ।
उग्गसेण उग्गाहं मि उग्गउ ॥
पुणु महासेणु महारणे उज्जउ।
देवसेण देवाहं मि पुज्जउ ॥
पुणु गंधारि-कण्ण-बलवंतहो ॥
मगहामंडलु परिपालंतहो।
दुद्धरसमर-भरोड्ढियकंधहो।
णिरुवम रिद्धि जाय जरसंधहो ॥
दंड तिखंड वसुंधरी सिद्धी।
रयण-णिहाणाद्ध-समिद्धी ॥
जायव-पंडव-कुरुव-हाणी।
रावण रिद्धिहें अणुहरमाणी ॥

घत्ता—ताम तिलोय-पईउ मिलिय-सुरासुर-विंदहो।
सउरीपुरि उप्पण्णु केवलणाणु मुणिंदहो ॥५॥

तो परमरिसिहे सुपइट्ठहो।
उज्जाणि गंधमायणि ठियहो ॥
सउरिपुर-सीमा-वासियहो।
णरणाय-सुरिंद-णमंसियहो ॥
सयलामल-केवल-कुलहरहो।

राज्य करते हुए और मथुरा नगर का परिपालन करते हुए नरपतिवृष्णि ने व्यास की बहन पद्मावती से वैसे ही विवाह किया, जैसे चन्द्रमा रोहिणी से करता है। उसका पुत्र सूर्य की तरह उत्पन्न हुआ। उग्रसेन उग्रों में भी उग्र था। फिर महासेन हुआ जो महायुद्ध में उद्यत रहता था। देवसेन देवों में भी पूज्य था। फिर उस बलवान् के गंधारी कन्या उत्पन्न हुई। मागधमंडल का परिपालन करते हुए तथा दुर्धर युद्धभार से ऊँचे कंधों वाले जरासंध की अनुपम ऋद्धि हो गई। बलपूर्वक उसे तीन खंड धरती सिद्ध हो गई, जो आधे-आधे रत्नों और खजाने से समृद्ध यादवों और कौरवों के लिए हानिस्वरूप तथा रावण की ऋद्धि के समान थी।

घत्ता—इतने में, शौरीपुर में, जिनके लिए सुरों और देवों का समूह मिला है, ऐसे मुनीन्द्र सुप्रतिष्ठ को त्रिभुवनप्रदीप केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ॥५॥

जो गन्धमादन उद्यान में स्थित हैं, शौर्यपुर की सीमा के निवासी हैं, मनुष्यों, नागों और देवों

---

१. ज—णरवइ विट्ठिए रज्जु करंतें। २. ज, अ, ब -दिणमणि व समुग्गउ।

छज्जीव-णिकाय-दयावरहो ॥
भावलयालिंगिय-विग्गहो ।
दूरुज्झिय-सयल परिग्गहहो ॥
दरिसाविय-परममोक्खपहहो[1] ।
सुरवंदण भत्तिय-भायणहो ॥
तहिं अंधयविट्ठि-णराहिवइ ।
सहुं णरवइ-विट्ठएं एक्कमइ ॥
णिसुणेप्पिणु णियभवंतरइं ।
णियणामुप्पत्ति-परं परइं ॥
पभणइ महं णरइ पडंतु धरे ।
तव चरणग्गहणे पसाउ करे ॥

घत्ता— असरणे अथिरे असारे एत्थु खेत्ते ण रम्मइ ।
जहिं अजरामर लोउ तहो देस हो वरि मग्गइ ॥६॥

तो परमभाव-सब्भावरया ।
विक्खंकिय सूरवीरतणया ॥
सउरियहिं समुद्दविजउ थियउ ।
महुराहिउ उग्गसेणु कियउ ॥
अच्छंति जाम भुंजंति धर ।
वसुएवें ताम अणंगसर ॥
परिपेसिय णायरियामणहो ।
कावि अहरु समप्पइ अंजणहो ॥

के द्वारा वंदनीय हैं, जो संपूर्ण पवित्र केवलज्ञान के कुल-गृह हैं, छहों जीव-निकायों की दया करनेवाले हैं, जिनकी देह भावरूपी लता से आलिंगित है, जिन्होंने समस्त परिग्रहों को दूर से छोड़ दिया है, जो परम मोक्ष-पथ को दिखाने वाले हैं, जो देवों की वंदना-भक्ति से स्व-वश हैं, ऐसे सुप्रतिष्ठ मुनि से, वहाँ का नराधिपति अंधकवृष्णि नरपतिवृष्णि के साथ, एक मति होकर, अपने भवान्तर सुनकर, अपनी उत्पत्ति, नाम और परम्परा को सुनकर कहता है—नरक में पड़ते हुए मुझे बचाओ, तपश्चरण ग्रहण करने में मुझ पर प्रसाद कीजिए।

घत्ता—अशरण अस्थिर इस क्षेत्र (मर्त्यलोक) में रमण नहीं किया जाता। जहाँ अजर-अमर लोक है उस देश का वर मांगा जाए।

तब परम भाव और सद्भाव में लीन शूर-वीर के पुत्र अंधकवृष्णि और नरपतिवृष्णि ने दीक्षा ग्रहण कर ली। शौरीपुर में समुद्रविजय स्थापित हुआ। उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया गया। इस प्रकार धरती का उपभोग करते हुए जब वे रह रहे थे कि इतने में वसुदेव ने नगर-वनिताओं के मनों में कामदेव के तीर प्रेषित कर दिये। कोई अमना अधर

1. ज, अ -मोक्खपयहो।

काइँ वि देइ अलत्तउ णियणयणें ।
मुच्छिज्जइ खिज्जइ[1] खणि जि खणे ।
का वि छंडइ णीवि-बंधणउ ।
ढिल्लारउ करइ पइंधणउ ॥
काइँ वि बालु लेइ विवरीय-तणु ।
मुहुँ अण्णहिँ अण्णहिँ देइ थणु ।
एक्केक्कावयवें विलीण का वि ।
वसुएउ असेसु विदिट्ठु ण वि ॥

घत्ता—'जाहे जहिँ जि गय दिट्ठी ताहे तहिँ जि वि थक्कइ।
दुब्बल ढोर इव पंके पडिय ण उट्ठिवि सक्कइ ॥७॥

जुवे णिक्कलंति णिक्कलइ का वि ।
पइसंते पइसइ तत्ति ण वि ॥
काउ वि मयणग्गि सुलिक्कियउ ।
कह कह वि ण पाणहिँ मुक्कियउ ॥
घरे कम्मु ण लग्गइ तियमईहिँ ।
वसुएव-रूव मोहिय-मईहिँ ॥
उवाइउ किज्जइ[3] घरि जि घरे ।
मेलावउ[4] जक्ख-वउत्ति करे ॥
काहे वि सरीरु जर-वेइयउ ।
काहे वि णिल्लाडु पसेइयउ ॥

अंजन को देती है। कोई अपनी आँख में अलक्तक लगाती है। कोई क्षण-क्षण में मूर्च्छा को प्राप्त होती और कोई खीझती है। कोई नीवी की गाँठ खोलती है और परिधान (साड़ी) ढीली करती है। कोई शरीर उलटकर बालक लेती है, वह मुँह दूसरी ओर होता है, और स्तन दूसरी ओर देती है। वसुदेव के एक-एक अंग में विलीन हो जाती हैं, इसलिए उन्हें वसुदेव समग्र रूप से दिखाई नहीं देते।

घत्ता—जिसकी दृष्टि जहाँ (जिस अंग पर) गयी उसकी दृष्टि उसी अंग पर ठहर गयी। कीचड़ में फँसे हुए दुर्बल ढोर की तरह वह उठ नहीं सकी ॥७॥

युवा वसुदेव के निकलने पर कोई निकल पड़ती, प्रवेश करने पर प्रवेश करती, परन्तु तृप्ति नहीं होती। कामदेव की ज्वाला में दग्ध कोई किसी प्रकार अपने को प्राणों से मुक्त नहीं कर पा रही थी। जो स्त्रियाँ वसुदेव के रूप पर मोहित-मति थीं उन्हें घर का काम नहीं भा रहा था। घर-घर में मनौती की जाती कि यक्ष-दंपती मिलाप करवा दे। किसी का शरीर ज्वर से पीड़ित था। किसी का ललाट पसीना-पसीना हो रहा था। ऐसा कोई घर नहीं, कमलरा

१. ब, म—किज्जइ। २. ज, अ—जाहिँ जाहिँ। ३. ज, अ, ब—दिज्जइ।
४. ज—मेयावउ। ब—मेलावउ।

तं ण घरु ण चच्चरु ण वि सह।
जहिं णउ वसुएवहो तणिय कह ॥
काहि वि पइपासि परिट्ठियउ।
णाइं डहइ हुवासणु अट्ठियउ ॥
बोल्लाविय कावि वयंसियए।
सो सुहउ ण फिट्टइ महु हियहे ॥
णाहरणु ण वि रुच्चइ भोयणउ।
[1]ण ण्हाणउ ण वि फुल्लु विलेवणउ।

घत्ता—देवर-ससुर-पईहिं महु सरीरु रक्खिज्जइ।
णिब्भरणेह-णिबंधु-चित्तु केण धरिज्जइ ॥८॥

एहिय अवत्थ जं जाय पुरे।
जे जे पहाण ते करिवि धुरे ॥
पुरपवर महायण भंजविणु [भग्गमणु]
कूवारें गउ णरवइ-भवणु ॥
अहो अंधकविट्ठि-सुहद्द-सुय।
सिवदेवीवल्लह सग्गचुय ॥
परमेसर परम पसाउ करे।
णिग्गमण कुमार हो तणउ धरें ॥
वसुएवें णयरु मोहियउ।
णं कम्महरूवें रोहियउ ॥
घरिणिहिं घरकम्मइं छंडियइं।
णियणाह-महइं उम्मंडियइं ॥

नहीं और सभा नहीं थी जिसमें वसुदेव की कथा न होती हो। किसी के पास बैठा हुआ पति ऐसा जलाता है जैसे आग हड्डियां जलाती हो। सखी के द्वारा किसी से यह कहा गया कि वह सुभग मेरे हृदय से अलग नहीं होता। न तो आभूषण अच्छे लगते हैं और न ही भोजन, न स्नान, न फूल और न लेप।

घत्ता—देवर, ससुर और पति के द्वारा मेरे शरीर की रक्षा की जाती है, लेकिन पूर्ण स्नेह से रचित चित्त को कौन बचा सकता है? ॥८॥

जब नगर में यह हालत हो गयी, तो जो प्रधान लोग थे, उन्हें आगे कर, नगर के प्रवर महाजन भग्न मन हो करुण पुकार करते हुए राजभवन गये। (उन्होंने कहा) हे सुभद्रा के पुत्र अंधकवृष्णि! स्वर्ग से अवतरित हे शिवदेवी के पुत्र! हम पर प्रसाद कीजिए। कुमार का बाहर निकलना रोकिए। कुमार वसुदेव ने नगर को मोहित कर लिया है। मानो कामदेव के दण्ड ने सबको अवरुद्ध कर लिया हो। गृहणियों ने घर के काम और पतियों के सुन्दर

---

१. अ, ब—ण्हाणुवउ णवलण फुल्ल विलेवणउ।

णियणाहँ-मुहइं उम्मोडियइं ॥
ओहुज्जइ मयणुम्मत्तियहिं ।
तुह भायरु परकुल-उत्तियहिं ॥
लइ भुंजि भडारा रज्जु तुहं ।
पय जाउ कहिं मि जहिं लहइ सुहं ॥

घत्ता— जं उप्पज्जइ बालु सइहिं मि णियभत्तारें ।
तं अणुहवइ कुमारु जं किंपि चवइ कुमारें ॥६॥

तं णिसुणेवि णरवइ कुइय मणे ।
कोक्किउ समुद्दएउ कुमारु खणे ॥
तहो अलिय-सणेहें लग्गु गले ।
आलिंगिवि चुंबिउ सिरकमले ॥
उच्छोलिहिं[1] पुणु बइसारियउ ।
पच्छण्ण-वयणेहिं वारियउ ॥
संपइ कुमारु दीसहि विमणु ।
परिहरु पुर-बाहिर-णिग्गमणु ॥
वाओलि-धूलि-आयाव-पवणु ।
आयइं वि सहिप्पिणु फलु कवणु ॥
गयसालहिं मत्तगइंद धरि ।
घरपंगणे कंदुअ-कील करि ॥
पच्छिम-उज्जाणे मणोहरए ।
कुरु केलि-विउले केलीहरए ॥
अवरेहिं विणोयहिं अच्छु तिह ।
सिढिलउ अंगु ण होइ जिह ॥

दंड ने सबको अवरुद्ध कर लिया हो। गृहिणियों ने घर के काम और पतियों के सुन्दर मुख छोड़ दिये हैं। काम से उन्मत्त परकुल पुत्रियों के साथ तुम्हारा भाई देखा जाता है। हे आदरणीय ! अपना राज्य संभालिए। आप ही इसका उपभोग करें। प्रजा कहीं भी जाए, जहां उसे सुख प्राप्त हो सके।

घत्ता—यदि सती के अपने स्वामी से पुत्र होता है, तो कुमार जो भी बातें करता है, उनका अनुभव वह करे ॥६॥

यह सुनकर राजा समुद्रगुप्त मन में कुपित हुआ। एक क्षण में उसने कुमार को बुलाया। वह झूठे स्नेह से उसके गले लगा, आलिंगन कर उसने सिरकमल चूमा और फिर गोद में बैठाया। उसे प्रच्छन्न-वचनों से उसने मना किया। हे कुमार ! तुम इस समय उदास दिखाई देते हो, नगर के बाहर जाना बन्द करो। तूफान, धूल, धूप और पवन—इनको सहन करने का क्या फल ? तुम गजशाला में मतवाले हाथी पकड़ो, घर के आंगन में गेंद की क्रीड़ा करो (गेंद खेलो), सुन्दर पश्चिम उद्यान में विशाल क्रीड़ागृह में क्रीड़ा करो, दूसरे दूसरे विनोदों से इस प्रकार रहो कि जिससे तुम्हारा शरीर म्लान न हो।

१. ब—उच्छोलिहिं।

घत्ता—वंधुणिबंधणे बंधु-वायागुत्तिहिँ छुहुउ ।
थिउ वसुएव-गइंदु विणयंकुसेण णिवद्धउ ॥१०॥

तहिँ अवसरि णरवर-पुज्जिए ।
सिवएविहे आणिउ खुज्जिए ॥
चामीयर-भायण-समलहणु ।
¹परिमल-मेलाविय-भमरयणु ॥
तं मंडु कुमारेण² अवहरिउ ।
तहो तणउ णिएप्पिणु दुच्चरिउ ॥
आरुट्ठ खुट्ठ तहलिंधि-मुहुं ।
बाएहिँ दुवालिहिँ पत्तु तुहुं ॥
णिवबंधणारु जिह मत्तगउ ।
काउरसहो धीरिम होइ कउ ॥
परियाणिवि भायर-वंचणउ ।
किउ कज्जु कुमारें अप्पणउ ॥
णिक्कलिउ ससहयरु एक्कु जणु ।
गउ रत्तिहे भीसणु पेयवणु ॥
जहिँ जमु वि छलिज्जइ डाइणिहिँ ।
गहँ भूय-पिसायहिँ जोइणिहिँ ॥

घत्ता—तं पइसरइ मसाणु जें सुरहं मि भउ लाविउ ।
णाइं भुक्खिएण कालेण मुहुं णिच्चाइउ ॥११॥

णियच्छियं मसाणयं ।
जणावसाण-थाणयं ॥
उलूअजूह-णाइयं ।

घत्ता—वचन रूपी गुप्तियों से प्रेरित और विनय रूपी अंकुश से निबद्ध वसुदेव रूपी महागज भाई के भिबन्धन में स्थित हो गया ॥१०॥

उस अवसर पर नरवरों से पूज्य कुब्जा के द्वारा शिवदेवी के लिए लाया गया, चाँदी के बर्तन में रखा हुआ, सौरभ के कारण जिस पर भ्रमरगण इकट्ठे हो रहे हैं, ऐसा उबटन कुमार ने बलपूर्वक छीन लिया। उसके दुराचरण को देखकर दासी का मुख एकदम लाल हो गया। [वह बोली] इन्हीं दुश्चालों के कारण तुम मतवाले हाथी की तरह दृढ़ बन्धन को प्राप्त हुए। कापुरुष को धीरज कैसे होता है? भाई की प्रवंचना को जानकर कुमार ने अपना काम किया। एक सहचर के साथ वह अकेला घर से निकल पड़ा। रात में भीषण प्रेत-वन में पहुँचा जहाँ डाइनों, ग्रहों, भूत-पिशाचों और योगनियों के द्वारा यम को भी छला जाता है।

घत्ता—वह उस मरघट में प्रवेश करता है, जिसके द्वारा देवों को भय उत्पन्न कर दिया गया है, मानो भूखे काल के द्वारा मुख फैला दिया गया हो ॥११॥

उसने मरघट देखा, जो लोगों के अन्त होने का स्थान था, जो उल्लुओं के समूह के कारण

1. ज, अ—मलावियभमरयणु। २ ज, अ—कुमारें

पभूयभूय-छाइयं ॥
महीरुहोहसेवियं ।
मरुद्धुयंतकंपियं ॥
णिसातमंधारियं ।
जमाणणाणुकारियं ॥
चियग्गिजालमालियं ।
खगावली-रवालियं ॥
सरंडसूलियाउलं ।
सिवासिलट्ठा-संकुलं ॥
णिसायरेक्क-कंपियं ।
पसिद्ध-सिद्ध-सद्दियं ॥
तहिं महामसाणए ।
जमालयाणुमाणए ॥

घत्ता—जायवणाहु पइट्ठु सहयरु दूरु थवेप्पिणु ॥
[1]माणुस णवल वड्डु कट्ठइं मेलावेप्पिणु ॥१२॥

तहिं सव्वाहरणाइं मेल्लियइं ।
सलसिहहे उप्परि घल्लियइं ॥
बोल्लाविउ सहचरु जाहि तुहुं ।
सिवदेविहि एवहिं होउ सुहु ॥
पूरंतु मणोरह पट्टणहो ।
सूराहिव-णंदण-णंदणहो ॥
कहिं चुक्कु सहोयर-पेसणहो ।
हउं उप्परि चडिउ हुआसणहो ॥

ज्ञात था, जो प्रचुर भूतों से आच्छादित था, जो महीग्रह (वृक्षों/ब्राह्मणों ?) से सेवित था, हवा से हिलते वृक्षों से प्रकंपित था, जो रात्रि से अंधकारमय था, जो यम के मुख का अनुकरण करता था, जो चिताओं की ज्वालमालाओं वाला था, जो खगावली के नवशब्दों से भरपूर था, जो सरकंडों और शूलियों से व्याप्त था, जो सियारों और तलवारों से संकुल था, जो निशाचर समूह से आक्रांत था, जो प्रसिद्ध सिद्धों से शब्दायमान था, ऐसे यम के आकार वाले उस महा श्मशान में—

घत्ता—यादवनाथ वसुदेव ने सहचर को दूर कर प्रवेश किया, जहाँ लकड़ियाँ इकट्ठी कर एक युवक जल गया था ।।१२।।

वहाँ उसने (वसुदेव ने) सब आभूषण इकट्ठे किए और आग में डाल दिए। सहचर से उसने कहा, "तुम जाओ। इस समय शिवादेवी को सुख हो और नगर के मनोरथ पूरे हों। राजा शूर के पुत्र के पुत्र (समुद्रविजय) भाई की सेवा में किसी प्रकार चूका हुआ मैं आग पर चढ़

---

१. ब माणुस णवाल ।

एत्तडउ भवेप्पिणु कहि वि गउ ।
सच्छंद णिरंकुसु णाइं गउ ॥
सहयरेण कहिउ सव्वहो पुरहो ।
मायर-णरिंद-अंतउरहो ॥
रोवंतइं सव्वइं उट्ठियइं ।
पेक्खेवि साहरणइं अट्ठियइं ॥
बंधवेंहिं विहाणइं दिण्णु जलु ।
तहिं कालि कुमारु वि अतुल बलु ॥

घत्ता—विजयखेडु पत्तु तहिं सुग्गीवेण दिण्णउ ।
सरसइ-लच्छि-समाणु सइं भूसेवि वे कण्णउ ॥१३॥

इय रिट्ठणेमिचरिए सयंभूएवकए समुद्दविजयाहिसेय णामो
इमो पढमो सग्गो ।

गया हूँ।" यह कहकर वह (वसुदेव) कहीं चला गया— स्वच्छंद निरंकुश गज की तरह। सहचर ने पूरे नगर में, मां और राजा के रनिवास में यह बात कह दी। सब लोग रोते हुए उठे। आभूषणों के साथ हड्डियाँ देखकर दूसरे दिन सवेरे भाइयों ने उसे जल-दान किया। उस अवसर पर अतुलबल कुमार वसुदेव—

घत्ता—विजयखेट नगर पहुँचा। वहाँ पर सुग्रीव ने सरस्वती और लक्ष्मी के समान दो कन्याएँ स्वयं अलंकृत करके प्रदान कीं ॥१३॥

इस प्रकार स्वयंभूदेवकृत अरिष्टनेमिचरित में समुद्रविजयाभिषेक नामक
यह पहला सर्ग समाप्त हुआ।

विईओ (दुइज्जो) सग्गो

सिरि सुग्गीव-सुआउ परिणेप्पिणु णयरहो णीसरइ ।
णाइं णिरंकुस-णाउ वसुएउ महावणु पइसरइ ।।छ।।
हरिवंसुब्भवेण हरिविक्कमसारबलेण रवणयं ।
दीसइ देवदारु-तलताली-तरल-तमाल-छण्णयं ।।
लवलि-लवंग लउय-जंबु-वर अंब-कविट्ठ-रिद्धयं ।
सामलि-सरल-साल सिणि-सल्लइ-सीसव-समि-समिद्धयं ।।
चंपय-चूय-चार-रवि-चंदण-वंदण-वंद सुंदरं ।
पत्तल बहल-सीयल छाय-लयाहर-सयमणोहरं ।।
मंथरमलयमारुयंदोलिय-पायव-पडिय-पुप्फयं ।
पुप्फोह-सहल-भमलावलि-णाविय-पहिय-गुप्फयं ।।
केसरिणहर-पहर-खरदारिय-करि-सिरभिन्न[1] मोत्तियं ।
मोत्तियपंति-कंति-धवलीकय सयल दिसा वहंतियं ।।
[2]खोल्ल-जलोल्ल-तल्ल-लोलंत लोलकोल-उल-भीसणं ।
वायस-कंक-सेण-सिव-जंबुअ-धुय विमुक्कणीसणं ।।
मयगय-मय-जलोह-कय कद्दम[3] संखुब्भंत वणयरं ।
फुरिय फणिंदफार-फणिंद-मणिगण-किरण-करालियांबरं ।।

श्री सुग्रीव की कन्याओं से विवाह कर वसुदेव नगर से निकलते हैं और अंकुशविहीन गज की भाँति महावन में प्रवेश करते हैं। हरिवंश में उत्पन्न तथा सिंह के पराक्रम के समान सारभूत बल वाले, वसुदेव को महावन दिखाई देता है। वह वन देवदार ताल-ताली और तरल तमाल वृक्षों से आच्छादित है, लवली लता, लवंगलता, जामुन, श्रेष्ठ आम और कपित्थ वृक्षों से समृद्ध है। शाल्मलि, अर्जुन, साल, शिनि, सल्यकी, सीसम और शमी वृक्षों से सम्पन्न है। चम्पा, आम्र, अचार, रविचन्दन और वन्दन वृक्षों के समूह से सुन्दर है। जिनमें बहुत से पत्ते हैं ऐसे ठंडी छायावाले सैकड़ों लतागृहों से जो सुन्दर है, जिसमें धीमी-धीमी मलय हवा से आंदोलित वृक्षों के पुष्प गिरे हुए हैं, जिसमें पुष्पसमूह सहित भ्रमरावली द्वारा पथिकों को झुका दिया गया है, जिसमें सिंहों के नखों के द्वारा तीव्रता से फोड़े गए हाथियों के सिरों से मोती बिखेर दिए गए हैं, जो गह्वरों के जल-समूह में हिलते हुए सुअरों के समूह से भयंकर है, जिसमें वायसों, बगुलों, सेनों, सियारों और सियारिनों द्वारा शब्द किया जा रहा है, जिसमें मदगजों के मदजल समूह की कीचड़ से वन्य प्राणी कुपित हो रहे हैं, जिसका आकाश काँपते हुए नागों से

---

१. ब लिन्न । २. अ, ब—खोल्लजलोल्ल-लोलंतहो लोलकोलकुलभीसणं । ३. अ, ब—कद्दम-संकुब्भंतवणयरं ।

गिरि-गण-तुंग-सिंग-आलिंगिय-चंदाइच्च-मंडलं ।
तम्मि भयावणे वणे दीसइ णिम्मलं सीयलं जलं ॥

घत्ता—णामें सलिलावत्तु लक्खिज्जइ मणहरु कमल सरु ।
णाइं सुमित्तें मित्तु अवगाहिउ णयणाणंदयरु ॥१॥

जत्थ सत्थ-वित्थुलाइं ।
मच्छ-कच्छ-विच्छुलाइं ॥
रायहंस-सोहियाइं ।
मत्तहत्थि-डोहियाइं ॥
[1]भीतरंग-भंगुराइं ।
तारहारपंडुराइं ॥
पउमिणी-करंबियाइं ।
चंचरीय-चुंबियाइं ॥
मारुप्प[य] वेवियाइं ।
चक्कवाय-सेवियाइं ॥
णक्क-गाह-माणियाइं ।
एरिसाइं पाणियाइं ॥
सेयणील-लोहियाइं ।
सूररासि-बोहियाइं ॥
मत्त छप्पयाउलाइं ।
जत्थ सरिसुप्पलाइं ॥

घत्ता—तेत्थु रउद्दु गइंदु धाइयउ सवडंमुहु णरवरहो ।
[2]अहिणव-वासारत्तुहि गज्जंतु मेहु णं महीहरहो ॥२॥

विशाल और नागराजों की फणमणियों की किरणावलियों से भयंकर है, जिसने पर्वत समूह के ऊँचे शिखरों से चन्द्रमा और सूर्य के मण्डलों को आलिंगित किया है, ऐसे उस भयावह वन में उसे स्वच्छ और शीतल जल दिखाई देता है ॥१॥

घत्ता—सलिलावर्त नामका सुन्दर कमल-सरोवर दिखाई देता है। उसने उसका ऐसा अवगाहन किया जैसे सुमित्र ने नेत्रों को आनंद देने वाले मित्र का अवगाहन किया हो।

जिस (सरोवर) में जल प्राणी-समूह से आपूरित है, जो मत्स्यों और कछुओं से व्याप्त है, राजहंसों से शोभित है, मतवाले हाथियों से आन्दोलित है, भयंकर लहरों से वक्र है, स्वच्छ हार की तरह धवल है, कमलिनियों से अंचित है, भ्रमरों से चुम्बित है, हवाओं से कम्पित है, चक्रवाकों से सेवित है, मगरों और ग्राहों के द्वारा सम्मानित है। इस प्रकार के सरोवर के जल में श्वेत, नीले और लाल, सूर्य की किरणों से विकसित, मतवाले भ्रमरों से आकुल सरस कमल थे।

घत्ता—वहाँ पर, उस नरवर (वसुदेव) के सामने गजेन्द्र इस प्रकार दौड़ा, मानो नई वर्षा-ऋतु में गरजता हुआ महामेघ पर्वत पर दौड़ा हो ॥२॥

---

१. ब, ज—भीम रंग-भंगुराइं। २ ज, प्र, ब—अहिणववासारत्तुहि।

उद्धाइउ मत्तमहागइंदु ।
कण्णाणिलचालिय-महिहरिंदु ॥
चलचलणचारि-चूरिय-भुअंगु ।
कर चुक्कर-परिचुंबिय-पयंगु ॥
मयजल-परिमल-मिलियालिविंदु ।
दढदंतोसारिय सुरगइंदु ॥
णियकाय-कंति-कसणी-कयासु ।
मयसलिल-सित्त-गत्तावकासु ॥
उम्मूलिय-णलिणि-मुणाल संडु ।
दप्पुद्धुर-दुद्धर-गिल्लगंडु ॥
रव-बहिरिय-सयल दियंतरालु ।
सिर-घेज्जुप्पाडिय-गिरि-वयालु[1] ॥
मुह मारुय-वस-सोसिय समुद्दु ।
गयवारणु [illegible] रणे रउद्दु ॥
उद्धरिसण-भीसण रूवधारि ।
कलिकाल-कयंत-जमाणुकारि ॥

घत्ता— [2]आहारणु गइंदु हेलए जि कुमारें धरिउ किह ।
धाराहरु वरिसंतु खीलेप्पिणु सुक्कें मेहु जिह ॥३॥

तहिं कालि पराइय बिण्णि जोह ।
णं चंद-दिवायर दिण्णसोह ॥
तहिं एक्कु णवेप्पिणु चवइ एव [म] ।

वह मतवाला महागज दौड़ा, जिसने अपने कानों की हवा से श्रेष्ठ पहाड़ों को चलायमान कर दिया है, जिसने चंचल पैरों की चाल से शेषनाग को चूर-चूर कर दिया है; जिसने हाथ के समान सूंड से सूर्य को चूम लिया है। जिसके मदजल के सौरभ से भ्रमर मिले हुए हैं, जिसने अपने मजबूत दाँतों से ऐरावत को खदेड़ दिया है, जिसने अपने शरीर की कान्ति से दिशाओं को काला बना दिया है, जिसने मदजल से शरीर के भाग को सिंचित किया है, जिसने कमलिनियों के मृणाल-दण्डों के समूह को उखाड़ दिया है, जो दर्प से उद्धत और दुर्धर आर्द्र गालोंवाला है, जिसने अपनी गर्जना से समस्त दिगंतराल को बधिर बना दिया है, जिसने सिर की मार से पहाड़ों के बाँसों के झुरमुटों को उखाड़ दिया है, जिसने मुख के पवन से समुद्र को सोख लिया है, जो युद्ध में शत्रुगज का निवारण करने वाला भयंकर महागज है, ऐसे भीषण रूप धारण करने वाले कलिकाल कृतांत यम का अनुकरण करने वाले—

घत्ता—उस महागज को कुमार वसुदेव ने खेल-खेल में इस प्रकार पकड़ लिया, जैसे बरसते हुए धाराधर मेघ को शुक्र ने कीलित करके पकड़ लिया हो ॥३॥

उस अवसर पर दो योद्धा आये, मानो शोभा देने वाले चन्द्र और सूर्य हों। वहाँ एक ने

---

१. ब—सिरि वेज्जुप्पाडिय भीसणरूवधारि। २. अ—सो आरणु गइंदु अर्थात् वह आरण (आरण्यक)।

परिपुण्ण-मणोरह अज्जदेव ।।
हउं अच्चिमालि इहु वाउवेउ ।
णियरूवोहामिय-मयरकेउ ।।
बे अम्हइं तुम्हइं रक्खवालु ।
सुणि कहमि कहंतरु सामिसालु ।।
वेयड्ढे कुंजरावत्तु णयरु ।
तहिं असणिवेउ णामेण खयरु ।।
तहो तणिय तणय णामेण साम ।
वीणापवीण रामाहिराम ।।
कमलायरि कुंजरु जिणइ जोज्जि ।
भत्तारु ताहे संभवइ सोज्जि ।।
सो तुहुं करि पाणिग्गहणु देव ।
[1]णिउ पुरु परिणवहु भणेवि एव ।।

घत्ता—सामाएवि लएवि परिअंसे थिउ वड्डारएण ।
गरुडें जेम भुअंगु णिउ णिसिहि हरिवि अंगारएण ।।४।।

जं णिउ वसुएउ महाबलेण ।
कुद्धे लग्ग साम सहुं णियबलेण ।।
मरु मरु कहिं महु पिउ लेवि जाहि ।
जइ धीरउ तो रणे थाहि थाहि ।।
विज्जाहरु वलिउ[2] कयंतु जेम ।
तुहुं महिल वराई हणमि केम ।।
परमेसरु पभणइ अवसु तो वि ।
किं रक्खसि खंति ण हणइ को वि ।।

नमस्कार कर इस प्रकार कहा, "हे देव! आज हमारा मनोरथ सफल हुआ। मैं अचिमाली हूँ और यह वायुवेग है। अपने रूप से कामदेव को पराजित करने वाले हे स्वामिश्रेष्ठ ! आपके हम दोनों रक्षा करने वाले हैं। मैं कथान्तर कहता हूँ—सुनिए, विजयार्ध पर्वत पर कुंजरावर्त नाम का नगर है। वहाँ अशनिवेग नाम का विद्याधर है। उसकी श्यामा नाम की कन्या है जो वीणा में निपुण और सुन्दरियों में सुन्दर है। इस सरोवर में जो भी हाथी को पकड़ लेगा वही उसका पति होगा। तुम वही हो इसलिए हे देव ! तुम उसका पाणिग्रहण करो।" यह कहकर उसे नगर ले जाया गया।

घत्ता—श्यामादेवी को लेकर वह परिरमण में स्थित ही था कि इतने में बड़ा अंगार रात में उसका अपहरण करके उसी प्रकार ले गया, जिस प्रकार गरुड़ सांप को हरकर ले जाता है ।।४।।

जब महाबली के द्वारा वसुदेव ले जाया गया, तो श्यामा अपनी सेना के साथ उसके पीछे लगी और बोली— "मर, मर। मेरे प्रिय को लेकर कहाँ जाता है ? यदि धैर्य है, तो युद्ध में ठहर ठहर।" विद्याधर यम की तरह मुड़ा और बोला, "तुम बेचारी महिला हो, कैसे मारूँ ? परमेश्वर (वसुदेव) कहता है—"फिर भी बताओ, क्या कोई खाती हुई राक्षसी को नहीं मारता ?

१. णिउ पुरु परिणामिओ भणेवि एव। २. ख—विज्जाहर वलिओ।

पज्झलिउ विमाणु खणंतरेण।
अंगारउ ताडिउ असिवरेण ॥
तेण वि परिचिंतिउ करमि एम।[1]
णउ मज्झु ण सामहे होइ जेम ॥
पण्णलहु विज्जाहरेण मुक्कु।
भूगोयर चंपयणयरे ढुक्कु ॥
जहिं वासुपुज्जजिणदेव-भवणु।
णिसिणिग्गमे इंदिय-दप्प दमणु ॥

घत्ता—वंदिउ परम जिणिंदु परमेसरे तिहुयण-सिहरगउ।
जइ तुहुं णाह ण होंतु तो भव-संसार हो छेउ णउ ॥५॥

जिणणाहु णविप्पिणु ण किउ खेउ।
तहिं कोवि पपुच्छिउ भूमिदेउ ॥
अहो दिअवर जणवउ कवणु एहु।
किम णाम णयरु पंडुरियगेहु ॥
आयासहो किं तुहुं पडिउ अप्प।
जं ण सुणइ लोयपसिद्ध चंप ॥
जहिं णिवसइ णिरुवम-रिद्धिपत्तु।
वणिणंदणु णामें चारुदत्तु ॥
तहो तणिय तणया गंधव्वसेण।
परिणिज्जइ जिज्जइ अज्जु जेण ॥
आलावणि-वज्जें मणहरेण।
सो सउरीपुर-परमेसरेण ॥

क्षण में तलवार से आहत विमान और अंगारक स्खलित हो गया। उसने भी अपने मन में सोचा कि ऐसा करता हूँ जिससे यह न मेरा हो और न श्यामा का। विद्याधर ने पर्णलघ्वी विद्या छोड़ी। मनुष्य (वसुदेव) चंपानगर में पहुँचा, जहाँ पर वासुपूज्य जिनदेव का भवन था। रात्रि बीतने पर इन्द्रियों का दमन करने वाले—

घत्ता—परम जिनेन्द्र की वंदना की—हे त्रिलोक-शिखर के ऊपर जाने वाले परमेश्वर! हे नाथ! यदि तुम न होते, तो इस भव-संसार का अन्त नहीं था ॥५॥

जिननाथ को नमस्कार कर, विलम्ब न करते हुए किसी ब्राह्मण से पूछा—"हे द्विजवर! यह कौन-सा जनपद है, सफेद गृहों वाला यह कौन-सा नगर है? (द्विजवर ने कहा) "तुम बेचारे क्या आकाश से आ पड़े हो, क्या तुमने प्रसिद्ध चंपा नगरी को नहीं सुना, जिसमें अनुपम ऋद्धि को प्राप्त (का पात्र) चारुदत्त नाम का वणिकपुत्र निवास करता है। उसकी गंधर्वसेना नाम की कन्या है। जिसके द्वारा वह आलापणी नाम की

---

१. ब—करमि एण।

अप्पाणु पयासिउ तेण तेत्थु ।
मिलियइ भूगोयर सयइं जेत्थु ॥

घत्ता— –णिउ वणिसणयहे पासि वसुएउ वि णज्जइ मत्त गउ ।
'[1]वल्लइ देहि वरत्ति भज्जइ मरट्टु जेण अज्जतउ ॥६॥

तो वीणा-सहासइं ढोइयइं ।
वसुएवें ताइं ण जोइयइं ॥
विरसइं जज्जरइं कुसज्जिअइं ।
सव्वइं लक्खण-परिवज्जिअइं ॥
सत्तारहं तंति सुघोसवीण ।
सुहलक्खण अवलक्खण-विहीण ॥
वल्लइय कुमारहो करि विहाइ[2] ।
वल्लहिय सुकंसहो कंतणाइ ॥
पारद्ध मणोहरु तंतिवज्जु ।
णं कारणु तेत्थुप्पण्णु अज्जु ॥
णं जिणवर सासणु रिसह सारु ।
णं बहुलपक्ख-सहु मंदतारु ॥
परिचिंतइ मणें गंधव्वसेण ।
किं वम्महु थिउ माणुसमिसेण[3] ॥
किं सग्गहो सुरवरु कोवि आउ ।
किं किण्णरु गंधव्वराउ आउ ॥

वीणा के द्वारा जीत ली जाएगी, वह उसीसे विवाह करेगी।" तब शौर्यपुरी के स्वामी (वसुदेव) ने अपने को वहाँ प्रगट किया, जहाँ सैंकड़ों मनुष्य इकट्ठे हुए थे।

घत्ता—वसुदेव को वणिक्‌कन्या गन्धर्वसेना के पास ले जाया गया। वह वहाँ मतवाले गज की भाँति जान पड़ते थे। उन्होंने कहा—"शीघ्र वीणा दो, जिससे आज तुम्हारा अहंकार नष्ट किया जाए" ॥६॥

तब हजारों वीणाएँ उपस्थित की गयीं। वसुदेव ने उनकी ओर देखा तक नहीं। वे सब नीरस जर्जर, कुसाजवाली और लक्षणों से रहित थीं। सत्तरह तारों वाली सुघोष वीणा शुभलक्षणों वाली और अपलक्षणों से रहित थी। कुमार वसुदेव के हाथ में वह ऐसी सोह रही थी, जैसे सुकांत की सुन्दर कान्ता हो। उसने वीणा को सुन्दरता से इस प्रकार बजाना शुरू किया मानो उसे बजाने का सुन्दर कारण उत्पन्न हुआ हो। वह वादन ऋषभसार (ऋषभ तीर्थंकर/ऋषभ-राग) वाला, जिनवर शासन हो या मंदतार (मंद स्वर और तारों वाला) कृष्णपक्ष हो। तब गन्धर्वसेना अपने मन में सोचती है—क्या यह मनुष्य के रूप में कामदेव है? क्या स्वर्ग से कोई श्रेष्ठ देव आया है? क्या किन्नर या देवराज आया है?

१. क, ख—बोल्लहि। २. ब—विहाय। ३. क, ख—माणुसवेसेण।

घत्ता—अण्णहो एउ ण रूउ अण्णहो विण्णाणु ण एत्तडउ।
एहु जगु जिणिवि समत्थु महु चित्तु किर केत्तडउ ॥७॥

कुसुमाउहसरेहिं[1] सरीरु भिण्णु।
वसुएवें मोहणु णाइं दिण्णु॥
विवण्ण[2]मण एक्कु वि णउ पउ जाइ।
उरे आहें विद्धि हरिणि णाइ॥
लोयणइं णिबद्धइं लोयणेहिं।
सव्वंगइं अंगणिबंधणेहिं॥
चित्तेण चित्तु णिच्चलु णिबद्धु।
जीवग्गह-गुत्तिए णाइं छुद्धु॥
वणिसुणए मयणपरव्वसाए।
घत्तिय णयणुप्पलमाल ताए॥
परिणिज्जइ हरिकुलणंदणेण।
तरुणीयण-थण-मद्दणेण॥
रइ-रसवसु हुय अच्छंति जाम।
फग्गुण-णंदीसरु ढुक्कु ताम॥
सुरणर-विज्जाहर मिलिय तेत्थु।
सिरिवासुपुज्जजिण-जत्त जेत्थु॥

घत्ता—[3]ते तित्थु गयाइं सविलासइं रहवरे चडियाइं।
छुडु छुडु विण्णवि णं सइं[4] सुरवइ-सग्गहो पडियाइं ॥८॥

जिणभवणहो बाहिरि ताम कण्ण।
मायंगिणि णच्चइ सुवण्णवण्ण॥

घत्ता—यह किसी दूसरे का रूप नहीं है? किसी दूसरे का यह विज्ञान नहीं है? यह विश्व को जीतने में समर्थ है। मेरा चित्त कितना-सा है ॥७॥

कामदेव के आयुधतीरों से उस गंधर्वसेना का शरीर विद्ध हो गया, जैसे वासुदेव ने संमोहन कर दिया हो। व्याध के द्वारा उर में आहत हिरनी की तरह वह एक कदम नहीं चल पाई। नेत्रों से नेत्र बंध गए, शरीर के निबन्धनों से सारे अंग बँध गए, और चित्त से अडिग चित्त इस प्रकार बँध गया, जैसे वह जीव लेनेवाले कठघरे में डाल दिया गया हो। कामदेव के अधीन होकर उस श्रेष्ठिकन्या ने अपने नेत्रों की कमलमाला उस पर डाल दी। युवतीजनों के स्तनों का मर्दन करनेवाले हरिवंश के पुत्र वसुदेव ने उससे विवाह कर लिया। इस प्रकार वे जब कामक्रीड़ा के अधीन रह रहे थे, तभी फागुन नन्दीश्वर-अष्टाह्निकपर्व आ पहुँचा। बड़े-बड़े देव और मनुष्य वहाँ इकट्ठे हुए जहाँ वासुपूज्य जिनवर की 'यात्रा' थी।

घत्ता—वे दोनों (वसुदेव और गंधर्वसेना) रथ पर सवार होकर इस प्रकार उतरे, जैसे स्वर्ग से क्रमशः इन्द्र और इन्द्राणी अवतरित हुए हैं ॥८॥

इतने में सोने की रंगवाली मातंगकन्या जिन-मन्दिर के बाहर नृत्य करती है—जिसने

1. ज—कुसुमामुहसरेहिं। 2. अ—विवण। 3. ज, अ—इमि तित्थु गयाइं 4. ज, अ, ब—सयं।

कम-कमल-कंति-जिय कमल-सोहु।
लाउण्ण-जलाऊरिय-दिसोहु॥
मुहु ससि-धवलिय-गयणायास।
सिर-केस-कंति-कसणी-कयास॥
सहुं कउतवें[1] उच्छलंति दिट्ठ।
णं कामभल्लि हियवइ पइट्ठ॥
वसुएव-दिट्ठि अण्णहिं ण जाइ।
णियघरु मुएवि कुलवहुय णाइ॥
पिय मयण-परव्वस दुहिय कंत[2]।
चलपुरस होंति अविवेयवंत॥
ण मुणंति महिल महिलंतराइं।
रहु सारहु सारहि धरिउ काइं॥
तो पेल्लिय सूएं वरतुरंग।
णं मारुएण जलणिहि-तरंग॥

घत्ता वणितणए करि लेवि पइसारिउ कोयउ जिणभवणे[3]।
देव विहिए पणवंति मायंगिणी झायइ णिय मणे॥६॥

कुमारेण सउरीपुरि-सामिएण।
मउम्मत्त-मायंगी-भीमएण॥
वंदवंदिउ[4] देवदेवो जिणिंदो।
अणिंदो अणिंदवंदाहिवंदो॥
तिलोयग्गगामी तिलोयणाहो[5]।

चरणकमलों की कान्ति से कमलों की शोभा को जीत लिया है, जिसने अपने सौन्दर्य-जल से दिशा-समूह को आपूरित कर दिया है, जिसने अपने मुख-चन्द्र से आकाश धवल बना दिया है, जिसकी केश-राशि ने दिशाओं को श्याम कर दिया है। कौतुक के साथ उछलती हुई वह ऐसी दिखाई दी मानो कामदेव की बरछी हृदय में प्रवेश कर गई हो। वसुदेव की दृष्टि उसी प्रकार किसी दूसरी ओर नहीं जाती, जिस प्रकार कुलवधू की दृष्टि अपने घर को छोड़कर कहीं और नहीं जाती है। प्रिय को काम के वशीभूत देखकर कान्ता गन्धर्वसेना दुःखी हो उठी। (वह सोचती है) चंचल पुरुष अविवेकशील होते हैं, वे स्त्री और स्त्री के बीच अन्तर नहीं समझते। हे सारथि! तुम रथ चलाओ, उसे रोक क्यों रखा है? सारथि ने तब श्रेष्ठ अश्वों को प्रेरित किया, मानो पवन ने समुद्र की लहरों को प्रेरित किया हो।

घत्ता—वणिक्कन्या ने हाथ पकड़कर वसुदेव को भीतर प्रवेश कराया। वह विधिपूर्वक देव को प्रणाम करता है, परन्तु अपने मन में मातंगसुन्दरी का ध्यान करता है॥६॥

मातंगसुन्दरी के द्वारा भ्रमित, शौर्यपुरी के स्वामी कुमार वसुदेव ने स्तुति प्रारंभ की—हे देववन्द्य! देवदेव जिनेन्द्र, अनिन्द्य, अनिन्द्यों के समूह द्वारा वन्दनीय, त्रिलोक के अग्रगामी,

---

१. ज, अ—सहुं कुतवें। २. ज, अ—दुइय कंत। ३. ज, अ—जिणभवणु। ४. अ—वलावंदिउ। ५. अ—तिलोयस्स णाहो।

अराउ अकामो अडाहो अवाहो ॥
सुहकेवलं केवलं जस्स णाणं ।
महादेव देवत्तणं चप्पहाणं ॥
असोयद्दुमो जस्स विण्णेव [णियडेव] सोहो।
पहामंडलं दुंदुहि-चामरोहो ॥
मइंदासणं आमरी पुप्फवासं ।
ति सेयायवत्तइं दिव्वायभासं ॥
चिंधेहिं एएहिं तुमं देवदेवो ।
णराण वि दीसंति कोवावलेवो ॥
तुमम्मि पसण्णम्मि होंतु मे ताणं ।
ण चिंधाइं एयाइं सव्वामराणं ॥

घत्ता—वंदिवि परमजिणिंदु सकलत्तु गउ वसुएउ घरु ।
णं सकरेणु करेंदु पइसरइ मणोहरु कमलसरु ॥१०॥

तहिं कालि कुमारकएण बाल ।
ण पबंधइ णियसिरि कुसुममाल ॥
ण पसाहइ अंगु पसाहणेण ।
णं[1] दीविय विरह-हुआसणेण ॥
जरु डाहु अरोचु कुरुवासु सोसु ।
पासेअ खेउ पसरइ असोसु ॥
संतावइ चंदणलेउ चंदु ।
मलयाणिलु दाहिणि-सुरहि मंदु ॥
परिपेसिय दूई जाहि माए[2] ।
लग्गेज्जहि सुहयहो लग्गए माए ॥

त्रिलोक स्वामी, अराग, अकाम, ईर्ष्याविहीन, बाधा रहित, जिनके केवल शुभ केवलज्ञान है, ऐसे हे महादेव ! देवत्व में प्रधान, जिनके पास शोभा देने वाला अशोक वृक्ष है, प्रभामण्डल, दुंदुभि और चामर समूह है, सिंहासन है, दिव्य पुष्प-वृष्टि है, तीन श्वेत छत्र हैं, दिव्यवाणी है, ऐसे चिह्नों के कारण तुम देव-देव हो। मनुष्यों में कोप का अवलेप देखा जाता है, तुम्हारे प्रसन्न होने पर मेरा त्राण होगा—ये चिह्न सब देवों के नहीं होते।

घत्ता—इस प्रकार परमजिनेन्द्र की वंदना कर वसुदेव अपनी पत्नी के साथ उसी प्रकार घर गया, जिस प्रकार हाथी हथिनी के साथ कमल-सरोवर में प्रवेश करता है ॥१०॥

उस अवसर पर कुमार के लिए, वह विद्याधरबाला अपने सिर पर फूलों की माला नहीं बाँधती। अपने अंगों को प्रसाधनों से नहीं सजाती। मानो विरह की आग से वह उद्दीप्त हो उठी। ज्वरदाह, अरोचकता, कुरुवासु।'''शोषण, प्रस्वेद, खेद और असन्तोष फैलता है। चन्द्रमा और चन्दन का लेप, सुरभित मंदमंद दक्षिण पवन उसे संताप पहुँचाते हैं। उसने दूती भेजी—हे आदरणीये ! जाओ और तुम उस सुभग के पैरों से लगो। कामदेव के रूप का

1. अ, ब—संदीविय। 2. ब—मए।

सुच्चइ अणंग रूवाणु कारि ।
परिणज्जउ विज्जाहर कुमारि ॥
णीलंजस णामें पइं दिट्ठ ।
मायंगिणीवेसें पुरे पइट्ठ ॥
ण समिच्छइ जइ तो तं करेहि ।
णिय विज्जापाणि हरिवि एहि ॥

घत्ता—जाएवि दूईयाए सामिणि केरउ आएसु किउ ।
सुहु सुत्तउ जि कुमारु वेयड्ढमहीहरु णवर णिउ ॥११॥

परिणिय नीलंजस णामवेय ।
पुणु सोमलच्छि पुणु मयणवेय ॥
पुणु भिल्लहो तणया जरापत्त ।
तहिं जरकुमार उप्पण्ण पुत्त ॥
पावंतु लंभ परिभमिउ ताम ।
वरिससयइं सत्तासयाइं जाम ॥
गउ णरवर णवर अरिट्ठणयरु ।
तिलकेसहो कारणे णं सयरु ॥
तहिं णरवर णामें लोहियक्खु ।
जसु केरउ णिम्मल उहयपक्खु ॥
तहो घरिणि सुमित्त महाणुभाव ।
भुभंगोहामिय मयणचाव ॥
तहो णंदणु णाम हिरण्णणाहु ।
सुयरोहिणिहे वट्टइ विवाहु ॥
आवंतु सयंवरु मिलियराय ।

अनुकरण करने वाले उससे कहा जाए कि तुम उस नीलंजसा नाम की कुमारी से विवाह कर लो जिसे तुमने मातंगिनी के रूप में नगर में प्रवेश करते हुए देखा है। यदि वह नहीं चाहता है, तो तुम ऐसा करना कि अपनी विद्या के हाथ उसका हरण करके उसे ले आना।

घत्ता—उसी दूती ने जाकर कुमारी स्वामिनी का आदेश किया, वह सुख से सोते हुए कुमार को सिर्फ विजयार्ध पर्वत पर ले आयी॥११॥

उसने नीलंजसा नाम की विद्याधरबाला से विवाह किया, फिर सोमलक्ष्मी और मदनवेगा से। फिर भिल्लराज की पुत्री जरा को प्राप्त हुई। उससे जरत्कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार लाभ प्राप्त करता हुआ कुमार तब तक घूमता रहा, जबतक कि उसे सात सौ वर्ष नहीं हो गए। वह नरश्रेष्ठ सिर्फ अरिष्टनगर पहुँचा, जैसे तिलकेशा के लिए सगर पहुँचा हो। वहाँ लोहिताक्ष नाम का राजा था जिसके दोनों पक्ष निर्मल थे। महान् भाववाली उसकी सुमित्रा नाम की पत्नी थी, जिसने अपनी भ्रूभंगिमा से कामदेव के धनुष को नीचा दिया था। उसके पुत्र का नाम हिरण्यनाभ था। उसकी पुत्री रोहिणी का विवाह होना था, इसलिए

कुरुपंडव जायवपमुह आय ॥

घत्ता—सव्वेक्केक्कपहाणा सव्वेहिं सव्व सामग्गि किय ।
थिय-थिय मंचारूढ अप्पाणु सयं भूसितें थिय ॥१२॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिए सयंभूएवकए गंधव्वसेणालंभो णाम
दुइज्जो (बिईओ) सग्गो ।

स्वयंवर प्रारम्भ हुआ । उसमें कुरु-पांडव और यादव-प्रमुख राजा मिलकर आये ।

घत्ता—वे सभी एक-से-एक प्रधान थे । सब के द्वारा सब प्रकार की सामग्री जुटाई गई थी । अपने-अपने मंचों पर बैठे हुए वे स्वयं को आभूषित कर रहे थे ॥१२॥

धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव कवि द्वारा विरचित इस अरिष्टनेमिचरित
काव्यमें गन्धर्वसेना प्राप्ति नाम का दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।

तइओ सग्गो

रोहिणिकर-धरमाणा सयल वि राणा मिलिया जरसंधें ।
णं वसविसिहिं पसत्ता महुयरमत्ता कड्ढिय केयइ-गंधें ॥
णिग्गय रोहिणि जयजयसद्दें ।
गहिय पसाहण-जुव्वण-गव्वें ॥
सव्वाहरण-विहसिय-देही ।
विज्जुज्जल-विब्भम-देही ॥
मोहण-वेल्लिव मोहणलीला ।
वम्महं भल्लिव बंधणसीला ॥
ताराएवि व थाणहो चुक्की ।
तक्खय-दिट्ठीव सव्वहो ढुक्की ॥
जं जं जोयइ तं तं मारइ ।
सो ण अत्थि जो मणु साहारइ[1] ॥
सो ण अत्थि जो णउ संतत्तउ ।
सो ण अत्थि जो मुच्छ ण पत्तउ ॥
सो णउ अत्थि सा जेण ण दिट्ठि[2] ।
सो ण अत्थि जसु हियइ ण पइट्ठि ॥
सयलु लोउ मूसिउ मणचोरिए ।
मोहिउ हरिण-णिवहु णं गोरिए ॥

रोहिणी से पाणिग्रहण करनेवाले समस्त राजा जरासंध से इस प्रकार मिले, जैसे केतकी की गन्ध से आकर्षित होकर मतवाले भ्रमर सभी दिशाओं में फैल गए हों। यौवन के गर्व से प्रसाधन करने वाली रोहिणी जय-जय शब्द के साथ निकली—जिसकी देह सब प्रकार के आभूषणों से विकसित है, जो बिजली के समान उज्ज्वल शरीरवाली है, जो सम्मोहन लता और संमोहन लीला के समान है, जो कामदेव की मल्लिका के समान बँधने के स्वभाववाली है, जो स्थान से च्युत तारा के समान है। गिद्ध-दृष्टि के समान वह सबके पास पहुँची। जिस-जिस को वह देखती है, उसको मार डालती है। वहाँ एक भी ऐसा नहीं था जो मन को सहारा दे। वहाँ एक भी ऐसा नहीं था जो संतप्त न हुआ हो। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं था जो मूर्छित न हुआ हो। वहाँ एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसने उसको न देखा हो और जिसके हृदय में उसने प्रवेश न किया हो। मन को चुराने वाली उसने सारे लोक को ठग लिया, मानो गोरी ने मृग-समूह को मोह लिया हो।

१. ब—यह पंक्ति नहीं है। २. सभी प्रतियों में 'सो णउ अत्थि जेण ण दिट्ठि' पाठ है; उसमें दो मात्राएँ कम हैं।

घत्ता—णिय-सामिणि-अणुलग्गी करिणि व लग्गी धाइ णराहिव दावइ।
आयहं मज्झे असेसहं उज्जलवेसहं लइ जुवाण जो भावइ॥१॥

जोवइ बाल धाइ दरिसावइ।
एक्कु वि णरवइ मणहों ण भावइ॥
वंचिय कंचणमंचमयंधहं।
किव-गंगेय-दोण-जरसंधहं॥
वंचिय इंद-पडिंद-सुरीसव।
बिण्णिवि सोमदत्त-भूरीसव॥
वंचिय विउर-पंडु-धयरट्ठवि।
केरल-कोसल-जवण-घट्ट वि॥
वंचिय भोट्ट-जट्ट-जालंधरवि।
टक्क-हीर-कीर-खस-बब्बरवि॥
गुज्जर-लाड-गउड-गंधार-वि।
सिंधव-मद्द-सुरट्ठ-दसारवि॥
वंचिय उग्गसेण-महसेण वि।
देवसेण-सुरसेण-सुसेणवि॥
बंभणइब्भ ते वि णवि जोइय।
जहिं तूरइं तहिं करिणि चोइय॥

घत्ता—तहिं पणवंतहं ब्भंतरि[1] जो जो अंतरि सो सो कोवि ण भावइ।
सवणेंदियहं[2] सुहावउ णं परिणावउ पडहसद्द परिभावइ॥२॥

घत्ता—धाय अपनी स्वामिनी के पीछे हथिनी के समान लगी हुई उसे राजा दिखाती है। उज्ज्वलवेष वाले इन समस्त लोगों के बीच जो युवक अच्छा लगे उसे वर लो॥१॥

बाला देखती है, और धाय दिखाती है, उसके मन को एक भी राजा अच्छा नहीं लगता। स्वर्णिम मंचों से मदांध कृपाचार्य, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और जरासंध को उसने छोड़ दिया। इन्द्र, प्रतीन्द्र और शूरिश्रव को भी उसने छोड़ दिया। सोमदत्त और भूरिश्रव दोनों को भी उसने वंचित किया। विदुर, पांडु और धृतराष्ट्र को वंचित किया। केरल, कोसल, यवन और घाट (?) को वंचित किया। भोट, जाट और जालंधर को वंचित किया। टक्क (पंजाब), हीर, कीर, खस (कश्मीर के दक्षिण का प्रदेश), बर्बर, गुर्जर, लाट, गौड़ और गांधार को भी; सैंधव, मद्र, सौराष्ट्र और दशार्हों को भी वंचित किया। उग्रसेन और महासेन को भी; देवसेन, सुरसेन, सुषेण को भी; ब्राह्मणों और धनाढ्यों को भी उसने नहीं देखा। जहाँ नगाड़े थे, वहाँ उसने हथिनी को प्रेरित किया।

घत्ता—वहाँ नगाड़ा बजानेवालों के भीतर बीच-बीच में जो जो दिखाई देता है, वह कोई भी अच्छा नहीं लगता। उसे केवल श्रवणेन्द्रियों को सुहावना लगनेवाला विवाह के नगाड़े का शब्द अच्छा लगता है॥२॥

१. अ—पणवइ ब्भंतरि। २. अ—सवणिंदयहं।

पथिय-पणय-सद्दु सुउ कण्णाए[1] ।
आउ आउ णं कोक्कइ सण्णाए[2] ॥
आउ आउ वरु एत्तहे अच्छइ ।
आउ आउ इह माल पडिच्छइ ॥
आउ आउ एहु सव्वहो चंगउ ।
सव्वाहरण-विहूसिय-अंगउ ॥
आउ आउ एहु णिरुवम देहउ ।
आउ आउ एहु वम्महं जेहउ ।
आउ आउ केम अच्छहि दूरें ।
एम णाइं हक्कारइ तूरें ॥
वंचिवि विप्पवर वणिवर-खत्तिय ।
पडिहारहो [illegible] त्तिय ॥
जे जे मिलिय सयंवरि राणा ।
ते ते सयल वि थिय विहाणा ॥
जणु जंपइ तहो सिय आवग्गि ।
रोहिणि जसु करपल्लवे लग्गि ॥

घत्ता—वुच्चइ सो मज्झत्थें सुरवरसत्थें एहु ण जुज्जइ सयलहो ।
थिर चंदायणि चिण्हहो परिरमणहो ण रोहिणि सिहु सयलहो ॥३॥

तो आढत्तमहापडिबंधें ।
सण्णिय णियणरिंद जरसंधें ॥
पाडियहो कुमारि उद्दालहो ।
रयणाइं संभवंति महिवालहो ॥

कन्या ने पथिक (वसुदेव) के नगाड़े का शब्द सुना जो मानो संकेत से कहता है कि आओ, आओ। आओ, आओ वर यहाँ है। आओ, आओ यह माला की प्रतीक्षा करती है। आओ, आओ यह सबसे अच्छा है, और इसका शरीर सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित है। आओ, आओ, यह अनुपम देहवाला है। आओ, आओ, यह कामदेव के समान है। आओ दूर क्यों हो? इस प्रकार नगाड़ा उसे पुकारता है। द्विजवर, वणिक्‌वर और क्षत्रियों को छोड़कर उसने उस प्रतिहारी के गले में माला डाल दी। स्वयंवर में जो-जो राणा सम्मिलित हुए थे, वे सब निराश होकर रह गए। लोग कहते हैं कि लक्ष्मी से वही अभिभूत होगा, जिसके हाथ लक्ष्मी लगेगी।

घत्ता—तब मध्यस्थ सुरवर-समूह कहता है कि सबके लिए यह उचित नहीं है। यावत्‌ चाँदनी के चिह्नवाले और सब ओर से रमणीय चन्द्रमा की तरह रोहिणी सबकी नहीं होती ॥३॥

तब महा प्रतिबंध प्रारंभ करनेवाले जरासंध ने अपने पक्ष के राजाओं को संकेत दिया कि इस पैदल चलनेवाले से कुमारी को छीन लो। रत्न (स्त्रीरत्न) केवल राजा के ही होते हैं।

1. ब—कण्णाइं। 2. ब—सण्णाइं।

लोहियहिरण्णणाहहु बोल्लावहु ।
जइ ण देइ तो जमपहे लायहु ॥
धाइय परवर पहुआएसें ।
णं जमकिंकर-माणुसवेसें ॥
तहिं अवसरि वसुएवहो ससुरें ।
सो णिरुद्धु णं केणवि असुरें ॥
रहि अप्पणइं चडावउ जायउ ।
सिहरि महीहरेण णं पायउ ॥
तो णिविट्ठु तायहो संदणे ।
थिउ [1]दप्पुब्भड-कडमद्दणे ॥
तो पसरिय रणरहसणुराएं ।
वुच्चइ लोहियक्खु जामाएं ॥

घत्ता—सरहु सहासणु दिज्जउ एत्तिउ किज्जउ पइं ण माम लज्जावमि ।
एंतु एंतु अरि उप्परि हउं णरकेसरि हरिण जेम उड्डावमि ॥४॥

परिणिउ [2]कलत्तु को उद्दालइ ।
को इंदहो इंदत्तणु टालइ ॥
को फणिवइहे फणामणि तोडइ ।
वइवस-महिस-सिंगु को मोडइ ॥
तुम्हइं बिण्णिवि रोहिणि रक्खहो ।
हउं अब्भिडमि एक्कु पडिवक्खहो ॥
वइरिसिहि थरहरंत सर लायमि ।
उद्ध कबंध-णिवहु णच्चावमि ॥

लोहिताक्ष और हिरण्यनाभ से कहो। "यदि वह कन्या न दे, तो उसे यमपथ पर भेज दो।" प्रभु के आदेश से अनुचर दौड़े, जैसे मनुष्य के रूप में यमकिंकर हों। उस अवसर पर वसुदेव के ससुर ने, किसी असुर के द्वारा निरुद्ध यादव को अपने रथ पर चढ़ा लिया, मानो पर्वत ने वृक्ष को अपने शिखर पर चढ़ा लिया हो। तब विचार कर वसुदेव ससुर के दर्प से उद्धतों को चकनाचूर करनेवाले रथ पर स्थित हो गए। इतने में जिसमें युद्ध के लिए हर्ष और अनुराग उमड़ रहा है ऐसे जामाता ने लोहिताक्ष से कहा—

घत्ता—"रथ सहित धनुष मुझे दो, इतना कीजिए। हे ससुर! मैं आपको लज्जित नहीं करूँगा। दुश्मन आए, दुश्मन आए, मैं उसे उसी प्रकार ऊपर उड़ा दूँगा जिस प्रकार सिंह हरिण को उड़ा देता है ॥४॥

विवाहित स्त्री को कौन छीनता है? इन्द्र का इन्द्रत्व कौन टालता है? नागराज के फणामणि को कौन तोड़ता है? यम के भैंसे के सींग को कौन मोड़ता है? आप दोनों रोहिणी की रक्षा करें, मैं अकेला ही शत्रु-पक्ष से भिड़ूँगा। शत्रु पर थर्राते हुए तीरों की बौछार करूँगा। ऊँचे धड़ों के समूह को नचाऊँगा।" जब कुमार वसुदेव ने इस प्रकार गर्जना की, तो ससुर ने उसे सारथि

१. ब—दप्पुब्भडकडवंदणे। २. अ—को कलत्तु।

गञ्जिवइ जं वसुएउ-कुमारें।
विण्णु महारहु सहुं कुसारें॥
दुइसहास-संदणहं रउद्दहं।
छह गंधुद्धर-मत्तगइंदहं॥
हयहं चउद्दह दप्पुत्तालहं।
भिडियइं बलइं बेवि अवरोप्परु।
एउ उच्छलिउ भरंतु दिगंतरु॥

घत्ता—मत्त मयंग-मयंगहं तुरंग-तुरंगहं रहवर-रहवरवंदहं।
जोहजोहहं महारणे रोहिणि कारणे पत्थिव-पत्थिवहं॥५॥

उत्थरंति-साहणाइं।
चाउरंग-वाहणाइं॥
सुट्ठुवद्ध-मच्छराइं।
तोसियामरच्छराइं॥
रुपरुप्पर-कोक्किराइं।
कोंतकोडि-चोक्किराइं॥
बाणजाल-छाइयाइं।
धूलिवाउ-धूसिराइं॥
आउहोह-जज्जराइं।
दंतिदंत-पेल्लियाइं॥
सोणियंबु-रेल्लियाइं।
घोरघाय-भिभलाइं॥
णिस्स-अंत-चोंभलाइं।
तिक्खखग्ग-खंडियाइं॥
भल्लुयार-वाउलाइं।
घोरगिद्ध-संकुलाइं॥

के साथ महारथ दे दिया। दो हजार भयंकर रथ, गंध से उद्धत छह हजार मतवाले हाथी, दर्प से उद्धत चौदह हजार घोड़े। इस प्रकार दोनों सेनाएँ आपस में भिड़ गईं। दिशाओं में फैलती हुई धूल उठी।

घत्ता—उस महायुद्ध में मतवाले हाथी मतवाले हाथियों से, घोड़े घोड़ों से, श्रेष्ठरथ श्रेष्ठ रथों से, योद्धा योद्धाओं से तथा राजा राजाओं से रोहिणी के कारण भिड़ गए॥५॥

चतुरंग वाहनों वाली सेनाएँ उछलती हैं, अत्यन्त मत्सर (ईर्ष्या) से भरी हुईं, देवों और अप्सराओं को संतुष्ट करनेवालीं, एक-दूसरे को ललकारती हुईं, भालों के किनारों से चूकी हुईं, तीरों के जाल से आच्छादित, धूल और हवा से धूसरित, आयुधों के समूह से जर्जर, हाथियों के दाँतों से हटाई जाती हुईं, रक्तजलों से प्रवाहित होती हुईं, भयंकर आघातों से विह्वल होती हुईं, जिनकी आँतें और चोटियाँ ले जाई जा रही हैं ऐसी पैनी तलवारों से खंडित, भालुओं के शब्दों से व्याप्त और भयंकर गीधों से संकुल हैं। जब शत्रुपक्ष सिंह के

सीह-विक्कमे विवक्खे ।
हीयमाणए सवक्खे ॥

घत्ता—तहिं अवसरि वाहियरहु मरण-मणोरहु सउरि ससालउ थक्कइ ।
दुस्सहु एक्कु हुआसणु अवरु पहंजणु वेवि धरिवि को सक्कइ ॥६॥

विहिमि हिरण्णणाह-वसुएवेंहिं ।
रणरसियहिं वड्ढिय-अवलेवेंहिं ॥
वाहिय-रहेहिं अखंचिय-वग्गेहिं ।
गंधवह-धुअ-धवलधयग्गेहिं[1] ॥
सुरवेयंड-सुंड-भुयदंडेंहिं ।
इंदाउह-पयंड-कोदंडेंहिं ॥
विसहरदीह-दीह दीह-णाराएँहिं ।
मेह समुद्द-रउद्द-णिणाएँहिं ॥
छाइउ परबलु सरवरजालें ।
णं गिरिउलु णवपाउसकालें ॥
सो ण जोहु णरोहु ण गयवरु ।
तं ण रहंगु ण रहिउ णउ रहवरु ॥
सो णवि आसवारु ण तुरंगमु ।
सो णराहिउ जयसिरि-संगमु ॥
तं णवि आयवत्तु णवि चिंधउ ।
जं वसुएव-सरेहिं ण विंधउ ॥

पराक्रम वाला हो उठा और वसुदेव का अपना पक्ष दुर्बल था—

घत्ता—तब उस अवसर पर रथ चलाने वाला और मरने की इच्छा रखने वाला वसुदेव अपने साले के साथ स्थित हो गया। एक तो आग वैसे ही असह्य होती है दूसरे हवा हो, तो दोनों को कौन धारण कर सकता है ? ।।६।।

जो युद्ध में गरज रहे हैं, जिनका अहंकार बढ़ रहा है, जो रथों को हाँक रहे हैं, जिन्होंने लगामें खींच रखी हैं, जिनके ध्वजों के अग्रभाग प्रकंपित हैं, जिनके बाहुदण्ड देवताओं के ऐरावत महागज की सूंड के समान हैं, जो इन्द्रधनुष के समान प्रचण्ड धनुष वाले हैं, जिनके तीर विषधरों के समान हैं, जो मेघ और समुद्र के समान रौद्ररस वाले हैं, ऐसे हिरण्यनाभ और वसुदेव ने शत्रुसेना को शरवरों के जाल से ऐसा आच्छादित कर लिया, जैसे नवपावस काल ने पर्वत समूह को आच्छादित कर लिया हो। वहाँ ऐसा एक भी योद्धा और नर समूह नहीं था, गजवर नहीं था, चक्र नहीं था, सारथि नहीं था, अश्वारोही नहीं था, अश्व नहीं था, विजय रूपी लक्ष्मी का आलिंगन करने वाला ऐसा राजा नहीं था, ऐसा आतपत्र नहीं था, ऐसा निशान नहीं था, जो वसुदेव के तीरों से छिन्न-भिन्न न हुआ हो।

---

१. ब—गंधव्वहो धुय धवल धयग्ग हो।

घत्ता— वायउ मुक्कु सलक्खें तहो पडिवक्खें तेण वि रणे माहिंदें।
सरेहिं दसहिं विच्छिण्णउ णं परिछिण्णउ भवसंसारु जिणिंदें ॥७॥

तहिं अवसरि समरंगणि मुंडें।
जरसंघहो किंकरेण पउंडें ॥
छइउ हिरण्णणाहु बहुबाणेंहिं।
दूसह दिणयर-किरण-समाणेंहिं ॥
रुहिरहो णंदणेण धणुहत्थें।
छिण्णु महारहु एक्कें सत्थें ॥
चउहिं चयारि तुरंगम घाइय।
वइवस-पुरवर-पत्थे लाइय ॥
अवरें आयवत्तु धउ अवरें।
अवरें बाणजालु धणु अवरें ॥
जाम पउंडु अवरु सरु संधइ।
णायपासु जगु जेण णिबंधइ ॥
ताम विरुद्धएण वसुएवें।
पेसिउ अद्धयंदु विणु खेवें ॥
घत्ता— तेण सरासणु ताडिउ हत्थहो पाडिउ कोडिगुणालंकरियउ।
णियसत्तुप्पत्तिदीणहो[1] लक्खणहीणहो णं धणु दइवें हरियउ ॥८॥
जिणेवि पउंडु समरु असरालउ।
गउ वसुएउ लेवि णियसालउ ॥

घत्ता—लक्ष्य से युक्त प्रतिपक्ष ने वायव्य तीर उस पर छोड़ा। उसने भी युद्ध में माहेन्द्र अस्त्र के द्वारा दस तीरों से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया, मानो जिनेन्द्र भगवान् ने संसार छिन्न-भिन्न कर दिया हो ॥७॥

उस अवसर पर युद्ध के मैदान में, जरासंध के मत्त अनुचर पौंड्र ने दिनकर की असह्य किरणों के समान तीरों से उसे घेर लिया। जिसके हाथ में धनुष है, ऐसे रुधिर के पुत्र ने एक ही शस्त्र के द्वारा महारथ को छिन्न-भिन्न कर दिया, चार तीरों के द्वारा चारों अश्व घायल हो गये। वे यमनगर के रास्ते भेज दिए गये। एक तीर से छत्र, एक से ध्वज, एक और तीर से बाणजाल, एक और तीर से धनुष को ध्वस्त कर दिया। जब तक पौंड्र दूसरे तीर नागपाश का संधान करता है कि जिससे सारा जग निबद्ध कर लिया जाता है, तब तक वसुदेव ने विरुद्ध होकर, बिना किसी देर किए अर्धचन्द्र चला दिया।

घत्ता—उसने कोटि और डोर से अलंकृत धनुष को प्रताड़ित किया और हाथ से गिरा दिया, मानो विधाता ने अपने दुश्मन के उत्पन्न होने से दीन हुए उसका धन छीन लिया हो ॥८॥

वसुदेव लगातार पौंड्र को युद्ध में जीत कर अपने साले को लेकर चल दिए। वह रथवरों,

१. णिह सत्तुप्पत्तिणहो।

भिडिउ पवर जरसंधहो साहणे ।
रहवर-तुरय-महागय-वाहणे ॥
हम्मइ एक्कु अणेतेहिं जोहहिं ।
तो वि पवरसिउ सरधारोहहिं ॥
चउदिसु रहु वाहंतु ण थक्कइ ।
संदणलक्खु णाइं परिसक्कइ ॥
एक्कु सरासणु बिण्णि वि हत्थउ ।
विंधइ णं धणु कोडिवि हत्थउ ॥
सरहं पमाणु णाहि णिवडंतहं ।
[1]णं घणघणहं णह हो वरिसंतहं ॥
किउ पारक्कउ लोहावद्धउ ।
णं तवणेण तिमिरु ओवद्धउ ॥
भउ णासइ साहारु ण बंधइ ।
स सरासणि णं सरासणे संधइ ॥

घत्ता—णं जरसंधहो साहणु रहगयवाहणु एक्कें रणमुहे धरियउ ।
सीहकिसोरहो भिडियहो कमयहे पडियहो गयजूहहो अणुहरियउ ॥६॥

तहि अवसरि मज्झत्थीभावें ।
पेक्खयलोएं ललिय-सहावें ॥
रूवरिद्धि-सोहग्ग-मयंधहो ।
धिद्धिक्कारु दिण्णु जरसंधहो ॥
किं जोइएण णराहिवसत्तें ।

अश्वों, महागजों और वाहनों वाली जरासंध की सेना से भिड़ गए। यद्यपि अनेक योद्धाओं द्वारा वह अकेला मारा जाने लगा। फिर भी वह तीरधाराओं के समूह के साथ बरस पड़ा। चारों दिशाओं में रथ घुमाता हुआ वह नहीं ठहरता, लाखों रथों वाले के समान वह (एक रथी) परिभ्रमण करता। एक धनुष और दो हाथ, परन्तु वह इस प्रकार भेदन करता जैसे करोड़ों धनुषवाला हाथ हो। गिरते हुए तीरों का कोई प्रमाण नहीं था, जैसे आकाश से घमाघम बरसते हुए मेघों का कोई प्रमाण नहीं होता। उसने शत्रुओं को एक कतार में ऐसे बांध दिया, जैसे सूर्य ने आकाश में अंधकार को बाँध दिया हो। वह सैन्य न तो भाग पाता और न अपने को ढाढ़स दे पाता। धनुष होते हुए भी, वह तीरों के आसन का संधान करता।

घत्ता—युद्ध में उस अकेले ने जरासंध की सेना और रथ गजादि वाहनों को पकड़ लिया। वह सैन्य ऐसा मालूम होता था, जैसे किशोर सिंह से युद्ध करता हुआ गज समूह उसके पैरों के पथ में आ पड़ा हो ॥६॥

उस अवसर पर मध्यस्थ भाव धारण करने वाले सुन्दर स्वभाव वाले प्रेक्षक लोक ने रूप वैभव और सौभाग्य से मदांध जरासंध को धिक्कारा कि उस राजा के सत्व को देखने से

1. ब—णं घणघणहं थंभहि वरिसंतहं ।

जेण जुवाणु लइउ अक्खत्तें ॥
तं णिसुणेवि पिहिवि-परिवालें।
णं णियदूउ विसज्जिउ कालें॥
धाइउ सत्तुंजउ वसुएवहो।
............................[1]

बिण्णिवि ससर सरासण हत्थ।
बिण्णिवि जयसिरिगहण-समत्थ[2]॥
बिण्णिवि आवरंति अपमाणेंहिं।
जलहर जलहारोवम बाणेंहिं॥
तो सउहद्दें लद्धावसरें।
दिण्ण सुरंगण-लोयण-पसरें॥

घत्ता—रिउ णाराएं ताडिउ सारहि पाडिउ हय हय छिण्णु महारहु।
समरभरोद्धियखंधहो गउ जरसंधहो णिप्फलु णाइं मणोरहु॥१०॥

पाडिउ जं जि सत्तु सत्तुंजउ।
धाइउ [3]दंतवत्त (वक्कु) रणे दुज्जउ॥
सो वि सिलीमुहेंहिं विणिवारिउ।
मुच्छपराणिउ कहवि ण मारिउ॥
धाइय कालवत्तु तहो कोयउ।
सो वि दुक्खु मरि-रक्खिय-जीयउ॥
सल्लु ससल्लु करेप्पिणु मुक्कउ।
कहवि कहवि जम-णयरु ण ढुक्कउ॥
सोमयत्तु विरधारिवि घल्लिउ।

गया, जिसने अक्षात्रभाव से (क्षात्रधर्म के विरुद्ध) इस (अकेले) युवा से युद्ध किया है। यह सुनकर पृथ्वीपाल (जरासंध ने) ने अपना दूत भेजा, मानो काल ने अपना दूत विसर्जित किया हो। शत्रुंजय वसुदेव के ऊपर दौड़ा। दोनों के ही हाथ में तीर-धनुष थे। दोनों ही विजयश्री ग्रहण करने में समर्थ थे। दोनों ही मेघ-जलधारा के समान अप्रमेय बाणों से युद्ध करते हैं। तब अवसर पाकर सौभद्र (वसुदेव) ने देवांगनाओं को नेत्रों के प्रसार का अवसर देते हुए,

घत्ता—शत्रु को तीर से आहत किया। सारथि गिर पड़ा, घोड़े आहत हो गए, महारथ छिन्न-भिन्न हो गया, मानो युद्धभार से ऊँचे कंधेवाले जरासंध का मनोरथ ही असफल हो गया॥१०॥

जब शत्रुंजय ही गिरा दिया गया, तो दुर्जेय दंतवक्त्र युद्ध में दौड़ा, वह भी तीरों से गिरा दिया गया। मूर्च्छा को प्राप्त वह किसी प्रकार मरा भर नहीं। तब दूसरा कालवक्त्र उस पर दौड़ा, वह भी दुखित मृत्यु से जीवन को बचा सका। उसने शल्य को पीड़ित करके छोड़ा, किसी प्रकार वह यम की नगरी नहीं पहुँचा। सोमदत्त को उछालकर फेंक दिया। भूरिश्रवा अपने

१. सभी प्रतियों में एक पंक्ति नहीं, अतः यह युग्म अधूरा है। २. ज, ब—विण्णवि जयसिरि-गहणसमत्थ। ३. ब—दंतवंतु।

भूरीसउ णियरहें ओणुल्लउ ॥
तिह गंगेय-दोणु किय वम्मउ ।
तिह किउ तिह कलिंगु ससुसम्मउ ॥
जो जो जोहु रणंगणे मुच्चइ ।
सो सो सउरिहें कोवि ण पहुच्चइ ॥
ताव समुद्दविजयउ बले भग्गए ।
सहुं णियरहवरेण थिउ अग्गए ॥

घत्ता—णिएवि जणेरीणंदणु वाहिय-संदणु अणुउ मणेण पहिट्ठउ ।
अज्जु दिवसु विहिगारउ भाइ महारउ वरिससयहिं जं दिट्ठउ ॥११॥

सारहि जो दिण्ण आसि मामें ।
सो बोल्लाविउ दहिमुहणामें ॥
मंथरु वाहि वाहि रहु तेत्तहो ।
जेट्ठु समुद्दविजउ महु जेत्तहो ॥
केम वि विहिवसेण विच्छोइउ ।
वरिससयहो णियपुण्णेहि जोइउ ॥
हउं णिरवेक्खु रणे आएं सहियउं ।
एउ परमत्थु मित्त मइं कहियउ ॥
जणण समाणु केम घाइज्जइ ।
आयहो छाया-भंगु ण किज्जइ ॥
जिह उवइट्ठु तेम रहु चोइउ[1] ।
जायवणाहु जेत्थु तहिं ढोइउ ॥
तेण वि दिट्ठु कुमारु सहोयरु ।
सारहि वुत्तु ताम धरि रहवरु ॥

रथ पर लुढ़क गया। इसी प्रकार गांगेय, द्रोण, कृतवर्मा, कृपाचार्य, कलिंग और सुशर्मा, जो-जो योद्धा युद्ध के मैदान में भेजा जाता, वह शौर्यपुरवासी वसुदेव के सामने समर्थ नहीं हो पाता। सैन्य के भग्न होने पर, तब अपने रथवर के साथ समुद्रविजय आगे आकर स्थित हो गया।

घत्ता—माता के पुत्र को देखकर, जिसने रथ हाँका है, ऐसा अनुज (वसुदेव) मन में प्रसन्न हो गया। (वह सोचने लगा) आज का दिन भाग्यशाली है जो मैंने सैकड़ों वर्षों में अपने भाई को देखा ॥११॥

दधिमुख नाम का जो सारथि ससुर ने दिया था, उससे वसुदेव ने कहा—"रथ को धीरे-धीरे वहाँ ले जाओ जहाँ मेरा बड़ा भाई समुद्रविजय है। भाग्य के वश से किसी प्रकार बिछुड़ा हुआ मैं सैकड़ों वर्षों के अपने पुण्य से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। इसके साथ युद्ध में मैं तटस्थ हूँ। हे मित्र ! यह परमार्थ बात मैंने कह दी। पिता के समान इन पर आघात किस प्रकार किया जाए ? इनकी कान्ति भंग न की जाए। जैसा मैंने बताया है, तुम उस प्रकार रथ ले चलो। वहाँ पहुँचो जहाँ यादवनाथ हैं। उस (समुद्रविजय) ने भी सगे भाई कुमार को देखा और सारथि

1. चोइज्जइ।

पेक्खु जुआण सरासण हत्थउ ।
णं वसुएव-सामि सग्गत्थउ ॥

घत्ता—तो रणरसिद्धएं वुच्चइ सूएं सामिसाल-अवचिंतए ।
भिच्चु जेम पहरेव्वउ जेम मरेव्वउ एत्थुकाइं सुहचिंतए ॥१२॥

तं णिसुणेवि वयणु जुत्तारहो ।
धाइउ जायवणाहु कुमारहो ॥
बिण्णिवि भिडिय रणंगणे दुज्जय ।
दुद्धरपरणर पवर-पुरंजय ॥
बिण्णिवि जायवगरुड-महद्धय ।
आसि सुहद्दाएवि-थणंधय ॥
बिण्णिवि अंधय-विट्ठिहे णंदण ।
णियणिय-सारहि-वाहिय संदण ॥
बिण्णिवि रणगण वइरि-वियारण ।
जिणणारायण-जम्मण-कारण ॥
बिण्णिवि संजुगियण-धणु करयल ।
भग्गालाणखंभ णं मयगल ॥
बिण्णिवि [1]जयसिरि रमालिंगिय ।
सासय-पुरवर-गमण-मणिंगिय ॥
बिण्णिवि विक्कम-विड्ढिय-जयजस ।
दाणि-माणे समरंगणे सरहस ॥

से कहा—"रथ रोको। तब तक धनुष-बाण हाथ में लिए युवा को देखो, जैसे स्वर्ग में स्थित कुमार वसुदेव हों।

घत्ता—स्वामिश्रेष्ठ के अपचिंता करने पर युद्ध-रस के वशीभूत होकर सारथि ने कहा—"भृत्य की तरह प्रहार करना चाहिए जिससे यह मारा जाए, अपचिंता करने से क्या ?" ॥१२॥

जोतनेवाले (सारथि) के उस वचन को सुनकर यादवनाथ समुद्रविजय कुमार पर दौड़े ! युद्ध के मैदान में अजेय वे दोनों भिड़ गए। वे दोनों दुर्धर शत्रुजनों के बड़े-बड़े नगरों के विजेता थे। दोनों ही यादवों के महागरुड़ध्वज को धारण करनेवाले थे। दोनों ही अंधकवृष्णि के पुत्र थे। दोनों अपने-अपने सारथियों के साथ रथ चलानेवाले थे। दोनों शत्रुओं का विदारण करनेवाले थे। दोनों ही जिन (नेमिनाथ) और नारायण (बलभद्र) के जन्म के कारण थे। दोनों ने हथेलियों पर धनुष तान रखे थे। वे दोनों, जिन्होंने आलान खंभों को उखाड़ लिया है, ऐसे मदमाते गजों के समान थे। दोनों ही विजयलक्ष्मी रूपी रमणी के द्वारा आलिंगित थे। विक्रम के कारण दोनों के जय और यश बढ़ रहे थे। दान-मान और युद्ध प्रांगण में हर्ष धारण करने वाले थे।

---

१. अ—कुयसिरि रामालिंगिय।

घत्ता—सउरिपुर-परमेसर वाहिय-रहवर पच्चारिउ वसुएवें ।
पहरु पहरु णवखारउ तुहुं पहिलारउ अच्छहि किं साव लेवें ॥१३॥

ताव सुहद्द गब्भ-पहाणें ।
मुक्कु बाणु वइसाहट्ठाणें ॥
[1]किउ दुहंड दूरहो जि कुमारें ।
णं फणि खइवइ-चंचु पहारें ॥
जुज्झिय एम सरेहिं अणेयहिं ।
वायव-वारुणत्थ-अग्गेयहिं ॥
तरुवर-गिरिवर-सिल पाहणेहिं ।
सह-सहास-जुअ-लक्खपमाणेहिं ॥
पुणु[2] बम्हत्थु विसज्जिउ राएं ।
णासिउ तमि-तामस-णाराएं ॥
जं पट्ठवइ तेण तं छिज्जइ ।
तिह पहरइ जिह भाइ ण भिज्जइ ॥
मंडेवि चउदुवार-समरंगणु ।
परितोसाविओ अमरंगणु ॥
णियणामंकिउ मुक्कु महासरु ।
पणवइ पइं वसुएउ सहोयरु ॥

घत्ता—अंधयविट्ठिहे णंदणु णयणाणंदणु दसहं-मज्झे लहुयारउ ।
कहवि कहवि विच्छोइउ दइवें ढोइउ हउं सो भाइ तुम्हारउ ॥१४॥

घत्ता—जिसने अपना रथ हाँका है, ऐसे शौर्यपुर के स्वामी वसुदेव ने ललकारते हुए कहा—"तुम अपना पहला नया आक्रमण करो, तुम अहंकार पूर्वक क्यों स्थित हो ?" ॥१३॥

तब सुभद्रा के प्रमुख पुत्र समुद्रविजय ने वैशाख-स्थान से तीर छोड़ा। कुमार वसुदेव ने दूर से ही उसके दो टुकड़े कर दिए, मानो गरुड़ की चोंच के प्रहार से नाग के दो टुकड़े हो गए हों। इस प्रकार वे दोनों वायव्य, वरुणास्त्रों और आग्नेय अस्त्रों, तरुवरों, गिरिवरों, शिलाओं, पाषाणों—इस प्रकार दो हजार लाख की संख्यावाले शस्त्रों से लड़ते रहे। फिर, राजा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा जो तमी-तामस नामक अस्त्र से नाश को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा जो भी तीर भेजा जाता, वह उसे नष्ट कर देता। वसुदेव इस प्रकार प्रहार करता कि भाई समुद्रविजय नष्ट नहीं होता। चार द्वार वाले युद्ध-प्रांगण को बनाकर उसने अमरांगनाओं को संतुष्ट किया और अपने नाम से अंकित महाबाण फेंका। [उसमें लिखा था] सहोदर वसुदेव तुम्हें प्रणाम करता है।

घत्ता—अंधकवृष्णि का पुत्र नेत्रों के लिए आनंददायक दस में से सबसे छोटा, किसी प्रकार वियुक्त, परन्तु दैव से लाया गया, मैं वही तुम्हारा भाई हूँ ॥१४॥

1. ख, ब—किउ दुहंडउ रहो जि कुमारें। 2. ज, ब—पुण कम्मत्थु [कर्मास्त्र]।

सयल ससायरु पिहिमि [1]भमंतें।
वरिससयहो मइं दिट्ठु जियंतें ॥
हियउ कुद्धु जं णरिंदु खमिज्जहि।
जं कियउ अविणयउ तं मरुसिज्जहि ॥
जाम णराहिउ जोयइ अक्खरु।
ताम कुमार-सहोयर-भायरु ॥
घल्लइ[2] महियलि ससरु सरासणु।
णं कुकलत्तु [3]ओसारिय-पेसणु ॥
कुपुत्तु व आमेल्लिय संदणु।
जायव-जणमण णयणाणंदणु ॥
संदणु मुएवि ताहिं णियराइउ।
कंचीदाम खलंतु पधाइउ ॥
रोहिणीणाहु वि णियरहु छंडवि।
जसगुणविणयहिं अप्पउ मंडवि ॥
महियलि सिरु लायंतु पढुक्कउ।
देवेहिं कुसुमवासु पमुक्कउ ॥

घत्ता— एक्कहिं मिलिय सहोयर जयसिरि-गोयर पुण्णोपचएहिं वड्डएहिं।
विण्णु सणेहालिंगणु गाढालिंगणु विहिमि सयं भुवदंडएहिं ॥ १५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभूएवकए
रोहिणि-सयंवरो णाम तइओ सग्गो ॥३॥

समुद्रसहित पृथ्वी का परिभ्रमण करते हुए और जीवित रहते हुए, सैकड़ों वर्षों में मैंने तुम्हें देखा है। आपका जो हृदय क्रुद्ध हुआ है, हे राजन्! उसे क्षमा कर दें। मैंने जो आपकी अविनय की है उस पर आप ध्यान न दें। जब राजा अक्षर देखता है, तब तक कुमार और सगा भाई धरती पर तीर सहित अपना धनुष डाल देता है, मानो आज्ञा का उल्लंघन करने वाली खोटी स्त्री हो। खोटे पुत्र की तरह, उसने रथ छोड़ दिया। तब यादव लोगों के मन और नेत्रों को आनन्द देने वाले राजा हर्ष से फूले नहीं समाए। अपनी करधनी खिसकाते हुए वे दौड़े। रोहिणी के स्वामी (वसुदेव) भी अपना रथ छोड़कर यश, गुणों और विनय से अपने को आभूषित कर, धरती पर माथा टेकते हुए पहुँचे। देवों ने पुष्पों की वर्षा की।

घत्ता—दोनों भाई एक-दूसरे से मिले। बड़े पुण्यों के उपचय से उन्होंने अपने भुजदण्डों से प्रगाढ़ और स्नेहमय आलिंगन किया ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभू कवि द्वारा कृत अरिष्टनेमिचरित में
रोहिणी स्वयंवर नाम का तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ॥३॥

---

१. अ—भमंतें। २. अ—छल्लिउ। ३. अ—आसरिय-पेसणु।

चउत्थो सग्गो

परिणेप्पिणु रोहिणि [1]अमरविरोहिणी तहिं संवच्छरु एक्कु थिउ।
उप्पण्णउ हलधरु पुत्तु मणोहरु णहयँ णाइं जसपुंजु किउ ॥
संकरिसणु रामणामु णिम्मिउ।
बलएउ [2]सुहलावहु अवरु किउ ॥
बहु सत्तसयइं हक्कारियइं।
सउरिपुरवरे पइसारियइं ॥
वसुएउ णराहिउ [3]संचरइ।
धणुवेय-गुरु-उवएस करइ ॥
अच्छइ सयसीसालंकरिउ।
[4]सुपसिद्धु हुउ परमाइरिउ ॥
विज्जत्थिउ ताम कंस अइउ।
घरघल्लिउ [5]ओहामिय लइउ ॥
दणुदुद्दमदेह-वियारणइं।
सिक्खिउ अणेयइं पहरणइं ॥
तहिं कालि कहिउ केणवि णरेण।
पुणु घोसण किय चक्केसरेण ॥
जो कोवि णिबंधइ सीहरहु।
जीवंजस दिज्जइ तासु वहु ॥

देवों की विरोधिनी रोहिणी से विवाह कर वसुदेव वहाँ एक वर्ष रहे। उनके हलधर नामक सुन्दर पुत्र हुआ, मानो विधाता ने यशपुंज ही उत्पन्न किया हो। उसके संकर्षण और राम नाम रखे गए। सातसौ बन्धुओं को बुलवाया गया और उन्हें सौर्यपुर में प्रवेश दिया गया। राजा वसुदेव वहाँ रहते हैं और धनुर्वेद का महान उपदेश करते हैं। सौ शिष्यों से शोभित वह प्रसिद्ध श्रेष्ठ आचार्य हुए। इतने में विद्यार्थी के रूप में कंस आया। घर से निकाले हुए और अपमानित उसे गुरु वसुदेव ने स्वीकार कर लिया। उसने दानवों की दुर्दम देह का विदारण करने वाले अनेक शस्त्रों को सीखा। उसी समय किसी मनुष्य ने कहा और फिर चक्रवर्ती ने घोषणा भी की कि जो कोई भी सिंहरथ को बाँधकर लाएगा, उसे जीवंजसा वधू के रूप में दी जाएगी।

१. अ, ब प्रतियों में यह छूटा है। २. अ—सुहलावहु। ३. अ—संवरइ। ४. अ—सुपसिद्धओ।
५. अ—ओहामण।

घत्ता—सहुं इच्छियदेसें देइ विसेसें सा वसुएवें वत्त सुय ।
भुयदंड-पयंडें णं वेयंडें अमलालाण-खंभ विहुय ॥१॥

पहु देवणें असहिष्णु-कुइयमण ।
वसुएवकंस गय बे वि जण ॥
उप्परि पोयण-परमेसर हो ।
केसरि-संजोत्तिय-रहवर हो ॥
परिवेढिउ पुरवरु गयवरेहिं ।
रविमंडलु णं णवजलहरेहिं ॥
असहंतु पधाइउ सीहरहु ।
सरजालें पच्छायंतु णहु ॥
तहिं अवसरि कंसें वुत्तु गुरु ।
हउं आयहो रणमहिं देमि उरु ॥
तुहुं पेक्खु अज्जु महु तणउ बलु ।
सीसत्तण रुक्खहो परमहलु ॥
वसुएवं हत्थुच्छल्लियउ ।
रहु दिण्णु कंसु संचल्लियउ ॥
ते भिडिय परोप्परु दुव्विसह ।
णाणाविह पहरण-भरियरह ॥

घत्ता— आयामिवि कंसें लद्ध पसंसें छत्तु सचिंधु ससीहरहु ।
छिंदिवि सरपसरें लद्धावसरें धरिउ रणंगणे सीहरहु ॥२॥

रिउ लेवि बे वि गय तं [1]मगहु ।
आखंडल-मंडल-णयर-णिहु ॥

घत्ता—मनचाहे देश के साथ वह विशेष रूप से देय होगी। अपने बाहुदंड से प्रचंड वसुदेव ने यह बात इस प्रकार सुनी मानो हाथी ने दोनों आलानखंभों को कँपा दिया हो ॥१॥

असहिष्णुता से कुपित मन, कंस और वसुदेव दोनों सेना के साथ, जिसके रथ में सिंह जुते हुए हैं ऐसे पोदनपुर के राजा सिंहरथ के यहाँ गये। उन्होंने गजवरों के द्वारा नगरवर को इस प्रकार घेर लिया जैसे नवजलधरों ने सूर्यमण्डल को घेर लिया हो। [यह] सहन न करता हुआ सिंहरथ भी शरजाल से आकाश को आच्छादित करता हुआ दौड़ा। उस अवसर पर कंस ने गुरु से कहा—"इस युद्ध में इसे मैं अपना वक्ष दूँगा। आप आज मेरा बल और अपने शिष्यत्व-रूपी वृक्ष का फल देखिएगा।" वसुदेव ने हाथ उठा दिया। रथ दे दिया गया, और कंस चला। असह्य वे दोनों परस्पर लड़े। उनके रथ नाना प्रकार के आयुधों से भरे हुए थे।

घत्ता—प्रशंसा अर्जित करनेवाले कंस ने आयाम कर सिंहों के रथ और चिह्नों सहित छत्र को तीरों के प्रसार से छेदकर, युद्ध के मैदान में अवसर पाते ही सिंहरथ को पकड़ लिया ॥२॥

शत्रु (सिंहरथ) को लेकर दोनों उस मगध (देश में) गये जो इन्द्र-मण्डल के नगर के

1. अ—तं जि गिहु ।

अवसरें तो आलत्तु पिउ ।
वसुएवहो अब्भुत्थाणु किउ ॥
जीवंजस वेसु समप्पियउ ।
तो [1]रोहिणी-णाहें पजंपियउ ॥
महं जिउ ण भडारा सीहरहु ।
जिउ कंसें आयहो देहु बहु ॥
परिपुच्छिउ [2]तें तुहुं तणउ कहो ।
कउसंबिहि हउं वज्जिरिउ तहो ॥
[3]मंजोयरि णामें माय महु ।
[4]सुयकारिणि कोक्किय आय लहु ॥
करकमल-कयंजलि विण्णवइ ।
अहो सुणु तिखंड-वसुहाहिवइ ॥
एहु ण सच्च सुउ महु तणउ ।
णउ जाणमि आउ कहो तणउ ॥

घत्ता—कंसय-मंजूसए मुद्द-विहूसिए केण वि जले पइसारियउ ।
कालिंदि-पवाहे सुट्ठु अगाहे आणेवि महु संचारियउ ॥३॥

[5]कंसियमंजूसे जेण भवणु ।
किउ कंसु तेण णामग्गहणु ॥
कलियारउ ण महं णिरिक्खियउ ।
गुरु सेविवि सत्थइं सिक्खियउ ॥
परिओसु [6]पवड्ढियउ पत्थिवहो ।
जीवंजस णियसुय दिण्ण तहो ॥
लइ मंडलु एक्कु जहिं इच्छियउ ।

समान था। तब जरासंध ने प्रिय बात की और वसुदेव के लिए उठकर खड़ा हो गया। समर्पित जीवंजसा दूंगा। तब रोहिणी के स्वामी ने कहा—"आदरणीय, मैंने सिंहरथ को नहीं जीता। कंस ने जीता है, उसे वधू दीजिए।" जरासंध ने पूछा—"तुम किसके पुत्र हो?" कंस ने कहा—"मैं कौशाम्बी का हूँ, मंजोदरी नाम की मेरी माँ है। पुत्र के कारण बुलाई गई वह (मंजोदरी) शीघ्र आयी। करकमलों की अंजलि बनाकर, वह शीघ्र बोली—"हे तीन खण्ड धरती के स्वामी! सुनिए, यह सचमुच मेरा पुत्र नहीं है। नहीं जानती हूँ कि कहाँ से आया है।

घत्ता—मुद्रा से अलंकृत कांसे की मंजूषा में किसी ने इसे जल में प्रवेश कराया। अत्यन्त अगाध कालिंदी के प्रवाह में से लाकर मैंने इसे जीवित रखा है ॥३॥

चूंकि कांसे की मंजूषा में जन्म हुआ, इसलिए इसका नाम कंस रखा गया। यह कलहकारी था, इसलिए मैंने नहीं रखा। गुरु की सेवा करके इसने शस्त्रों को सीखा।" [यह सुनकर] राजा को संतोष हो गया और अपनी कन्या जीवंजसा दे दी, [और कहा] जहाँ चाहते हो, एक

1. अ—रोहिणिणाह। 2. अ—तो। 3. अ—रंजोयरि। 4. अ—सुयकारिणि। 5. अ—कंसिय-मंजूसए। 6. अ—पवड्ढियओ।

तं तेण वि वयणु पडिच्छियउ ॥
परमेसर [1]दिज्जइ महुर महु ।
[2]जहिं जुज्झमि णिय जणणेण सहुं ॥
जउ णइहे घल्लिउ जेण चिरु ।
तं बंधमि जइवि ण लेमि सिरु ॥
ता राएं हत्थुच्छल्लियउ ।
पिउ बंधिवि णियलहिं घल्लियउ ॥

घत्ता—जा बप्पे भुत्ती सिय-उलवत्ती सा किं पुत्तहो परिणवइ ।
सिय चंचल होइ विचित्ती जुत्ताजुत्त ण परिकलइ ॥४॥

[3]महुरउरि परिपालंतु थिउ ।
[4]णियणय विहेउ पडिवक्खु किउ ॥
जरसंघहो जो ण सेव करइ ।
उक्खंदें आएवि तं धरइ ॥
परिचिंतवइ बारहमंडलइं ।
चउरासम चाउवण्णहलइं ॥
चउविज्जउ सत्तिउ तिण्णि तहिं ।
अट्ठारह तित्थहं कवणु कहि ॥
सत्तंगु रज्जु पालइ अचलु ।
मेल्लावइ छहविहु भिच्चबलु ॥
छग्गुणउ सयल वि संभरइ ।
सत्त वि दुव्वसणइं परिहरइ ॥
जाणइ कंटय-सोहणकारणु ।
णियरक्खणु णियकुमारधरणु ॥

मण्डल ले लो। तब उसने भी उस वचन को स्वीकार कर लिया। [वह बोला] "हे परमेश्वर! मुझे मथुरा दीजिए, जहाँ अपने पिता के साथ लड़ सकूं। उसने बहुत पहले मुझे नदी में फेंका था, मैं यदि उसका सिर नहीं लूँगा तो बाँधूँगा।" तब राजा ने हाथ उठा दिया। पिता को बाँधकर कंस ने बेड़ियों में डाल दिया।

घत्ता—जो लक्ष्मीरूपी पुत्री पिता के द्वारा भोगी गई, क्या वह पुत्र से परिणय करती है? लक्ष्मी चंचल और विचित्र होती है, वह उचित-अनुचित का विचार नहीं करती ॥४॥

मथुरा नगरी का परिपालन करते हुए, उसने प्रतिपक्ष को नृप-नय से विभक्त कर दिया। जो जरासंध की सेवा नहीं करता, आक्रमण कर उसे बन्दी बना लेता है। वह बारह मण्डल का विचार करता है, चार आश्रमों और चार वर्णों के फलों का विचार करता है। उसके पास चार विद्याएँ और तीन शक्तियाँ हैं। अट्ठारह तीर्थों का क्या कहना, वह अचल, सप्तांग राज्य का पालन करता है। छह प्रकार भृत्य बल को इकट्ठा करता है। समस्त छह गुणों की याद रखता है। सात दुर्व्यसनों का परित्याग करता है। कांटक-शोधन के कारण को

१. अ—दिज्जउ। २. अ—जे। ३. अ—महुराउरी। ४. अ—णियणयवसविहि।

हिय-इच्छिउ एम रज्जु करइ ।
णिय गुरु-उवयारु ण वीसरइ ॥

घत्ता— कुरुवंसुप्पण्णी ससरिसिणी देवइ णिय राएण परिगणेवि ।
दिज्जइ वसुएवहो जिणपयसेवहो कंसें गुरुदक्खिण्ण भणेवि ॥५॥

तहिं तेहइंकाले तिण्णाणधरु ।
विणि वारिय-वम्मह-सर पसरु ॥
अजरामर-पुरवर-पहदरिसि ।
अतिमुत्तउ णामें देवरिसि ॥
रयणायरगुरु-गंभीरिमए ।
गिरिराणधरावर-धीरिमए ॥
तव तेएं तवण तावतवणु ।
णियमूलगुणालंकरियतणु ॥
परमागम-दिट्ठिए संचरइ ।
महुराउरि चरियएं पइसरइ ॥
आणंदवत्थु[1]-रममाणियउ ।
जीवंजस देवइ-राणियउ ॥
[2]णियणाण-विणासिय-भवणिसिहे ।
पहु रुंभेवि दावइ[3] महरिसिहे ॥
ता तेण वि मणे आरुट्ठएण ।
बोलिज्जइ कंसहो जेट्ठएण ॥

घत्ता—जीवंजस ण वच्चहिं काइं णच्चहिं, [4]जहिं संभव तहिं मग्गहिं सरणु ।
मगहाहिववंसहं पुरसरहंसहं, मायहो पासिउ थू मरणु ॥६॥

यह जानता है। अपनी रक्षा करता है और अपने कुमारों का पालन करता है। इस प्रकार मन-चाहा राज्य करता है और अपने गुरु के उपकार को नहीं भूलता।

घत्ता—कुरुवंश में उत्पन्न देवकी, अपनी बहिन के समान समझकर, कंस के द्वारा गुरु-दक्षिणा के रूप में जिन चरणों के सेवक वसुदेव को दे दी जाती है ॥५॥

उस अवसर पर—जो तीन ज्ञान के धारी हैं, जिन्होंने कामदेव के तीरों के प्रसार को रोक दिया है, जो अजर-अमर-पुरवर के पथ के प्रदर्शक हैं, ऐसे अतिमुक्तक नाम के देवर्षि समुद्र की गंभीरता और हिमालय की गुरुता, और तप के तेज से सूर्य के ताप को संतप्त कर देनेवाले हैं, जिनका शरीर अपने मूलगुणों से अलंकृत है, जो परमागम की दृष्टि से चलते हैं, वह मथुरा नगरी में चर्या के लिए प्रवेश करते हैं। जिन्होंने अपने ज्ञान से संसाररूपी रात्रि का अन्त कर दिया है; ऐसे उन महर्षि को जीवंजसा देवकी के रमण किए गये वस्त्र को रास्ता रोककर दिखाती है। तब इससे क्रुद्ध होकर कंस के बड़े भाई उन मुनि ने कहा—

घत्ता—जीवंजसे! अब तुम नहीं बच सकतीं, क्यों नाच रही हो? जहाँ संभव हो वहाँ शरण माँग लो। मगधराज वंश और नगरवररूपी सरोवर के हंस (जरासंध) की मौत इसके (वस्त्र के) हाथ में है ॥६॥

---

१. अ—आणंदवद्धु । २. ज—णियणाम-विणासिय । ३. अ—देंति । ४. अ—जहिंभव तहिं ।

तं णिसुणेवि मणु समावडिय ।
णं मत्थइ वज्जासणि पडिय ॥
गय णियघरु उम्मण दुम्मणिय ।
गग्गर-सर-मउलिय-लोयणिय ॥
णं कमलिणि हिमपवणेण हइय ।
वणप्फइ णं वणमइंदें मइय[1] ॥
तो कंसें अमरिसकुद्धएण ।
सीहेण व आमिसलुद्धएण ॥
कालेण व कोवाउण्णएण ।
विसहरें पउर-विस चिण्णएण ॥
जलणेण व जाला-भीसणेण ।
मेहेण व पसरिय-णीसणेण ॥
[2]सक्केण व मीण-कवण-गएण ।
पुच्छिय पउमावइ-अंगएण ॥
परमेसरि दुम्मण काइं तुहुं ।
विद्दाणउ दीसइ जेण मुहुं ॥

घत्ता—कहि कहि सीमंतणि कवणु णियंवणि खेउ जेण उप्पायउ ।
सो सणि-अवलोइउ काले चोइउ कहिं महु जाइ अघाइउ ॥७॥

कालिंदिसेण अरसंघसुय ।
पभणइ सुसियाणण सुढियभुय ॥
भो अज्जु णाह किउ सोहलउ ।
तो महु उप्पाइउ कलमलउ ॥
णं मत्थइ जलण जलंतु थिउ ।
अइमुत्तएण आएसु किउ ॥

यह सुनकर जीवंजसा का मन उदास हो गया, मानो सिर पर गाज गिरी हो। उत्कंठित और उदास होकर, वह अपने घर गयी। गद्‌गद स्वर और बन्द आँखों वाली वह ऐसी लगती जैसे हिम-पवन से आहत कमलिनी हो, मानो वनसिंह के द्वारा कुचली गई वनस्पति हो। आमिषलोभी सिंह की तरह, क्रोध से आपूर्ण काल की तरह, प्रचुरविष से निर्मित विषधर की तरह, नव ज्वालाओं से भयंकर आग की तरह, प्रसरित स्वरवाले मेघ की तरह, मीन और शनिराशि में गए हुए मंगल की तरह, अमर्ष से भरा हुआ कंस पूछता है—"हे परमेश्वरी तुम दुःखी क्यों हो, कि जिससे तुम्हारा मुख उदासीन दिखाई देता है!

घत्ता—हे सीमंतनी, बताओ बताओ वह कौन है जिसने तुम्हें खेद पहुँचाया है, शनि के द्वारा दृष्ट और काल के द्वारा प्रेरित वह मुझसे आहत हुए बिना कहाँ जाएगा?" ॥७॥

जिसका मुख सूख गया है और जिसकी भुजाएँ ढीली पड़ गई हैं, ऐसी कालिंदी-सेना की पुत्री जीवंजसा कहती है—"हे स्वामी! आज मैंने अपहास किया था, उससे मुझे व्याकुलता हो गई है, जैसे मेरे मस्तिष्क में आग जल रही हो। अतिमुक्तक ने आदेश दिया है कि

१. अ—ण वणवइ वणमइ वणमइय। २. अ—सक्केण।

वसुएवहो वइयहे देवइहे ।
जो णंदणु होसइ खलमइहे ॥
तहो पासउ तुम्हहं बिहिं मरणु ।
महु बप्पहो कोवि णाहिं सरणु ॥
तो महुर णराहिउ डोल्लियउ ।
णं हियवइ सूलें सल्लियउ ॥
थिउ णाइं धराधरु दड्ढउ ।
अप्पमाणी होइ ण रिसिवयणु ॥
अच्चंत महंत उप्पण्णु भउ ।
णिविसें वसुएवहो पासु गउ ॥

घत्ता—जइ तुम्हहं गुरुत्तणु महु सीसत्तणु इहु परमत्थु समत्थियउ ।
तो एत्तिउ किज्जइ वरुवरु दिज्जइ सत्तवार अब्भत्थियउ ॥८॥

जं कंसु [1]सुपरिट्ठिउ पणयसिरु ।
[2]रइयांजलि थोत्तुग्गिण्ण-गिरु ॥
तो देवइवइएं दिण्णु वरु ।
तउं मुएवि अण्णु को मज्झु अवरु ॥
महुराहिउ सरहसु विण्णवइ ।
जो जो देवइहे गब्भु हवइ ॥
सो सो विहुणेव्वउ सिलसिहरे ॥
तुम्हेहिं [3]णिवसेव्वउ महु जि घरे ॥
गउ एम भणेप्पिणु लद्धवरु ।
वसुएउ वि गउ णियवासहरु ॥
णाइं विमणु महाफणि मणिरहिउ ।

वसुदेव की दुष्ट बुद्धिवाली पत्नी देवकी से जो पुत्र होगा, उसके हाथ में तुम दोनों की मौत है। मेरे पिता के लिए कोई शरण नहीं है।" यह सुनकर मथुरा का राजा इस तरह काँप उठा, जैसे किसी ने हृदय में शूल चुभा दिया हो। वह जले हुए पहाड़ की तरह खड़ा रह गया, क्योंकि ऋषि के वचन कभी झूठे नहीं होते। उसे बहुत भारी दुःख उत्पन्न हो गया। वह एक पल में वसुदेव के पास गया और बोला—

घत्ता—यदि तुम्हारा गुरुत्व और मेरा शिष्यत्व, परमार्थ भाव से समर्थित है, तो इतना कीजिए कि एक श्रेष्ठ वर दीजिए जो सात बार अभ्यर्थित हो ॥८॥

जब कंस हाथ जोड़कर और प्रणतसिर स्तुति में वाणी निकालता हुआ खड़ा रहा, तो देवकी के पति वसुदेव ने वर दिया और कहा—"तुम्हें छोड़कर मेरा दूसरा कौन है?" तब मथुरा का राजा [कंस] हर्षपूर्वक निवेदन करता है, "देवकी के जो-जो गर्भ होगा वह मेरे द्वारा चट्टान पर मार दिया जाएगा। तुम लोगों को मेरे घर में ही निवास करना होगा।" ऐसा कहकर और वर प्राप्त कर, वह चला गया। वसुदेव अपने निवासगृह गये, एकदम विमन हो जैसे मणि

---

१. ज, ख, ब—परिट्ठिउ। २. ब—रइयांजलि थोत्तग्गिण्णगुरु। ३. अ—ण वसेव्वउ।

णिय-वइयरु णिरवसेसु कहिउ ॥
[1]देवइहे तणु हुअ गीढभय ।
रोवंती रसायलि मुच्छ गय ॥

घत्ता---पडि आइय चेयण भणइ सवेयण णिच्चल हरिणि[2]-इत्थणिए ।
किह् कुलउत्तिए काइं जियंतिए पइहरे पुत्तविहूणए ॥९॥

[3]धणणंदण जोव्वणइत्तियहं ।
जसु सत्तसयइं कुल-उत्तियहं ॥
सो किण्ण देइ सयवार वरु ।
हयदइवहे महु डज्झउ उयरु ।
एक्कु वि लहु अण्णवि सुयरहिय ।
वरि लइय दिक्ख जिणवर-कहिय ॥
तो गय विण्णिवि उज्जाणवणु ।
अइमुत्तमहारिसि जहिं सवणु ॥
वंदेप्पिणु पुच्छिउ अइपवरु ।
वसुएवें कंसहो दिण्ण वरु ॥
जो गब्भुप्पज्जइ महु-उयरे ।
तं सो अप्फालइ सिलसिहरे ॥
परमेसरु एउभउ अवहरइ ।
महु पुत्तहो एक्कुवि णउ मरइ ॥
छह् चरम देह कहियागमणें ण ।
पालेव्वा देवें णइगमेण ॥

घत्ता—सत्तमउ तुहारउ रणे खयगारउ महुराहिव-मगहाहिवहं ।
महि-णिहि-रयणवइहं पट्टणिवंधहं होसइ परिघउ पत्थिवहं ॥१०॥

से रहित महानाग हों। उन्होंने अपना वृतान्त (घर) बताया। देवकी का शरीर भयग्रस्त हो उठा। वह रोती हुई धरती पर गिर पड़ी और मूच्छित हो गयी।

घत्ता---जब उसकी चेतना लौटी, तो वह वेदनापूर्वक बोली---"हिरनी की तरह निश्चल, कुलपुत्री का बिना पुत्र के पति के घर में जीवित रहने से क्या ? ॥९॥

धन, पुत्र और यौवनवाली, जिसके पास (वसुदेव के पास) सात सौ कुलपुत्रियां स्त्रियों के रूप में हैं वह क्यों न सौ बार वर दे ? हतभाग्य मेरी कूख में आग लगे। एक तो मैं सबसे छोटी हूँ और दूसरे पुत्ररहित हूँ। अच्छा हो कि जिनवर के द्वारा उपदिष्ट जिनदीक्षा ग्रहण कर ली जाए। वे दोनों उद्यानवन में गये, जहाँ अतिमुक्तक नामक श्रमण थे। वन्दना कर उन्होंने मुनि-प्रवर से पूछा---"वसुदेव ने कंस को वर दिया है कि मेरे यहाँ गर्भ से जो उत्पन्न होगा, उसे वह चट्टान पर पछाड़ेगा।" परमेश्वर उसका भय दूर करते हैं कि तुम्हारा एक भी पुत्र नहीं मरेगा। आगम में कहा गया है कि छह पुत्र चरम शरीरी हैं जो नैगमदेव के द्वारा पाले जाएँगे।

घत्ता—तुम्हारा सातवाँ पुत्र मथुरा और मगध के राजाओं का क्षयकारक होगा, आधी धरती, निधियों और रत्नों वाले पट्टधर राजाओं का राजा होगा ॥१०॥

1. अ---देयइहे तणुभय। 2. अ---हरिण इत्थुणए। 3. ज---धणणंदणजोव्वइं त्तियहं।

वंदेप्पिणु देवरिसि-चरण ।
गय देवइ णियघरु तुट्ठमण ॥
छ वि पसविय कंसहो अल्लविय[1] ।
मलयइरिहिं णइगमेण सुरेण णिय ॥
सत्तमु जं णंदणु ओयरिउ ।
घरे णाइं मणोरहु पइसरिउ ॥
तहिं काले जसोय वि देवइ वि ।
णाइं मिलिय जउणगंगणइ वि ॥
अवरोप्परु वड्ढियउ णेहभरु ।
सो णंदहो वइयए दिण्णु वरु ॥
महु केरउ गब्भु माए मरउ ।
तुहु केरउ गोउले संचरउ ॥
परिपालमि तं जिह अप्पणउ ।
एत्तिउ पडिवण्णु महु तणउ ॥
णियणिय आवासहो हूयउं ।
वासरि एक्कहिं जि पसूयउं ॥

घत्ता—भद्दवहो चंदिणि-बारहमए दिणे सुहिहिं दितु अहिमाण-सिह ।
उप्पण्णु जणद्दणु असुर विमद्दणु कंसहो मत्था-सूल जिह ॥११॥

सयसीह-परक्कमु अतुलबलु ।
सिरि-लच्छण-लंछिय-वच्छयलु[2] ॥
सुहलक्खण-लक्खालंकियउ ।
अट्ठुत्तरसय-णामंकियउ ॥

देवर्षि अतिमुक्तक के चरणों की वन्दना करके देवकी अपने घर संतुष्ट होकर गयी। छह पुत्र उत्पन्न हुए, [वे] कंस को सौंप दिए गए, नैगमदेव के द्वारा वे मलयगिरि पर ले जाए गए। जब सातवें पुत्र का जन्म हुआ, मानो घर में मनोरथ ने प्रवेश किया हो। उस समय देवकी और यशोदा भी इस प्रकार मिलीं, जैसे गंगा और यमुना नदी मिली हों। उन दोनों में आपस में स्नेह बढ़ गया। तब नन्द की घरवाली ने वर दिया—"हे आदरणीये! मेरा गर्भ नष्ट हो जाए, तुम्हारा गर्भ गोकुल में बढ़ता रहे। मैं उसे अपने बेटे की तरह पालूंगी। मेरी इतनी बात मान लो। वे अपने-अपने घर चली गयीं। एक दिन उनके प्रसव हुए।

घत्ता—शुक्ल पक्ष, भाद्रपद बारहवीं को, सुधीजनों के लिए अभिमान की ज्योति देता हुआ, असुरों का विमर्दन करनेवाले जनार्दन का इस प्रकार जन्म हुआ, जैसे कंस के मस्तक का शूल हो ॥११॥

सौ सिंहों के समान पराक्रमवाले, अतुल बल लक्ष्मी के चिह्न से चिह्नित वक्ष, लाखों शुभ लक्षणों से अंकित, १०८ नामों से अंकित, अपने शरीर की कान्तिलता से भवन को आलोकित

१. ज, अ, ब—अलविय। मात्राओं के विचार से यह कड़वक गड़बड़ है। २. ज, ब—लंछण लंछिम वच्छलु।

णियकंतिलयर लिंगिय-भवणु।
वसुएवें चालिउ महुमहणु॥
बलएवें आयवत्तु धरिउ।
तें वरिसणिरंतरु अंतरिउ॥
णारायण-चलणंगुट्ठ-हउ॥
विहडेवि पओलि-कवाडु गउ॥
धम्मोवम अग्गए वसहु थिउ।
तें जउणाजलु वे भाय किउ॥
हरि देप्पिणु लइय जसोय सुय।
हलहर वसुएव कयत्थकिय॥
गोवंगय कंसहो अल्लविय।
विज्झाहिव-जक्खें विज्झें णिय।
गोविंदु णंद दु'गणए।
वड्ढइ णव ससि व णहंगणए॥

घत्ता—हरिवंस हो मंडणु कंसहो खंडणु हरिपरिवड्ढइ णंदघरे।
णियपक्ख विहूसणु परगयदूसणु रायहंसु णं कमलसरे॥१२॥

गोट्ठंगणे पुण्णइ आइयइं।
महुरहि दुण्णिमित्तइं जाइइं॥
गोट्ठंगणे परिवड्ढइ हरिसु।
महुरहि वरिसइ सोणिय-वरसु॥
गोट्ठंगणे अणुदिणु णाइं छणु।
महुरहि संतत्तउ सयलु जणु॥
गोट्ठंगणे मंडव-संकुलइं।
महुरहि दीसंति अमंगलइं॥
गोट्ठंगणे खीरइं पट्ठियइं।

करनेवाले श्रीकृष्ण को वसुदेव ने चलाया, और बलदेव ने आतपत्र [छत्र] धारण कर लिया, उससे वर्षा की निरन्तरता बच गयी। नारायण के पैर के अँगूठे से मुख्य द्वार के किवाड़ खुल गए। धर्मतुल्य वृषभ आगे आकर स्थित हो गया। उसने यमुना का जल दो भागों में बाँट दिया। हरि देकर वसुदेव ने यशोदा की पुत्री ले ली। बलभद्र और वसुदेव कृतार्थ हो गये। गोप-कन्या कंस को दे दी गयी। विध्यराज यक्ष उसे विंध्य पर्वत पर ले गया। गोठ के प्रांगण में गोविन्द उसी प्रकार बढ़ने लगे जिस प्रकार नभ के आँगन में नभचन्द्र बढ़ने लगता है।

घत्ता—हरिवंश के मंडन और कंस के खंडन हरि नंद के घर में बढ़ने लगते हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार अपने पक्ष के लिए भूषण और दूसरे के पक्ष के लिए दूषण राजहंस सरोवर में बढ़ने लगता है।

गोकुल में पुण्य आ गए, मथुरा में खोटे निमित्त हुए। गोकुल में हर्ष बढ़ता है, मथुरा में रक्त की वर्षा होती है। गोठों के आँगन में प्रतिदिन उत्सव होता है, मथुरा में समस्त जन संतप्त होते हैं। गोठ के आँगन मंडपों से व्याप्त हैं, मथुरा में अमंगल दिखाई देते हैं। गोठ के आँगन में दूध

महुरहि मज्जहं मि ण संचियइं ॥
गोट्ठंगणे गोविउ सुहवउ ।
महुरहि वेसाउ वि दूहवउ ॥
गोट्ठंगणे गोवाल वि कुसल ।
महुरहि वणिउत्तवि णाइं विअल ॥
गोट्ठंगणे णोक्खी कावि किय ।
महुरहि गउ उड्डेवि णाइं सिय ॥
गोट्ठे खोल्लउइं वि मणोहरइं ।
महुरहि रोवंति णाइं घरइं ॥

घत्ता—महुराउरि सुण्णी जायउ अउण्णी जहिं ण पयट्टइ का वि किय ।
धणकणय-सउण्णउं गोउलं रवण्णउं जहिं णारायणु तहिं जि सिय ॥१३॥

दणु-मद्दणु णंदणु कण्हु जहिं ।
वण्णिज्जइ गोउल काइं तहिं ॥
हरि वड्ढइ केण वि कारणेण ।
वामयरंगुट्ठ-रसायणेण ॥
बालत्तणे बालकील करइ ।
जो ढुक्कइ सो गहु ओसरइ ॥
गब्भत्थेण घाइय अट्ठगह ।
[1]जाएण विणग्गह दस दुसह ॥
मासग्गह बारह ते वि जिय ।
वरिसग्गह तेरह खयहो णिय ॥
णारायणु चत्तु[2] णिसायरेहिं ।
कुत्थेहिं गुरु चंदिवायरेहिं ॥
पलहु वायइ घंटारउ करइ ।

भरा पड़ा है, मथुरा में मद्य का भी संचान नहीं हो पाता। गोठ के आँगन में गोपियाँ सुभग हैं, मथुरा में वेश्याएँ भी दुर्भग हैं। गोठ के आँगन में ग्वाल-बाल भी कुशल हैं, मथुरा में वनियों के बेटे भी जैसे विकल हैं। गोठ के आँगन में कोई अनोखी क्रिया है, मथुरा से जैसे शोभा उड़कर चली गई है। गोठ में कोठड़ियाँ भी सुंदर हैं, मथुरा में मानो घर रो रहे हैं।

घत्ता—मथुरा नगरी अपूर्ण और सूनी हो गई, वहाँ कोई भी क्रिया नहीं हो रही है, जबकि धनस्वर्ण से सम्पूर्ण गोकुल सुन्दर है। जहाँ नारायण हैं वहीं लक्ष्मी निवास करती है ॥१३॥

दानवों का मर्दन करनेवाले कृष्ण जहाँ हैं, उस गोकुल का किस प्रकार वर्णन किया जाए? दाएँ अंगूठे के रसायन से किसी भी प्रकार बढ़ते हैं। बचपन में बालक्रीड़ा करते हैं। जो ग्रह पास पहुँचता है वह भाग जाता है। गर्भ में रहते हुए उन्होंने आठ ग्रहों का नाश कर दिया, उत्पन्न होने पर दुःसह दस ग्रहों का नाश कर दिया। माह के जो बारह ग्रह हैं, उन्हें भी जीत लिया। वर्ष के तेरह ग्रह नाश को प्राप्त हुए। निशाचरों ने नारायण को छोड़ दिया, दुष्ट गुरु

1. अ—जाएण जि णग्गह दस दुसह। 2. अ—वत्तु।

केक्कं कुणइ वंसाहउ थुणइ ॥
दिणए सोवइ जग्गइ जामिणीहिं ।
मा होसइ भउ गोसामिणीहिं ॥

घत्ता—णिसि-समए जणद्दणु असुरविमद्दणु रणरसरहससएहिं ।
परिवज्जियसोयहो रक्खइ जसोयहो उट्ठइ वेइ सयंभुएहिं ॥१४॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभूएवकए हरिकुलवंसुप्पत्ति-
णामेण चउत्थओ सग्गो ॥४॥

चन्द्र और सूर्य ने भी। वह नगाड़ा बजाते हैं, घंटे का नाद करते हैं, वीका ध्वनि करते हैं, आहत बाँसुरी बजाते हैं, दिन में सोते हैं, रात्रियों में जागते हैं कि गोस्वामिनी (यशोदा) को डर न लगे।

घत्ता—रात्रि के समय असुरों का विमर्दन करनेवाले जनार्दन रण के सैकड़ों रसों और हर्षोंवाले अपने बाहुओं से सबेरे उठते हैं और शोक से रहित यशोदा की रक्षा करते हैं ॥१४॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेवकृत अरिष्टनेमिचरित में हरिकुलवंश
की उत्पत्ति नाम का चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पंचमो सग्गो

णंदइ णंदहो तणउ घरु जहिं हरि उप्पण्णउ बालु ।
पालइ पालणए जि ठिउ गोट्ठंगणु-गो-परिवालु ।।छ।।

[1]कण्हहो णिसामग्गि दावियए ।
णिद्द ण एइ रणंगणकंखए ।।
अज्जवि पूयण काइं चिरावइ ।
अज्जवि माया-सयडु ण आवइ ।।
अज्जवि रिट्ठ-कंकु ण वलिज्जइ ।
अज्जवि गोवद्धणु ण धरिज्जइ ।।
अज्जवि अज्जुण-जुयलु ण भज्जइ ।
अज्जवि कंसतुरंगु ण गज्जइ ।।
अज्जवि जउण णाहि मंथिज्जइ ।
अज्जवि कालिउ णाहि णत्थिज्जइ ।।
अज्जवि कुवलयपीढु ण हम्मइ ।
अज्जवि महुराणयरि ण गम्मइ ।।
अज्जवि सद्दु सुणिज्जइ तूरहो ।
अज्जवि सहय चलण चाणूरहो ।।
अज्जवि णंदइ पुरि जरसंधहो ।।
मायए कंखए बालु ण सोवइ ।
जाणइ जणणि अकारणें रोवइ ।।

नन्द का घर आनन्द में है, जहाँ हरि बालक उत्पन्न हुआ है, गोठ प्रांगण और गायों का परिपालन करनेवाले जो पालने में स्थित होकर भी (जगत् का) का पालन करते हैं। रात का मार्ग दिखाई देने पर, युद्ध के क्षेत्र की आकांक्षा से कृष्ण को नींद नहीं आती। (वह सोचते हैं) आज भी पूतना देर क्यों करती है ? आज भी माया-शकट नहीं आता ? आज भी अरिष्ट वायस नहीं लौटता ? आज भी गोवर्धन पर्वत नहीं उठाया जाता। आज भी दोनों अर्जुन वृक्ष नष्ट नहीं किए जाते ? केशी अश्व नहीं गरजता ? आज भी यमुना नहीं मथी जाती, आज भी कालिया नाग को नहीं नाथा जाता ? आज भी कुवलय गज की पीठ को आहत नहीं किया जाता ? आज भी मथुरा नगरी को नहीं जाया जाता ? आज भी नगाड़े का शब्द नहीं सुना जाता। चाणूर के पैर आज भी वैसे ही हैं, आज भी जरासंध की नगरी वैसी ही प्रसन्न है ?" इसी आकांक्षा (चिन्ता) के कारण बालक नहीं सोता। माँ समझती है कि वह अकारण रोता है।

---

१. अ० क० 'कण्हहो णीसा मग्गि अक्खए। णिद्दा मइए रणंगण कंखए ।।'.

घत्ता— मेहुरि अम्माहीरएण परियंदइ हलहर-णाहु।
गोवलेपहुं अवइण्णेण हउं हुइय चित्ति सणाहु ॥१॥

को केहउ परचित्तइं चोरइ।
हरि अलियउ [1]णिरारिउ घोरइ ॥
णं खयकाले महण्णव गज्जइ।
णं सुरताडिय दुंदुहि वज्जइ ॥
णं णव-पाउसेण घणु गज्जइ।
णं केसरि-किसोर ओरंजइ ॥
घोरण-सद्दें मेइणि कंपइ।
णउ सामण्णु कोवि जणु जंपइ ॥
भीय जसोय विउझणे कुप्पइ।
उट्ठि बप्प किर केत्तिउ सुप्पइ ॥
[2]कहवि विउद्धु णाहु हरिवंसहो।
ताम कहिज्जइ केणवि [3]कंसहो ॥
वड्ढइ णंदगोट्ठि [4] जो बालउ।
विक्कमु कोवि तासु असरालउ ॥
घोरण-सद्दें अंबरु फुट्टइ।
पिहि वि अभुत्ति कुक्करु छुट्टइ ॥
घत्ता कुक्कु पमाणहो रिसि वयणु गोट्ठ गणे वड्ढइ विट्ठु।
अज्जु सुमहुर[5]-णराहिवहो णं हियवइ सल्लु पइट्ठु ॥२॥

घत्ता—'अरे ओ सो जा' इस गीत के साथ माँ स्तुति करती है—हे हलधर स्वामी, तुम्हारे अवतीर्ण होने से मैं मन-ही-मन आज सनाथ हूँ ॥१॥

कौन कैसे परचित्त हो चुराता है? बालक कृष्ण झूठमूठ जोर-जोर से घुरघुर करता है, मानो क्षयकाल में समुद्र गरजता है, मानो देवताओं द्वारा बजाई गई दुंदुभि बजती है। मानो नव पावस से मेघ गरजता है, मानो सिंह का नवजात शिशु गरजता है। उस घुरघुर शब्द से धरती काँप उठती है। जनसमूह कहता है—यह सामान्य आदमी नहीं घुरघुर कर रहा है। भयभीत यशोदा बालक के जागने पर कुपित होती है—"ओ सुभट, उठो! कितना सोते हो!" तब हरिवंश के स्वामी किसी प्रकार उठे। इतने में किसी ने कंस से कहा—"नन्द के गोठ में जो बालक पाला जा रहा है, उसका कोई अत्यन्त पराक्रम है, उसके घुरघुर शब्द से आकाश विदीर्ण हो जाता है, और ऐसी धरती कठिनाई से बचती है कि जिसका उपभोग न किया गया हो।"

घत्ता—मुनि का वचन प्रमाणित हो गया। गोठ के आँगन में विष्णु बढ़ते हैं, आज मानो सुन्दर मथुरा के राजा के हृदय में शल्य प्रवेश कर गया।"

---

१. अ—णरारिउ। २. अ—कहवि उद्ध। ३. अ—संकहो। ४. अ—णंद गोट्ठे। ५. अ—समहुर।

जं उप्पण्णु ¹गोट्ठि दामोयरु ।
संकिउ महुरापुर-परमेसरु ॥
आयउ देवयाउ ²एत्थंतरि ।
सिद्धउ जाउ पुव्वजम्मंतरि ॥
जइयहुं कंसु होंतु पव्वइयउ ।
दुद्धरु घोरवीरु तउ लइयउ ॥
चंदायणु चरंतु सुहकारणु ।
मासहो मासहो एक्कसि पारणु ॥
जाणिवि³ उग्गसेणें महुरराएं ॥
भिक्ख णिवारिय पुरें अणुराएं ॥
महु जि णिहेलणे थाउ भडारउ ।
सो वि पइट्ठु⁴ अणंग-वियारउ ॥
⁵मत्त-गइंद-अग्गि-कुढारउ ।
तें भत्तहु तहो जाउ तिवारउ ॥
मासि चउत्थए जाम पइसइ ।
⁶मुच्छंते अंधार तें दीसइ ॥

घत्ता—केणवि कोहुप्पाइयउ, पत्थिवेण महारिसि मारिउ ।
आएं को अवराहु किउ, जें पुरि पइसारु णिवारियउ ॥३॥

सिद्धउ देवयाउ तहिं अवसरि ।
देह आएसु, भणंति खणंतरि ॥
वासुएव बलएव मुएप्पिणु ।

गोठ में जो दामोदर का जन्म हुआ, उससे मथुरा का राजा शंकित हो उठा। इसी बीच देवियाँ आयीं जो उसे (कंस को) पूर्वजन्म में सिद्ध हुई थीं, कि जब कंस ने संन्यास ग्रहण करते हुए अत्यन्त घोर वीर तप किया था। शुभ (पुण्य) के कारण रूप चांद्रायण तप करते हुए वह माह-माह में एक बार तप ग्रहण करता था। यह जानकर मथुरा के राजा उग्रसेन ने अनुराग के कारण, लोगों को मुनि के लिए भिक्षा देने से मना कर दिया और (उनसे) अनुरोध किया कि हे आदरणीय आप मेरे घर ही रहें। कामदेव को नष्ट करनेवाले वह मुनि नगर में प्रविष्ट हुए। लेकिन पत्र, गजराज और अग्निसंकट के कारण उन मुनि को तीन बार आहार का लाभ नहीं हो सका। चौथे माह में जब वह प्रवेश करते हैं, तो वे मूच्छित हो जाते हैं और उन्हें अन्धकार दिखाई देता है।

घत्ता—किसी ने यह कहकर राजा को क्रोध उत्पन्न कर दिया कि राजा ने महामुनि को मार डाला। इन्होंने कौन-सा अपराध किया कि जिससे उसने इनका नगर में प्रवेश रोक दिया ॥३॥

उस अवसर पर सिद्ध हुई देवियाँ, 'आदेश दो' कहती हुई पल भर में आ गयीं। बोलीं—

१. अ—गोट्ठि। २. अ—एत्थंतरे। ३. अ—जाणेवि उग्गसेण महुराएं। ४. अ—पयट्ठु।
५. अ—मत्तगइंद। ६. अ—मुच्छंत अंधयार तें दीसइ।

विज्जउ अवरु कवणु बंधेप्पिणु ॥
उग्गसेणु किं पलयहो णिज्जउ ।
किं समसुत्ती पुरे पाडिज्जउ ॥
वुच्चइ अइमुत्तेण एत्थंतरे ।
एउ [1]करिज्जहु अण्णभवंतरे ॥
अम्हइं ताउ कंस सुपसण्णउ ।
मग्गि मग्गि किं चिंतावण्णउ ॥
पभणइ [2]महुरापुरि-परिवालउ ।
वड्ढइ णंदहो [3]घरि जो बालउ ॥
तं विणिवाइयहु महु आएसें ।
पूयण धाइय धाई-वेसें ॥
सविसु पयहरु ढोइउ बालहो ।
णं अप्पाणु ढुक्कु मुहिकालहो ॥

घत्ता—सो थणु दुद्धधारधवलु हरि-वहुय-करंतरे माइयउ ।
पहिलारउ असुराहवणे णं पंचजण्णु मुहि लाइयउ ॥४॥

पूयणु [4]पण्हुवंति आयड्ढइ ।
थणुथणंतु [5]थणंधउ कड्ढइ ॥
पूयण पण्हुवंति भेसावइ ।
भद्दिउ भीमभिउडि दरिसावइ ॥
पूयण पण्हुवंति पवियंभइ ।
माहवरुहिर-पाण पारंभइ ॥
पूयण पण्हुवंति किर मारइ ।
णिट्ठुर-मुट्ठि विण्हु वइसारइ ॥

"वासुदेव और बलदेव को छोड़कर, और कौन बाँधकर दिया जाए? क्या उग्रसेन को प्रलय पहुँचाया जाए? क्या नगर में वज्र गिराया जाए?" इसी बीच मुनिवर ने कहा—"यह काम दूसरे जन्म में करना।" "हे कंस, हम वे ही देवियाँ प्रसन्न हुई हैं, माँगो माँगो! तुम चिन्ता से व्याकुल क्यों हो?" तब मथुरापुरी का परिपालन करनेवाला कहता है—"नन्द के घर में जो बालक बढ़ रहा है, मेरे आदेश से तुम उसे मार डालो।" पूतना धाय के वेश में दौड़ी। बालक को उसने विषैला स्तन दिया, मानो उसने स्वयं को काल के मुख में डाल लिया।

घत्ता—दूध की धार से धवल वह स्तन श्रीकृष्ण के दोनों हाथों में समाता हुआ ऐसा मालूम हुआ मानो असुरों के युद्ध में पहले पहल पांचजन्य मुख में रखा हो ॥४॥

पूतना पनहाती हुई घूमती है, शिशु थन-थन करते हुए स्तन को खींचता है। पनहाती हुई पूतना डराती है, भद्र कृष्ण भयंकर भौंहें दिखाता है। पनहाती हुई पूतना बढ़ती है, माधव रक्त का पान आरम्भ करते हैं। पूतना पनहाती हुई मारती है, विष्णु (कृष्ण) अपनी दृढ़ मुट्ठी मारते

१. अ—करिज्जहु। २. ब—महुरा पयवालउ। ३. ब—घरे। ४. ज—पण्हुवत्ति। ५. थणढूउ

पूयण पवरकरेंहि पडिपेल्लइ ।
डसइ जणद्दणु गाहु ण मेल्लइ ॥
पूयणपिज्जमाण आकंदइ ।
हरि धुत्तत्तणेण परियंदइ ॥
सोणिय-खीसइ[1] घाणिए मत्तउ ।
तो वि [2]पओहरु णवि परिचत्तउ ॥

घत्ता—खीरु वि रुहिरु वि पूयणहे कड्ढिउ केसवेण रउद्दें ।
णं णइमुहेण [3]वसुंधरिहे आकरिसिउ सलिलु समुद्दें ॥५॥

[4]णिसुणि सद्दु रउद्दु खयंकरु ।
णट्ठ जसोय ससज्झस समंदरु ॥
बालु ण रक्खसु चित्तु चमक्कइ ।
पूयण विरसु रसंति ण थक्कइ ॥
वासुएउ वसुएवहो णंदणु ।
हरि-उविंद-गोविंद जणद्दणु ॥
पउमणाह माहव महुसूयण ।
कंसहो तणिय विज्ज हउं पूयण ॥
गइय ण एमि, जामि म मारहि ।
थणथण-वेयण-पसरु णिवारहि ॥
मुक्क मुक्क आमेल्लिय बालें ।
तहिं गोट्ठंगणे थोवें कालें ॥
णवणवणीय-हत्थु हरि अंगणे ।
अच्छइ जाम ताम गयणंगणे ॥

है। पूतना अपने प्रवर हाथों से उसे ठेलती है, जनार्दन उसे काटता है, वह अपनी पकड़ को नहीं छोड़ता। पी (पिई) जाती हुई पूतना चिल्लाती है, कृष्ण धूर्तता से घूमते हैं, यद्यपि वह रक्त की घ्राण से मत्त हैं, तो भी उनके द्वारा पयोधर नहीं छोड़ा जाता।

घत्ता—वह कृष्ण ने पूतना का दूध भी और रक्त भी इस प्रकार खींच लिया, मानो नदी के मुख से समुद्र ने धरती का जल खींच लिया हो ॥५॥

ऊँचा और भयंकर शब्द सुनकर यशोदा भयपूर्वक अपने घर से भागी और बोली कि यह बालक नहीं राक्षस है। उसका चित्त चौंकता है। पूतना बुरी तरह चिल्लाती हुई नहीं रुकती—"हे वसुदेव के पुत्र वासुदेव, हरि उपेन्द्र गोविन्द जनार्दन पद्मनाथ माधव मधुसूदन, मैं पूतना कंस की विद्या हूँ। गई हुई नहीं आऊँगी, मैं जाती हूँ, मुझे मत मारो। स्तनों के घावों की वेदना को दूर करो।" बालक ने बड़ी कठिनाई से उसे छोड़ा। थोड़े समय बाद उसी गोठ-आंगन में, जब शिशु कृष्ण, नवनीत के समान हाथवाले हरि बैठे हुए थे, कि तभी आकाश के आँगन में

---

१. अ—खीसइ-घाणिये। २. अ—पतुहरु। ३.—वसंधुरे। ४. अ—णिसुणिय वि सद्दु रउद्दुक्कंदिरु।

आइय देवय कंसाएसें ।
सुंसुवंति वरवायसवेसें ॥

घत्ता—जाणिउ एंतु जणद्दणेण खग-मायारूव-पवंचु ।
करिवि अयंगमु घल्लियउ णिप्पीडण-तोडिय-चंचु ॥६॥

[1]कइहिं दिणेहिं णरिंदाएसें ।
आइय देवय संदण-वेसें ॥
घुरुहुरंत झप्पंतेहिं चक्केहिं ।
रविसि-संताविय चलचक्केहिं ॥
रहु सयमेव [2]अवाहणु धावइ ।
थाणहो चलिउ महीहरु णावइ ॥
[3]सोवि गोविंदें विक्कमसारें ।
भग्गु कडत्ति णियंघिपहारें ॥
अण्णहिं वासरि अइबलवंतउ ।
मायावसहु आउ गज्जंतउ ॥
चलणुच्छालिय-भूहरभयंकरु ।
वेक्कारव-वहिरिय-भुवणोयरु ॥
गयणंगण-लग्ग-सिंगग्गमणु ।
भेसाविय-असेस-गोट्ठंगणु ॥
पेक्खवि रिट्ठु सुट्ठु आरुट्ठउ ।
वलेवि कंठु किउ पाराउट्ठउ ॥

घत्ता—गीवाभंगे पदरिसिए संवाणिउ आउ विसेसें ।
वंको वलिए णीसरिवि गउ जीविउ कहवि किलेसें ॥७॥

में कंस के द्वारा प्रेषित एक देवी आयी, कौए के रूप में सूं सूं करती हुई ।

घत्ता—जनार्दन ने, खग के माया रूप प्रपंच को जान लिया । जिसकी चोंच निष्पीडन से टूट चुकी है, ऐसे उस मायावी पक्षी को अजंगम करके छोड़ दिया ॥६॥

कुछ ही दिनों में राजा के आदेश से एक देवी रथ के रूप में आयी, विस्तार में चन्द्रमा और सूर्य को पराजित करनेवाले जगमगाते चक्कों (चक्कों) से घुर-घुर करती हुई । रथ अपने आप दौड़ता है, जैसे महीधर अपने स्थान से चलित होकर दौड़ रहा हो । विक्रम में श्रेष्ठ गोविन्द ने उसे भी अपने पैरों के प्रहार से तड़तड़ तोड़ दिया । दूसरे दिन, अत्यन्त बलवान मायावी बैल गरजता हुआ आया । जो पैरों से उछाले गए पहाड़ से भयंकर है, जिसके विशाल सींग का अगला भाग आकाश के आँगन से जा लगा है, जिसने समस्त गोठ आँगन को भयभीत किया है, ऐसे उस अत्यन्त कुपित बैल को देखकर, उसकी ग्रीवा को मोड़कर उसे इस छोर से उस छोर तक मिला दिया ।

घत्ता—ग्रीवा भंग के प्रदर्शन से बैल विशेष रूप से नियंत्रित हो गया । टेढ़े मुड़ने पर उसके प्राण बड़ी कठिनाई से निकलकर जहाँ कहीं भी चले गये ॥७॥

---

१. ज—कइहिं । २. अ—आवाहणु । ३. अ—सुवि ।

अण्णहिँ दिवसि तुरंगमु [1]आइयउ ।
भग्गगीउ गओ कहवि ण घाइउ ॥
अण्णहिँ वासरि बालु थणंधउ ।
दाम गुणेण उलूहलु बद्धउ ॥
गय जसोय सरवरहो जलहिँ ।
[2]पच्छइ लग्गु जणद्दणु तावहिँ ॥
[3]एक्कें गइ विलासु परिवड्ढइ ।
अवरक्कमेण उलूहलु कड्ढइ ॥
कंसाएसेँ परबल भंजणु ।
उप्परि पडिय णवरि जमलज्जुणु ॥
तो महुसूयणेण मज्झत्थें ।
एक्केक्कउ एक्केक्कें हत्थें ॥
भग्ग करुत्ति बेवि मयणासेवि ।
रूवइं मायावियइं पयासेवि ॥
अण्णहिँ काले धूलि पहाणेहिँ ।
जलहरधारहिँ मुसलपमाणेहिँ ॥
रुद्धउ गोट्ठु आरुट्ठुजणद्दणु ।
गिरि उद्धरिउ कुद्धउ गोवद्धणु ॥

घत्ता—वड्ढिय-पुण्ण-फलोदएण दाणवेह-दलण-अवसियहें ।
विवहइं सत्त सरत्तियइं परिरक्खिउ गोउलु, कण्हें ॥८॥

अण्णहिँ वासरि णयणाणंदहो ।
देवइ हलहर गोउलणंदहो ॥
गयइं बेवि हरिवंदणलुद्धइं ।

दूसरे दिन घोड़ा आया। गर्दन नष्ट होने के कारण वह भाग खड़ा हुआ, किसी प्रकार मरा भर नहीं। दूसरे दिन, दूधपीता बच्चा रस्सी से ऊखल से बाँध दिया गया। जिस समय यशोदा तालाब के जल के लिए जाती है, उसी समय जनार्दन पीछे लग गये। एक पैर से वह अपना गतिविलास बढ़ाते हैं, और दूसरे पैर से ऊखल को खींचते हैं। कंस के आदेश से शत्रुसैन्य का नाश करनेवाले यमलार्जुन केवल उसके ऊपर गिर पड़े। तब बीच में स्थित मधुसूदन ने एक-एक को एक-एक हाथ से तड़तड़ करके नष्ट कर दिया। वे दोनों अपने मायावी रूप दिखाकर भाग गये। एक समय—जिनमें धूल और पत्थर हैं, और जो मूसल के बराबर हैं ऐसी जलधर-धाराओं ने गोठ को घेर लिया। जनार्दन क्रुद्ध हो उठे, उन्होंने दुर्धर गोवर्धन पर्वत उठा लिया।

घत्ता—जिसके पुण्यफल का उदय बढ़ रहा है, और दानवों के शरीरों को चूर-चूर करने में अवितृष्ण (असंतुष्ट है) ऐसे कृष्ण ने सात दिन-रात गोकुल की रक्षा की ॥८॥

दूसरे दिन, देवकी और बलराम दोनों, नेत्रों को आनन्द देनेवाले गोकुल के नन्द के पास

1. अ—आइउ। 2. अ—पच्छले। 3. अ—एक्कं।

जहिं गोवइं परिवड्ढिय-दुद्धइं ॥
जहिं बोल्लिज्जइ गोमलियामउ ।
[1]ढोइज्जइ सिंदूरउ दामउ ॥
जहिं गोविउ गोविंदासिहरु ।
दाविय कंचुयद्धथण-सिहरु ॥
जहिं वण्णिज्जइ जणेण जणद्दणु ।
एत्थु पलोट्टिउ मायासंदणु ॥
पूयण एंतु एत्थु पडिच्छिय ।
वायसविज्ज एत्थु णियच्छिय ॥
एत्थु रिट्ठु सतुरंगमु मद्दिउ ।
एत्थु उलूखलु कड्ढइ भद्दिउ ॥
एत्थु भग्गु जमलज्जुण बालें ।
गिरि उद्धारिउ एत्थु भुअडालें ॥

घत्ता—तं गोट्ठंगणु देवइए, लक्खिज्जइ सुन्दरु चंगउ ।
अवसें होसइ महग्घयरु, णारायण सियहें-णिसण्णउ ॥१॥

वासुएव[2] वसुएवघरिणिए ।
कलहु करेणु विट्ठु णं करिणिए ॥
पीयलवासु महाघण-सम्मउ ।
[3]सिरकमल ट्ठिय-कुवलयदम्मउ ॥
कावि गोवि तहो [4]पच्छइ लग्गी ।
थक्कु कण्ह पइं मंथणी भग्गी ॥
जइ ण महारउ दुक्कहि पंगणु ।

वहाँ गये, जहाँ दूध का संवर्धन करनेवाले गोपति थे; और जहाँ गायों के झुण्ड और मृग बोल रहे थे। जहाँ सिन्दूर और रस्सियाँ ढोयी जा रही थीं, जहाँ गोविन्द की पीड़ा को दूर करनेवाली, और कंचुकी से अपना आधे स्तन के शिखर भाग को दिखानेवाली गोपियाँ थीं। जनों के द्वारा जहाँ जनार्दन का इस प्रकार वर्णन किया जाता है कि यहाँ उन्होंने मायावी रथ को उलटाया, यहाँ आती हुई पूतना की प्रतीक्षा की। यहाँ वायसविद्या को पीड़ित किया। यहाँ अश्व सहित अरिष्ट वृषभ का मर्दन किया। यहाँ भद्र (कृष्ण) ऊखल खींचते रहे, यहाँ शिशु ने यमलार्जुन को भग्न किया। यहाँ कृष्ण ने अपनी बाहु रूपी डाल से गोवर्धन पर्वत उठाया।

घत्ता—देवकी को गोठ प्रांगण अत्यन्त सुन्दर दिखाई दिया। (उसे लगा कि) नारायण की श्री में रहनेवाला अवश्य ही मूल्यवान सिद्ध होगा ॥१॥

वसुदेव की गृहणी देवकी ने वासुदेव (कृष्ण) को इस प्रकार देखा मानो हथिनी ने हाथी के बच्चे को देखा हो। पीले वस्त्र वाले वह महामेघ की तरह श्याम हैं, और सिर पर कमलमाल स्थित है। कोई गोपी उनके पीछे पड़ गई—"हे कृष्ण तुमने मेरी मथानी तोड़ी है, तुम तब तक

१. अ, ब—'लइ सिन्दूरउ ढोइहि दामउ'। २. अ—वासुएउ। ३. अ—सिरि कमल-ट्ठिय-कुवलयदामउ। ४. अ—पच्छा।

एक्कसि जइ ण देहि आलिंगणु ॥
कावि गोवि सयवारउ घोसइ ।
णंदहो तणिय आण तउ होसइ ॥
जइ एक्कु वि पउ देहि परंमुहु ।
एक्कवार जोयहि सवडंमुहु ॥
कावि गोवि ¹रसरंग-पसत्ती ।
हरितणु कंतिहे लिहिक्कवि थक्की ॥
एम णियंति कीलंतहो बालहो ।
धणरिद्धि व मिलिय सुकालहो ॥

घत्ता— पुत्त-समागमे देवइहे थणु पण्हुउ कहिं मि ण माइ ।
लहु अहिसित्तु पयोहरेहिं विहि मेहेहिं महिहरु णाइ ॥१०॥

तो ²अवहत्थु करिवि संखेवें ।
खीरहडेण सित्तु बलएवें ॥
वासह-वसहु भणेवि पगासिय ।
जिह भउ होइ ण कंसहो पासिय ॥
अंचेवि पुज्जेवि वंदिवि गोवइ ।
गय णियभवणु पडीवी देवइ ॥
महुराहिउ तहिं काले बुक्कउ ।
पेक्खहु बालु भणंतु पढुक्कउ ॥
जइ जसोय कहिमि हरि लेप्पिणु ।
पाणिग्गहण-पघोस करेप्पिणु ॥
तहिंवि दुवालिए विणु ण पवसइ ।

वहीं ठहरो कि जब तक तुम मेरे आँगन में नहीं पहुँचते और मुझे आलिंगन नहीं देते।" कोई गोपी सौ बार घोषित करती है—"तुम्हें नंद की शपथ है यदि विमुख होकर तुम एक भी कदम रखते हो, एक बार मुँह सामने करके देखो।" रस क्रीड़ा से प्रदीप्त कोई गोपी कृष्ण के शरीर की कांति में छिपकर बैठ गई। क्रीड़ा करते हुए बालक कृष्ण को देवकी इस प्रकार देखती है जैसे सुकाल को धन-ऋद्धि मिल गई हो।

घत्ता—पुत्र के संगम के कारण देवकी का दूध झरता स्तन कहीं भी नहीं समाता। (देवकी के) पयोधरों से श्रीकृष्ण [विधि] उसी प्रकार अभिषिक्त हुए जिस प्रकार महीधर मेघों से अभिषिक्त होता है।

तब शीघ्र ही उसे [देवकी को] हटाकर बलदेव ने दूध के घड़े से उसका अभिषेक किया, और उन्हें 'इन्द्रश्रेष्ठ' कहकर प्रकाशित किया कि जिससे उन्हें कंस से भय न हो। गोपति (कृष्ण) की अर्चना पूजा और वंदना कर, देवकी वापस अपने घर पर गयीं। उस अवसर पर मथुरा का राजा गरजा और 'बालक को देखो' यह कहता हुआ वहाँ पहुँचा। यशोदा श्रीकृष्ण को लेकर और विवाह की घोषणा कर कहीं(दूर) चली गयी। वहाँ भी बालक ऊखल के बिना प्रवृत्ति

१. अ, ब, स,—रससंग। २. अ—अवहित्थु।

सिलसंघाउ सिलोवरि घत्तइ ॥
[1]हरि-चरेहिँ कहिज्जइ कंसहो।
सच्चउ होइ णाहु हरिवंसहो ॥
कावि अपुव्व भंगि तहो केरी।
दुक्करु, छुट्टइ वसुमइ तेरी ॥

घत्ता—महुरापुर-परमेसरहो भउ वड्ढइ धीरु ण थाइ।
हरिबलगुण-करवत्तेहिँ कप्पिज्जइ हियवउ णाइ ॥११॥

दुज्जसमसि-मइलिय-णियवंसें।
घोसण पुरि देवाविय कंसें ॥
विज्जाहरेण सुकित्तणगामें।
णिम्मिय-णिरवसेस-संगामें ॥
मेहमहोहर-णिच्चल चित्तें।
सच्चहामवरइत्त-णिमित्तें ॥
रहणेउरणयरहो पट्ठवियइं।
रयणइं तिण्णि एत्थु चिर ठवियइं ॥
तहिं जो [2]णायसेज्ज आयामइ।
पूरइ पंचयण्णु धणु णामइ ॥
अद्धरज्जु तहो देमि णिरुत्तओ।
हय-गय-रयण-दुहिय-संजुत्तओ ॥
तो सेज्जहिँ [3]णिसण्णु गरुडासणु।
पूरिउ संखु चडाविउ सरासणु ॥

घत्ता—णामइ करि सारंगु किउ दाहिणेण संखु मुहि ढोइयउ।
[1]विसहर-सेज्जे समारुहिवि रिउ णाइं कयंतें जोइयउ ॥१२॥

नहीं करता, वह शिला के ऊपर शिलाओं का समूह स्थापित करता है। दूतों ने जाकर कंस से कहा, "सचमुच श्रीकृष्ण हरिवंश के स्वामी होंगे। उनकी कोई अपूर्व ही भंगिमा है। अब बड़ा कठिन काम है, तुम्हारी धरती हाथ से जाएगी।"

घत्ता—मथुरा नगरी के परमेश्वर कंस के मन में डर है, उसके मन में धीरज स्थिर नहीं रहता। जैसे वासुदेव और बलराम के गुणरूपी करौंत से उसका हृदय काट दिया गया हो ॥११॥

जिसने अपयशरूपी काली स्याही से अपने वंश को कलंकित कर लिया है, ऐसे कंस ने नगर में घोषणा करायी—"सत्यभामा के वर के निमित्त से, रथनूपुर नगर से भेजे गए तीन रत्न यहाँ बहुत समय से रखे हुए हैं। वहाँ जो नागशय्या पर सोता है, शंख बजाता है और धनुष चढ़ाता है निश्चय से मैं उसे अश्व, गज, रत्न और कन्या से युक्त आधा राज्य दूँगा।" तब श्रीकृष्ण नागशय्या पर जा बैठे, उन्होंने शंख फूंक दिया और धनुष चढ़ा दिया।

घत्ता—कालिया नाग काल के समान काला है, मैं उसके पास जाती हूँ, वह मुझे खाए; नाव किनारे लग जाए और सबका नाश न हो ॥१३॥

---

१. अ—हरेवि चरेहिं। २. अ—णागसेज्ज। ३. अ—णिवण्णु।

कंसहो कज्जु परिट्ठिउ भारिउ ।
सज्झसु मणे उप्पण्णु णिरारिउ ॥
कहिय वेग्गि गोट्ठंगणणाहहो ।
[1]जउण-महावहहो अगाहहो ॥
पंकगोउ लहु कमलइं आणहि ।
णं तो जिंत कज्जु जं जाणहि ॥
तहिं अवसरि परिवड्ढिय सोयहो ।
णिवडिय णं गिरिवज्ज-[2]जसोयहो ॥
एक्कु पुत्तु महु अब्भुद्धरणउ ।
तासु वि कंस समिच्छइ मरणउ ॥
होंतु मणोरह महुरारायहो ।
वरि अप्पाणु समप्पिउं णायहो ॥
मइं जीवंतए काइं हतासए ।
भूमिहे णाइं सिल-संकासए ॥
अहवइ जइ गउ णंद सणंदणु ।
तो महु धुउ अपुत्तणु रंडत्तणु ॥

घत्ता—कालिउ कालउ कालसमु मइं साहु जामि तहो पासु ।
लग्गउ लडि बोहित्थउड मा सव्वहो होहि विणासु ॥१३॥

तो [4]वल्लहजण-णयणाणंदें ।
णिय पिययम-मब्भीसिय णंदें ॥
धीरी होइ कंत किं रोवहि ।
मा णिक्कारणे अप्पउ [5]सोयहि ॥
वरु परिरक्खणु करि गोविंदहो ।

घत्ता—बाएँ हाथ में धनुष ले लिया, और दाहिने हाथ से शंख बजा दिया। नागशय्या पर बैठकर शत्रु को इस प्रकार देखा जैसे यम ने देखा हो ॥१२॥

कंस का काम भारी हो गया, उसके मन में अत्यधिक भय उत्पन्न हो गया। गोठ प्रांगण के स्वामी नन्द को घेर कर उसने कहा—"हे नन्दगोप, अगाध यमुना सरोवर से कमलों को लाओ, नहीं जैसा ठीक जानो वैसा सोच लो।" उस अवसर पर, जिसका शोक बढ़ रहा है ऐसी यशोदा के सिर पर जैसे गिरिवज्र गिर पड़ा। मेरा उद्धार करने वाला एक ही पुत्र है, कंस उसी की मृत्यु चाहता है, मथुराराज का मनोरथ पूरा हो, अच्छा है मैं स्वयं को नाग के लिए अर्पित कर दूं। हताश मेरे जीने से क्या? चट्टान की तरह, मैं इस धरती के लिए केवल भार स्वरूप हूं। अथवा यदि नन्द पुत्र के साथ जाते हैं तो निश्चय से मैं पुत्रविहीन और विधवा हो जाऊंगी।

तब प्रियजनों के नेत्रों को आनन्द देनेवाले नन्द ने अपनी पत्नी को अभय वचन दिया—"हे कांते, तुम धैर्य रखो, रोती क्यों हो, अकारण अपने को सोच में मत डालो, अच्छा है तुम

१. अ—विसहरभया समाहहिवि। २. अ—जउणावालाहियहो अगाहहो। ३. अ—जसोयहिं। ४. अ—वल्लवजण।

हउं जामि तहो पासु फणिवहो ।।
जिम पेरासणभारु पराणिउ ।
जेम समउ तिम सो सम्माणउ ।।
एम भणेवि, पउ देवि ण जामहिं ।
महुमहेण वि वारिउ तामहिं ।।
अच्छहिं ताय ताव णिच्चिंतउ ।
एहु भरु महु खंधोवरि घित्तउ ।।
जेहिं थिय बालमहागह कीलिवि ।
पूयणधरिय जेहिं आवीलिवि ।।
वायस-चंचु जेहिं रणे तोडिय ।
णिहउ रिट्ठु जमलज्जुण मोडिय ।।

घत्ता—गिरिगोवद्धणु उद्धरिउ सत्ताणिहउ जेहिं पयंडेहिं ।
पेक्खु भुयंगमु णच्चियंतु धुवं तेहिं भुयदंडेहिं ।।१४।।

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलयासिय-सयंभूएवकए गोविंदबालकीलाणामो
णायव्वो पंचमो सग्गो ।।५।।

गोविंद की रक्षा करो, उस नागराज के पास मैं जाऊँगा। जिस प्रकार कमलों का भार आया है, जिस प्रकार का समय है, उसका उसी प्रकार सम्मान करो।" यह कहकर, जब तक नन्द पैर नहीं दे पाये, कि तभी श्रीकृष्ण ने उन्हें मना किया—"हे तात, आप निश्चित रहिए, वह भार मेरे कंधों पर डाल दिया गया है। जिन से बालक महाग्रहों को कीलित करके स्थित था, जिन से उसने पूतना को पीड़ित कर पकड़ लिया, जिन हाथों से उसने कौए की चोंच तोड़ी, अरिष्ट को मार दिया और यमलार्जुन को मोड़ दिया।"

घत्ता—जिन प्रचंड हाथों से सात दिन तक गोवर्धन उठाया, उन्हीं मेरे हाथों से कालिया नाग को नाचते हुए देखो ।।१४।।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव कवि द्वारा विरचित गोविंद-बाललीला
नाम का पाँचवाँ सर्ग जानना चाहिए।

---

१. अ—सोवहिं।

छट्ठो सग्गो

सिरिरामालिंगिय वच्छयलु पइज्ज करेप्पिणु णीसरइ ।
कमलायरे कमलग्गिमित्तें जउणामहादहे पइसरइ ॥

मुसुमूरिय-मायासंदणेण ।
लक्खिज्जइ जउणा जणद्दणेण ॥
अलिवलय-जलय-कुवलय-सवण्ण ।
रवि-भइएण णं णिसितलि णिसण्ण ॥
णं वसुहवरंगण-रोमराइ ।
णं वड्ढमयण कडिल्लि वि राइ ॥
इंदणीलमणि-भरियखाणि ।
णं कालियाहि-अहिमाण-हाणि ॥
तहिं कालि णिहालिवि आय सव्व ।
गामीण-गोव जायव सगव्व ॥
थिय भावणदेवि धरित्तिमग्गे ।
जोइज्जइ साहसु सुरेहिं सग्गे ॥
आलोडिउ दणुतणुमद्दणेण ।
जउणादहु देवइ-णंदणेण ॥
संखोहिय जलयरु जलु वि सव्वु[1] ।
णीसरिउ सप्पु पसरिउ [2]रउद्दु ॥

जिनका वक्षस्थल लक्ष्मीरूपी रमणी से आलिंगित है ऐसे कृष्ण प्रतिज्ञा करके कमलों के लिए यमुना महादह सरोवर में प्रविष्ट होते हैं।

मायावी रथ को चकनाचूर कर देनेवाले जनार्दन ने भ्रमर समूह, जलद और नीलकमल के समान रंगवाली यमुना नदी को इस प्रकार देखा मानो सूर्य के डर के कारण निशातल पर बैठी हुई हो, मानो वसुधारूपी वरांगना की रोमराजि हो, मानो दग्ध कामदेव की करधनी शोभित हो, मानो इन्द्रनील मणियों से भरी हुई खान हो, मानो कालिया नाग के अभिमान की हानि हो। उस अवसर पर, ग्रामीण गोप और यादव सभी लोग गर्व के साथ देखने आये। भवनवासिनी देवी धरती के मार्ग पर स्थित हो गयी। स्वर्ग में देवगण तथा विद्याधर राजा देखने लगे। दानवों के शरीरों को चकना-चूर करनेवाले देवकी के पुत्र ने यमुना सरोवर को आलोडित कर दिया। भयंकर साँप निकला और फैल गया।

---

१. अ—विसद्दु । २. अ—मरट्टु ।

घत्ता—केसउ कालिउ कालिंदिजलु तिण्णिवि मिलियइं कालाइं ।
अंधारी हूयउ सव्वु काइं णियंतु णिहालाइं ॥१॥

उद्धाइउ विसहरु विसमलीलु ।
कलिकाल कयंत-रउद्दसीलु ॥
कालिन्दीपमाण-पसारियंगु ।
[1]विवरीयच्चलिय-जल-चल-तरंगु ॥
विप्फुरिय फणामणि किरणजालु ।
फुक्कार-भरिय-भुवणंतरालु ॥
मुहकुहर-मरुद्धुय-गिरिवरिंदु ।
णयणग्गि-मुलुक्किय-अमरविंदु ॥
विसदूसिय-जउण-जल-पवाहु ।
अवगण्णिय-पंकयणाह-णाहु ॥
दप्पुद्धरु उद्ध-फणालि-चंडु ।
णं सरिय पसारिउ बाहुदंडु ॥
उप्पण्णउ पण्णउ [2]अज्ज कोवि ।
पहरिज्जहि णाह णिसंक होवि ॥
तो विसम विसुग्गारुग्गमेण ।
हरि वेढिउ उरि उरयंगमेण ॥

घत्ता—जउणादहे एक्कु मुहुत्तु केसव सलिल कील करइ ।
रयणायरे मंदरु णाइ [3]विसहर-वेढिउ संचरइ ॥२॥

णियकंतिए असुर-परायणेण ।

घत्ता—केशव, कालियानाग और कालिंदीजल तीनों काले मिल गए, सब कुछ अंधकारमय हो गया। ऐसे हुओं को देखने से क्या ? ॥१॥

विषम स्वभाव वाला वह विषधर दौड़ पड़ा। वह कलिकाल और कृतांत के समान रुद्र स्वभाव का था, प्रसरित अंगों वाला वह यमुना का प्रमाण-स्वरूप था। जिससे जल की चंचल तरंगें विपरीत दिशा में बह रही हैं, जिसके फणामणि पर किरण समूह चमक रहा है, जिसके फूत्कार से भुवन का अंतराल भर जाता है, जिसके मुखरूपी कुहर की हवा से पर्वतराज उड़ जाता है, जिसके नेत्रों की आग में अमर समूह ध्वस्त हो जाता है, जिसके विष से यमुना का जल-प्रवाह दूषित है, जिसने कमलनाभ स्वामी की उपेक्षा की है, जो दर्प से उद्धत है, जिसने प्रचंड फनों की आवली उठा रखी है जो ऐसी मालूम होती है कि मानो सरिता ने अपना बाहुदंड फैला लिया है, ऐसा कोई सर्प आज उत्पन्न हुआ है। हे स्वामी, आप निश्चित होकर उस पर प्रहार कीजिए। तब जिससे विष का उद्गार उत्पन्न हो रहा है, ऐसे नागराज ने हरि को घेर लिया।

घत्ता—यमुना के महासरोवर में केशव एक पल के लिए क्रीड़ा करते हैं, मानो समुद्र में विषधरों से घिरा हुआ मंदराचल चल रहा है ॥२॥

अपने तेज से असुरों को पराजित करनेवाले नारायण को कालिय नाग दिखाई नहीं दिया।

1. अ—विवरीयचलिय जलचर तरंगु। 2. अ—अज्जु। 3. अ—विसहतेहिउ संचरइ।

कालिउ ण विट्ठु णारायणेण ।।
उप्पण्ण भंति मउ णाउ णाउ ।
विप्फुरिउ ताम फणिमणि-णिहाउ[1] ।।
उज्जोएं जाणिउ परमचारु ।
को गुणेहिं ण पाविउ बंधणारु ।।
तो समरसहासहिं दुम्महेण[2] ।
भुयदंडु पसारिउ महुमहेण ।।
पंचंगुलि पंच णहुज्जलंग ।
णं फुरिय फणामणि-वर भुयंग ।।
तहो तेहिं धरिज्जइ फणकडप्पु ।
णउ णायइ को कर कवणु सप्पु ।।
लक्खिज्जइ णवरवि-उग्गमेण ।
उज्जलउ लइउ सिरि-संगमेण ।।
विहुडप्फड-फणि झडप्प देइ ।
गारुडियहो विसहरु किं करेइ ।।
घत्ता-- णत्थेप्पिणु [3]महुमहणें कालिउ णहयले भामिउ ।
भीसावणु कंसहो णाइं काल दंड उग्गामिउ ।। ३ ।।
मणि किरण-करालिय-महीहरेहिं ।
विसहर-सिर-सिहर-सिलायलेहिं ।।
णियवत्थइं कियइं समुज्जलाइं ।
पिंजरियइं जउणमहाजलाइं ।।
तहिं ण्हाउ णाउ णं गिल्लगंडु ।

भ्रांति उत्पन्न हो गयी. नाग ज्ञात नहीं हो सका। इतने में नाग के फण के मणियों का समूह चमका। उसके प्रकाश से साँप को जाना जा सका। गुणों के कारण कौन बन्धन को प्राप्त नहीं होता ? तब हजारों युद्धों में दुर्दम श्रीकृष्ण ने अपना बाहुदण्ड फैलाया जो पाँचों अंगुलियों के पाँचों नखों से उज्ज्वल अंगवाला था और ऐसा लगता था जैसे चमकते हुए फणमणियों वाला श्रेष्ठ साँप हो। उन उंगलियों से साँप के फनसमूह को पकड़ लिया गया। यह मालूम नहीं हो सका कि उनमें कौन हाथ है और कौन साँप। नवसूर्य के उदय होने पर ही यह जाना जा सका कि लक्ष्मी का संगम करनेवाले (श्रीकृष्ण) ने उज्ज्वल साँप को पकड़ लिया है। विह्वल साँप आक्रमण करता है, लेकिन गारुड़ी का साँप क्या कर सकता है ?

घत्ता—श्रीकृष्ण ने कालिय नाग को नाथकर आकाशतल में इस प्रकार घुमा दिया, जैसे कंस के लिए उन्होंने भयंकर कालदण्ड उठाया हो ।।३।।

मणिकिरणों से महीधरों को भयंकर बना देनेवाले विषधरों के सिर रूपी शिखर-शिलातलों पर श्रीकृष्ण ने अपने वस्त्र समुज्ज्वल किये। यमुना का महान जल पीला हो गया। उस सरोवर में उन्होंने स्नान किया, जैसे गीले गंडस्थल वाला हाथी हो। फिर उन्होंने स्वर्णकमल समूह को

---

1. अ—फणिमणिहाउ। 2. अ—समरसहासहिं दुम्मुहेण। 3. अ—महुमहणेण।

पुणु सोहिउ कंचणकमलसंडु ।।
विक्खिवउ भारुप्परि विहाइ ।
बीयउ गोवद्धणु धरिउ णाइ ।।
णीसरिउ जणद्दणु दणुविमद्दि[1] ।
णं महणे समत्तए मंदरद्दि[2] ।।
तडिभाए पडिच्छिउ हलहरेण ।
णं विज्जु पुंजु सियजलहरेण ।।
गोवुहहं समप्पे वि आयरेण ।
सब्भावें भायरु भायरेण ।।

घत्ता—बलएवं अहिमुहु संतु हरि अवरुंडिउ तहि समए ।
सियपक्खें तामस-पक्खु णाइं णहंतरे पडिवए ।।४।।

दामोयर-हलहर [3]आयया वि ।
गय णंदहो गोउल [4]पेक्खणो वि ।।
गोवुहेहिं ताम णेवावियाइं ।
महुराहिवघरे घल्लावियाइं ।।
चरणाहिं विट्ठाइं पंकयाइं ।
णं पुंजीकयाइं महाभयाइं ।।
विच्छिण्णइं अण्णइं पविरलाइं ।
णं णहसिरि-पयइं सुकोमलाइं ।।
रिउ-दुज्जउ एत्थु ण काइं भंति ।
महं मारइ केण वि णउ धरंति ।।
चिंतेव्वउ तासु उवाउ को वि ।
जइ दुक्केवि सक्कइ कहवि को वि ।।
अच्छइ हियवइ दुक्खंति सल्लु ।

तोड़ा। बाँधा हुआ भार उनके ऊपर ऐसा दिखाई देता है जैसे उन्होंने दूसरा गोवर्धन उठा लिया हो। दानवों का विमर्दन करनेवाले जनार्दन इस प्रकार निकले, जिस प्रकार समुद्र का मंथन होने पर मंदराचल हो। बलभद्र ने किनारे पर उस कमल भार को इस प्रकार देखा, जैसे श्वेत मेघ ने बिजली के समूह को देखा हो। आदरपूर्वक ग्वालों को उन्हें सौंपकर सद्भावपूर्वक—

घत्ता—भाई बलदेव ने अभिमुख किए हुए भाई का उस अवसर पर आलिंगन किया, जैसे प्रतिपदा के दिन आकाश के मध्य शुक्लपक्ष ने कृष्णपक्ष का आलिंगन किया हो।

श्रीकृष्ण और बलभद्र और यादव भी नन्द का गोकुल देखने के लिए गये। इतने में ग्वालों के द्वारा ले जाए गये और मथुरा के राजा के घर बिखेरे गये कमलों को नरनाथ ने इस प्रकार देखा मानो महान भयों को इकट्ठा कर दिया गया हो। बड़े-बड़े कमल बिखेर दिए गये, मानो आकाशरूपी लक्ष्मी के सुकोमल पद हों। (उसने सोचा) कि शत्रु दुर्जेय है, इसमें कोई भ्रांति नहीं

---

१. अ, ब—विमद्दु । २. अ, ब—मंदरवुडु । ३. अ, ब—जायवि वि । ४. अ—पेक्खया वि ।

तं फेडइ अइवि पर एक्कु मल्लु ॥
जासु तणइं चलण तियसहं असज्झु ।
जें दिट्ठें णासइ सो अवज्झु ॥

घत्ता—हक्कारिवि सो चाणूर अवरु धणुद्धरु मुट्ठियउ ।
लक्खिज्जइ राहु विसण्णु धूमकेउ णं णहि ट्ठियउ ॥५॥

तो महुरापुरे परमेसरेण ।
बोल्लाविय बेवि कियायरेण ॥
परिवालहु जइ जाणहु कयाइं ।
जइ पहु-पसाय-रिणु हियइ थाइ ॥
तो वयणु महारउ करहु सज्जु ।
मा तुम्हेहिं हुंतेहिं हरउ रज्जु ॥
बलवंतउ दीसइ णंदजाउ ।
अण्णु सीराउहु तहो सहाउ ॥
सो पइं हणेव्वउ मुट्ठिएण ।
बलएउ बलुद्धरु मुट्ठिएण ॥
[1]धुरंधरहं तेहिं रणि दुद्धराहं ।
हक्कारा गय हरिहलहराहं ॥
संचल्लिय बलपवल-महल्ल ।
दणु-उप्परि-मल्लेक्केक्कमल्ल ॥
वडमालालंकिय-उत्तमंग ।
भूभूसियभूरिभुआभुयंग ॥

है। वह मुझे मारेगा, देवता भी मुझे नहीं बचा सकते। तब भी इसका उपाय सोचना चाहिए जिससे कोई किसी प्रकार उस तक पहुँच सके। यह शल्य उसके हृदय को कष्ट देती है। यद्यपि उसे केवल एक मल्ल तोड़ सकता है, जिसके पैर देवताओं के लिए भी असाध्य हैं, जिसके देखने पर वह अवध्य अवश्य मारा जाएगा।

घत्ता—तब चाणूर और दूसरे धनुर्धारी योद्धा को बुलाकर देखा। वे ऐसे दिखाई देते थे जैसे आकाश में राहु और धूमकेतु स्थित हों ॥५॥

तब जिसका आदर किया गया है ऐसे परमेश्वर (कंस) ने उन दोनों (मल्लों) को मथुरा में बुलवाया और कहा—"परिपालन करो, यदि तुम लोग किए हुए को जानते हो, यदि स्वामी के प्रसाद का ऋण हृदय में है तो आज तुम हमारा कहा पूरा करो। तुम्हारे रहते हुए (शत्रु) राज्य का अपहरण न करे। नन्द का पुत्र बलवान् दिखाई देता है। और फिर बलभद्र उसका सहायक है, तुम्हें उसे मुष्टि (प्रहार) से मार डालना चाहिए। मुष्टिक द्वारा बलभद्र का बल छीन लिया जाए।" तब युद्ध में दुर्धर और धुरन्धर हरि-हलधर को बुलाया गया। उत्तम बल से महान् वे महामल्ल चले जो दानवों के ऊपर एक-से-एक महान् मल्ल हैं, जिनके सिर मुरेठ (वटमाला) से अलंकृत हैं, जो भौंहों और समर्थ भुजाओं से विभूषित हैं।

1. अ—धुरधरिय तेहिं रणे दुद्धराहं।

घत्ता—णिसुणिज्जइ महुरहिं तूर गोविहिं रहसुच्छाइयहिं ।
णं कंसहो घरि कुवार हरिबलएवहिं आइयहिं ॥६॥

तो रोहिणिदेवइ-तणुरुहेहिं ।
अवरेहिं मि मिलिएहिं गोउलेहिं ॥
लक्खिज्जइ धोबु धोवमाणु ।
कियवत्थावट्ठरयावसाणु ॥
संकरिसणु कहइ जणद्दणासु ।
दुद्दम-दणुदेह-विमद्दणासु ॥
एहु हणइ कप्पडइं सिलहिं जेम ।
किर [1]देवइ-जायइं कंसु तेम ॥
तं वयणु सुणेवि महुसूयणेण ।
जमपंगण-पाविय-पूयणेण ॥
ससयडजमलज्जुण-मोडणेण ।
कालियसिर-सेहर-तोडणेण ॥
उत्थंभिय-गिरि-गोवद्धणेण ।
वसुएव-वंस-संवद्धणेण ॥
परिहाण-सयाइं लेवावियाइं ।
णं मंड मंड रिउजीवियाइं ॥

घत्ता—बलएवें सामलु वासलु कण्हें कणयसमुज्जलउ ।
णं कड्ढिउ कंसहो पित्तु वीसइ कालउ पीयलउ ॥७॥

सिरिकुलहर-हलहर चलिय बेवि ।
गामीणगोवकियमल्ल लेवि ॥

घत्ता—हर्ष से उछलती हुई गोपियों के द्वारा मधुर नगाड़ा सुना जाता है मानो हरि और हलधर के आने से कंस के घर गुहार (पुकार) मच गई हो ॥६॥

तब रोहिणी और देवकी के पुत्रों (बलभद्र और कृष्ण) और दूसरे मिले हुए ग्वालों के द्वारा वस्त्र धोता हुआ धोबी देखा गया जो वस्त्रों में लगी धूल हटा रहा था। बलभद्र, दुर्दम दानवों की देह का दलन करनेवाले जनार्दन (श्रीकृष्ण) से कहते हैं कि यह (धोबी) जिस प्रकार शिला पर वस्त्रों को पछाड़ता है, उसी प्रकार पहले देवकी के पुत्रों को कंस ने पछाड़ा।" यह वचन सुनकर पूतना को यम के प्रांगण में भेजनेवाले; शकट सहित यमलार्जुन को मोड़नेवाले, कालिया नाग के सिरशेखर को तोड़नेवाले, गोवर्धन पर्वत को ऊँचा उठानेवाले, वसुदेव के वंश को बढ़ानेवाले श्रीकृष्ण ने सैकड़ों वस्त्र ले लिये; मानो बलपूर्वक उन्होंने शत्रु के प्राण ले लिये हों।

घत्ता—बलभद्र ने श्याम वस्त्र और कृष्ण ने सोने के समान उज्ज्वल वस्त्र खींच लिया, जो मानो कंस से निकाले गए काले-पीले पित्त के समान जान पड़ता था ॥७॥

श्रीकृष्ण और हलधर दोनों चल पड़े। जो ग्रामीण मल्लगोप थे उनको भी ले लिया। वे स्थूल

1. अ, ब—देवइजाएं।

थिरथोरमहाभुयवियडवच्छ ।
णाणाविह णिबद्ध सिचय-कच्छ ॥
लायण्ण-महाजलभरिय-भुयण ।
मुह-ससहरकर-पंडुरिय-गयण ॥
चलचलणुच्छालिय-अचलवीढ ।
दामोयर-उर-सिर-पसर-लीढ ॥
अप्फोडण-रव बहिरिय दियंत ।
कंसोवरि गय णं बहु कयंत ॥
सयलंघि णिहालिय तेहिं [1]ताव ।
मंथरसंचार महाणुभाव ॥
सव्वालंकार-विहूसियंग ।
लक्खहलणि कावि अउव्वभंग ॥
णियणाहहो किर मंडणउ णेइ ।
णारायण भायणु मंडु लेइ ॥

घत्ता—उद्दालिवि महुमहणेण गोवहं दिण्णु पसाहणउ ।
णं लइउ विहंजेवि तेहिं जीविउ चाणूरहो तणउ ॥८॥

थोवंतरि दिट्ठु महागइंदु ।
अणवरय-गलिय-मय सलिलबिंदु ॥
विसमासणि-सणि-सय-सम रउद्दु ।
मय-सरि परिवड्ढाविय समुद्दु ॥
गल्ल-गिल्ल-झल्लरि बहिरियासु ।
परिमल मेल्लाविय-अलि-सहासु ॥

महाबाहु थे और मानो विशालवृक्ष वाले नाना प्रकार के जलाशयों के तट से निर्मित कच्छा बाँधे हुए, सौंदर्य के महाजल से विश्व को आपूरित करनेवाले थे। मुखचन्द्र की किरणों से जिन्होंने आकाश को धवल कर दिया था। जो पैरों से अचल पीठ को उछालने वाले हैं, जिन्होंने दामोदर के वक्ष और सिर का प्रसार ग्रहण किया है, और आस्फालन के शब्द से दिशाओं को बहरा बना दिया है ऐसे वे कंस के ऊपर (की ओर) गये मानो बहुत से यम हों। इतने में उन्होंने एक दासी को देखा जो धीरे-धीरे चलनेवाली और उदार आशयवाली थी। उसका शरीर सब प्रकार के अलंकारों से विभूषित था, उसकी सौन्दर्य-भंगिमा अपूर्व थी। वह अपने स्वामी के लिए प्रसाधन-सामग्री लेकर जा रही थी।

घत्ता—मधुसूदन ने वह प्रसाधन छीनकर ग्वालों को दे दिया, मानो चाणूर के प्राणों को विभक्त करके उन्होंने ले लिया हो ॥८॥

थोड़े अन्तर पर महागज दिखाई दिया, जिससे अनवरत मदजल की बूँदें झर रही थीं, जो विषम वज्र और सैकड़ों शनियों के समान रौद्र था, मद रूपी सरिता को वृद्धिगत करने के लिए मानो समुद्र था। भीतर से उमड़ते हुए मद से गण्डस्थल गीला हो रहा था और बाहर की झालर पर उन्मुक्त सौरभ (गंध) पर हजारों भ्रमण मँडरा रहे थे। उसके दाँत काले लोहे के

---

१. अ—ताम।

कसणायस-वलय-णिबद्धदंतु ।
थिउ मग्ग णिरुंभेवि जिम कयंतु ॥
दढमुट्ठिए हउ णारायणेण ।
कवलिज्जइ जाम ण वारणेण ॥
परिभमिउ चउदिसु पीयवासु ।
णं विज्जपुंज णवजलहरासु ॥
खेल्लाविवि किउ णिप्फंदु हत्थि ।
णउ णज्जइ जीविउ अत्थि णत्थि ॥
करु तोडिउ मोडिउ एक्कु दंतु ।
गउ दप्प-पणासिउ दलघुलंतु ॥

घत्ता—तं आयस वलय-णिबद्धु करि-विसाणु हरिणा करि किउ ।
सिसु-कसण-भुवंगम रुद्धु केयइ-कुसुमे णाइं थिउ ॥६॥

हरि-हलहर सहुं गोवहिं पइट्ठु ।
पडिमल्लेहिं णं जमलोह दिट्ठु ॥
सयल वि भड-उब्भड-भिउडि-भीस ।
सयल वि वडमाला-बद्धसीस ॥
सयल वि आवीलिय बद्धकच्छ ।
सयल वि कोवारुण-दारुणच्छ ॥
सयल वि विसहर-विसमसील ।
सयल वि कलिकाल कयंत लील ॥
सयल वि णारायण-सम सरीर ।
सयल वि सुरगिरिवर-गरुयधीर ॥
सयल वि हरिविक्कम-सारभूय ।

वलय से बँधे हुए थे और यम की भाँति रास्ता रोककर स्थित था। श्रीकृष्ण ने मजबूत मुष्टि से उसे आहत कर दिया। और जबतक गज द्वारा ग्रसित होते, कि उससे पहले ही पीतवस्त्रधारी श्रीकृष्ण उसके चारों ओर घूम गये, मानो नए मेघसमूह के चारों ओर विद्युत्समूह हो। श्रीकृष्ण ने खेल खिलाकर हाथी को जड़ कर दिया, यह नहीं ज्ञात हुआ कि उसमें जीव है या नहीं। उसकी सूँड़ तोड़ दी और एक दाँत तोड़ दिया। जिसका दर्प नष्ट हो गया, ऐसा हाथी दम तोड़ता हुआ भाग गया।

घत्ता—लोह-वलय (जंजीर) से बँधे हुए उस हाथी के दाँत को श्रीकृष्ण ने हाथ में ले लिया। उनके हाथ में वह ऐसा लगता था जैसे केतकी के कुसुम में अवरुद्ध शिशुनाग हो ॥६॥

ग्वालों के साथ हरि और बलराम प्रविष्ट हुए। शत्रुमल्लों ने उन्हें यमयोद्धाओं की तरह देखा। सभी योद्धा उद्भट और भौंहों से भयंकर थे। सभी ने अपने सिरों पर वटमालाएँ (मुरेठा, पगड़ी ?) बाँध रखी थीं। सभी ने कसकर कच्छे बाँध रखे थे। सभी क्रोध से लाल और भयंकर आँखोंवाले थे। सभी विषधरों के समान विषम स्वभाववाले थे। सभी कलि-काल और यम की तरह आचरण करनेवाले थे। सभी नारायण के समान शरीरवाले थे। सभी सुमेरु पर्वत की तरह भारी और धैर्यवाले थे। सभी सिंह के पराक्रम के समान श्रेष्ठ थे। सभी शत्रु-बलसमूह के

सयल वि खलबलकुल-कालभूय ॥
सयल वि थिर-थोर-कठोर हत्थ ।
सयल वि रणभर-कड्ढण-समत्थ ॥
सयल वि सिरिरामालिंगियंग ।
सयल वि पयभर-सारिय तुरंग ॥

घत्ता—अप्फोडिउ सत्थेंहि तेहिं सव्वेंहि पुणु ओरालिउ ।
णिय जीविउ कालहो हत्थि वइरिहिं णाइं णिहालिउ ॥१०॥

ओसारिय सयल वि सइं णिविट्ठ ।
[1]अक्खाडइ हरि-हलहर पइट्ठ ॥
ते विण्णि वि धवल असामलदेह ।
णं सोहिय सावण-सरय-मेह ॥
णं अंजणपव्वय हिमगिरिंद ।
णं जमवस-महिस महामइंद ॥
णं जउणा-गंगाणइ-पवाह ।
णं लक्खण-राम पलंबबाह ॥
णं इंदणील-रविकंतकूड ।
णं विसहर-तक्खय-संखचूड ॥
णं असिय-पक्ख सिय-पक्ख आय ।
तं पुणु (सोहिय ?) पडिवारा ते जि भाय ॥
कंदोट्ट कमलकूडाणुमाण ।
जणलोयणालि चुंबिज्जमाण ॥
चल्लंते चल्लइ सयलभूमि ।
थक्कंते थक्कइ तेहिं विहिं मि ॥

लिए काल के समान थे, सभी स्थिर स्थूल और कठोर हाथवाले थे, सभी युद्ध का भार खींचने में समर्थ थे। सभी लक्ष्मी रूपी रमणी के द्वारा आलिंगित-शरीर थे। सभी अपने पदभार से अश्वों को हटाने (संचालित करने) वाले थे।

घत्ता– शत्रुओं ने उन सबके द्वारा शस्त्रों को आहत तथा गर्जित अपने जीवन को काल के हाथ में स्थित के समान देखा। ॥१०॥

हटाए गये वे सब स्वयं बैठ गये। हरि और हलधर ने अखाड़े में प्रवेश किया। धवल और श्याम शरीरवाले वे दोनों ऐसे प्रतीत होते थे, मानो सावन और शरद के मेघ शोभित हों, मानो अंजनगिरि और हिमगिरि हों, मानो यममहिष और महासिंह हों, मानो यमुना और गंगा के प्रवाह हों, मानो लम्बे बाहुवाले राम-लक्ष्मण हों, मानो नीलमणि और सूर्यकान्त मणियों के शिखर हों, मानो तक्षक और शंखचूड़ महानाग हों, मानो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष आये हों और प्रतिदिन दोनों शोभित हों। वे दोनों नीलकमलों और कमलों के ढेर के समान थे, जिन्हें जनों के नेत्ररूप भ्रमर चूम रहे थे। उनके चलने पर धरती हिल जाती थी, उन के ठहरने पर वह भी ठहर जाती थी।

१. अ—अक्खालइ।

घत्ता—जेत्तहे परिसक्कइ कण्हु जहिँ बलएउ बलुद्धरउ।
तेत्तहे तणुतेएं होउ रंगु वि कालउ पंडुरउ ॥११॥

वप्पुद्धर दुद्धर एत्तहे वि।
चट्ठिय मुट्ठिय चाणूर बे वि ॥
णं णिग्गय विग्गय गिल्लगंड।
णं सासहों कंसहों बाहुदंड ॥
अप्फोडिउ सरहसु सावलेउ।
रणु मग्गिउ वग्गिउ ण किउ खेउ ॥
जसतण्हहों कण्हहों एक्कु मुक्कु।
उद्दामहों रामहों अवरु ढुक्कु ॥
सुभयंकर हउ करकत्तरीहिँ।
णीसरणेहिँ करणेहिँ भामरीहिँ ॥
कर-छोडेहिँ गाहेहिँ पीडणेहिँ।
अवरेहिँ अणेयहिँ कीडणेहिँ ॥
ताम दुव्वार संकरिसणेण।
केसेहिँ धरेप्पिणु दुद्दरिसेण ॥
खर-णहर-भयंकर-पहरणेण।
णं वारणु वारणवारणेण ॥

घत्ता—हेलए जि समाहउ सीसि मुट्ठिपहारें मुट्ठियउ।
किउ मासहो पोट्टलु सव्वु जममुहे पडिउ ण उट्ठियउ ॥१२॥

चाणूरें चिंतिउ लइ उवाउ।
वहुँ खयउ अच्छउ सो जिणाउ ॥
बोल्लंति ताम णहें देवियाउ।
कहिँ तणउ जुज्झु कहिँ तण(उ) उवाउ ॥

घत्ता—जहाँ कृष्ण जाते और बल से उद्धत बलदेव जाते, वहाँ पर उनके शरीर के तेज से रंग भी काले का सफेद और सफेद का काला हो जाता ॥११॥

यहाँ दर्प से उद्धत और दुर्धर मुष्टिक और चाणूर दोनों इस प्रकार उठे, मानो आर्द्र गंडस्थलवाले दिग्गज निकले हों, मानो शासक कंस के बाहुदण्ड हों। कृष्ण ने आस्फालन किया और हर्ष तथा अहंकार के साथ युद्ध माँगा, और बिना किसी विलम्ब के वह गरजे। यश के लोभी कृष्ण के लिए एक मल्ल छोड़ा गया तथा दूसरा उद्दाम बलभद्र के पास पहुँचा। बलराम ने कैंची निकालना, दाँव लेना, चक्कर खाना, हाथ से चोटें मारना, पकड़ना, पीड़ना आदि क्रियाओं तथा दूसरी अनेक क्रीड़ाओं के द्वारा, दुर्दर्शनीय तीव्र नखों के दुर्निवार भयंकर प्रहार से पेट का भेदन कर दिया। जिस प्रकार सिंह हाथी को आहत कर देता है, उसी प्रकार—

घत्ता—सिर पर मुट्ठी के प्रहार से आहत कर मुष्टिक को खेल-खेल में ढेर कर दिया, उसे मांस की पोटली बना दिया, वह यम के मुँह में जा पड़ा और फिर नहीं उठा ॥१२॥

उस समय चाणूर ने उपाय सोचा कि उस श्रेष्ठ का वध करना चाहिए। इतने में आकाश में देवियाँ बोलती हैं—कहाँ का युद्ध, कहाँ का उपाय, कहाँ की मथुरा और कहाँ का राज्य ? इतने

कहिँ तणय महुर कहिँ तणउ रज्जु ।
एत्तिएं कालेण ण किउ कज्जु ॥
उहु णंदगोट्ठि अवइण्णु विट्ठु ।
जिह पूयण चूरिय णिहउ रिट्ठु ॥
जिह मुक्कणु संदणु वर-तुरंगु ।
दरिसिउ जमलज्जुण-रुक्ख-भंगु ॥
गिरि धरिउ णायसेज्जहिँ णिसण्णु ।
धणु णामिउ पूरिउ [1]पंचजण्णु ॥
अहि णत्थिउ मत्थिउ भद्दहत्थि ।
[2]एत्तिए वि कंसहो बुद्धि णत्थि ॥
चाणूर ताम णारायणेण ।
आयामिउ असुर-परायणेण ॥

घत्ता—विउणारउ करिवि सरीरु रिउ जम-पट्टणे पट्टाविउ ।
उच्चाइवि कंसहो णाइ णिय-पयाउ दरिसाविउ ॥१३॥

तो तेण वि कड्ढिउ मंडलग्गु ।
आलाण-खंभु णं गयेण भग्गु ॥
णं दरिसिउ काले कालपासु ।
णं जलहरेण विज्जुल-विलासु ॥
णारायणु आहउ असिवरेण ।
णं मंदरु वेढिउ विसहरेण ॥
तउ अवउ णाइं थिउ वलिवि खग्गु ।
दामोयर-रोमग्गु वि ण भग्गु ॥
जीवंजसवल्लहु रायहंसु ।
अवलोकिउ चिउरहं लेवि कंसु ॥

समय में उपाय नहीं किया ? नन्दगोठ में वह विष्णु उत्पन्न हो गया। जिस प्रकार उसने पूतना को चूर-चूर किया, रिष्ट नामक दैत्य का नाश किया, जिस प्रकार उसने कौए, रथ और श्रेष्ठ अश्व को नष्ट किया, तथा यमलार्जुन वृक्ष का विनाश दिखाया, पहाड़ को उठाया, नागशैया पर बैठा, धनुष चढ़ाया और शंख को फूंका, साँप को नाथा और भद्र हस्ति को मथा। इतने पर भी कंस को बुद्धि नहीं आयी। इसी बीच तब तक असुरों को पराजित करनेवाले नारायण ने चाणूर को घुमा दिया।

घत्ता—शरीर को निष्प्राण करके उसे यमनगर में प्रेषित कर दिया, मानो कंस के [प्रताप] को उठाकर उन्होंने अपना प्रताप दिखाया ॥१३॥

तब कंस ने भी अपनी तलवार निकाल ली, मानो हाथी ने आलान-खम्भ उखाड़ लिया हो, मानो काल ने कालपाश का प्रदर्शन किया हो, मानो मेघ-समूह ने विद्युत्-विलास किया हो। उसने असिवर से नारायण को आहत किया, मानो विषधरों ने मंदराचल को घेर लिया। उस अवसर पर खड्ग अविकार भाव से मुड़कर स्थित हो गया, श्रीकृष्ण के बाल का अग्रभाग भी

1. अ—पंचण्णु। 2. अ—एत्तियहंमि।

पेक्खन्तहं सयलहं णरवराहं ।
सीमंतहं मंतिहं किंकराहं ॥
पउरहो पट्टणहो महायणासु ।
सविमाणहो णहयले सुरयणासु ॥
जिह देवइ जायइं जेत्तवार ।
अप्फोडिउ णरवइ तेत्तवार ॥

घत्ता—जं जेहउ दिण्णउ आसि तं तेहउ जि समावडइ ।
किं वहवए कोद्दवधण्णे सालिकणहलु णिप्फडइ ॥१४॥

सो कण्हु कंस-कड्ढण करेवि ।
थिउ सरसु गयवरु तरु धरेवि ॥
संकरिसणु सेलिय-खंभहत्थु ।
किउ वइरिसेण्णु सयलु वि णिरत्थु ॥
हक्कारिउ णरवइ उग्गसेणु ।
तहो महुर समप्पइ कामधेणु ॥
अप्पणु पुणु गउ देवइहें पासु ।
संभासिउ सयलु सहावासु ॥
कोक्काविय णंद-जसोय आय ।
अवरोप्परु कुसलाकुसलि जाय ॥
तहिं काले सुकेउं ण किउ खेउ ।
णियसुय परिणाविउ वासुएउ ॥
विज्जाहरणामें सच्चहाम ।
एत्तहि रेवइ रामाहिराम ॥
हलहरहो दिण्ण णिय माउलेण ।
रोहिणि भायरेण अणाउलेण ॥

बांका नहीं हुआ। राजश्रेष्ठ और जीवंजसा के प्रिय कंस को बालों से पकड़कर कृष्ण ने पछाड़ दिया। समस्त नरवरों, सामंतों, मन्त्रियों और अनुचरों के देखते-देखते, पौर नगर के महाजनों और आकाशतल में विमानसहित सुरजनों के देखते-देखते नारायण ने कंस को उतनी ही बार पछाड़ा, जितनी बार कंस ने देवकी के पुत्रों को पहले पछाड़ा था।

घत्ता—जो [पूर्व में] जिस प्रकार दिया हुआ है, वह वैसा ही आ पड़ता है। क्या कोदों के बोने पर उसके फलस्वरूप शालिधान के कण उत्पन्न हो सकते हैं ॥१४॥

कंस का कर्तनकर, वृक्ष लेकर, तथा जिनके हाथ में पत्थर का खंभा है, ऐसे श्रीकृष्ण गजवर पर बैठ गए। उन्होंने समस्त शत्रुसेना को निरस्त्र कर दिया। उन्होंने राजा उग्रसेन को बुलाया, उन्हें कामधेनु के समान मथुरा नगरी सौंप दी। वह स्वयं देवकी के पास गये। सभी साथ रहने वालों से संभाषण किया। बुलाए गये नन्द और यशोदा आये। एक-दूसरे से कुशलवार्ता हुई। उस अवसर पर सुकेतु ने जरा भी देर नहीं की और विद्याधर ने वासुदेव से सत्यभामा नाम की अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इधर रमणियों में सुन्दर रेवती, बलराम को उनके ससुर और रोहिणी के भाई ने बिना किसी आकुलता के प्रदान कर दी।

घत्ता—करे रेवइ धरिय बलेण सच्चहाम णारायणेण ।
थिय रज्जु सयं भुंजंत सउरीपुरे सहुं परियणेण ॥

इय रिट्ठणेमिचरिए, धवलइयासिय-सयंभूएवकए,
चाणूर-कंस-कालियमद्दण-णामेण
छट्ठो सग्गो ॥६॥

घत्ता—बलराम ने हाथ से रेवती को ग्रहण किया और नारायण ने सत्यभामा को। इस प्रकार वे दोनों अपने परिजनों के साथ शौरीपुर में स्वयं राज्य का भोग करते हुए रहने लगे।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव कवि द्वारा कृत अरिष्टनेमिचरित में
चाणूर, कंस और कालियमथन नाम का छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

सत्तमो सग्गो

विणिवाइए कंसे दूसह दुक्ख-परव्वसए ।
जरसंधहो गंपि धाहाविउ जीवंजसए ॥छ॥
जीवंजसा कंस-विओय हय ।
जणणहों जरसंधहो पास गय ॥
दुक्खाउर दुम्मण दुम्मणिय ।
बहुलंसु-जलोल्लिय-लोयणिय ॥
विणिबद्ध वेणी बद्धामरिस ।
कर पल्लव-छाइय-थणकलस ॥
हयसोह वि सोहइ रूववइ ।
णियगइ-णीणाविय-हंसगइ ॥
णहकिरण करालिय-सयल दिस ।
मुहयंद-पाय-पंडुरिय णिस ॥
करणहवह-दप्पण-दिट्ठमुह ।
मुहकमलो हामिय अंबुरुह ॥
अंबुरुह-समप्पह-णयणजुय ।
णव-कोमल-कुसुम-दामभुय ॥
णं णवतरु अहिणव-साहुलिय ।
करपल्लव णह-कुसुमावलिय ॥

कंस के धराशायी होने पर असह्य दुःख के वशीभूत होकर जीवंजसा जरासंध के पास जाकर विलाप करने लगी। कंस से वियुक्त जीवंजसा पिता जरासंध के पास गयी। दुःख से आतुर, उदास, दुर्मन, उद्विग्न, प्रचुर आँसुओं के जल से गीली आँखोंवाली, वेणी बाँधे हुए, क्रोध से भरी हुई, कर-पल्लवों से स्तन-कलशों को ढँकती हुई रूपवती जीवंजसा आहत शोभा होकर भी शोभित थी। उसने अपनी चाल से हंस की गति को फीका कर दिया था। उसके नख की किरणों से सभी दिशाएँ आलोकित थीं। मुखरूपी चन्द्रमा की किरणों से निशा धवलित हो रही थी। नखों के सरोवर रूपी दर्पण में अपना मुख देखती हुई, मुखकमल से कमलों को पराजित करनेवाली, कमल की प्रभा के समान नेत्रोंवाली, नये कोमल फूलों की माला के समान बाहुओं-वाली वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो अभिनव शाखाओं वाला नव तरु हो; जो करपल्लव के नखों की कुसुमावलि वाला था।

घत्ता—परित्तायहि ताय महुराहिवेण मरंतएण।
हउं एह अवत्थ पाविय पइं जीवंतएण ॥१॥

मगहाहिवेण तहे वाइयउ।
कहि केण कंस विणिवाइउ ॥
कहि केण कयंतु णिहालियउ।
कें सुरवइ सग्गहो टालियउ ॥
उप्पायउ जमहो केण मरणु।
किउ केण महोरय-विसहरणु ॥
कें पक्ख समुक्खय खगवइहे।
अवहरिउ केण हरि भगवइहे ॥
णिय-वइयरु ताए तासु कहिउ।
पर-जणण-विणासु एक्कु रहिउ ॥
तो विण्ण समरभर कंधरेण।
पालिय तिय-खंड-मंडियधरेण ॥
पट्ठिलारउ पुत्तु [1]कालजवणु।
पट्ठविय ससाहणु मणगमणु ॥
अब्भिडिउ गंपि सो जायवहं।
जिह अहिणव दवग्गि पायवहं ॥

घत्ता—पहिलारए जुज्झे रणरउ कहि मि ण माइयउ।
णं बलइं गिलेवि सुरहं पडीवउ धाइयउ ॥२॥

दोण्ह वि बलाहं किय कलयलाहं।

घत्ता—वह पिता से बोली—"हे तात ! रक्षा कीजिए। मथुरा के राजा के मरने से तुम्हारे जीते जी मेरी यह अवस्था हुई ॥१॥

मगधराज ने उससे कहा—"बताओ, किसने कंस को मारा ? कहो, किसने यम को देखा ? किसने इन्द्र को स्वर्ग से हटा दिया ? किसने यम की मृत्यु की ? महोरग के विष का नाश किसने किया ? गरुड़ के पंखों को किसने उखाड़ा ? भगवती के सिंह का अपहरण किसने किया ?" तब उस जीवंजसा ने अपना वृतान्त उससे कहा कि एक केवल पिता का विनाश बाकी रहा है। तब जिसने युद्ध के भार में अपना कंधा दिया है तथा तीन खण्ड धरती का परिपालन किया है, ऐसे जरासंध ने मन की भाँति गमन करनेवाले कालयवन नामक पहले पुत्र को सेना के साथ भेजा। वह जाकर यादवों से भिड़ गया, उसी प्रकार जिस प्रकार अभिनव दावानल वृक्षों से।

घत्ता—पहले युद्ध में युद्ध की धूल कहीं नहीं समा सकी, मानो सेनाओं को निगलकर वह उल्टी देवों के ऊपर दौड़ी ॥२॥

जो कलकल कर रही हैं, अत्यधिक मत्सर से भरी हुई हैं, जो देवों से मिली हुई हैं, जो

१. अ, ब और ज प्रतियों में 'कालदसणु' पाठ है, आचार्य जिनसेन के हरिवंशपुराण में 'कालयवन' पाठ है।

बहु मच्छराहं मिलियामराहं ॥
सियचामराहं धुयधयवडाहं ।
चप्पुब्भडाहं वाहियरहाहं ॥
गुरुविग्गहाहं सुभयंकराहं ।
पहरणकराहं तुट्ठच्छराहं ॥
आभिट्टु जुज्झु कत्थवि णिरुद्धु ।
कत्थवि णरेहिं पहिरउ सरेहिं ॥
कत्थवि हएहिं खग्गा हएहिं ।
णिउ सामि सालु अणंतरालु ॥
कत्थवि सिवाए भडु लइउ पाए ।
सिरु णवेवि थाइं पिउ पियए णाइं ॥
भडभडेहिं परोप्परु ताम हय सत्तारहं वासर जाम गय ॥

घत्ता—रणु करेप्पिणु रउद्दु परबलु जिणिवि ण सक्कियउ ।
गउ वलेवि कुमारु हत्थि व सीहहो संकियउ ॥३॥

सो कालजवणु घरु आइयउ ।
विहुणउ कहवि ण घाइयउ ॥
बलु-परबलु-पहरणु जज्जरिउ ।
णं फणिउलु गरुड-घायभरिउ ॥
णं गिरिसमूहु-कुलिसाहयउ ।
णं हरिणजूहु हरिभय गयउ ॥
उप्पण्णु कोहु तं पत्थिवहो ।
भारहवरिसद्ध-णराहिवहो ॥
पट्ठवियइं सव्वइं साहणाइं ।

श्वेत चामरोंवाली हैं, जिनके ध्वजपट उड़ रहे हैं, जो दर्प से उद्भट हैं, जिन्होंने रथों का संचालन किया है, जो विशाल आकारवाले हैं, जो अत्यन्त भयंकर हैं, जिनके हाथों में अस्त्र हैं, जिन्होंने अप्सराओं को सन्तुष्ट किया है, ऐसी दोनों सेनाओं में कहीं युद्ध प्रारम्भ हो गया, और कहीं पथ रुद्ध हो गया। कहीं पर योद्धाओं ने तीरों से प्रहार किया, कहीं पर खड्गों से आहत किया। अश्वों के द्वारा स्वामीश्रेष्ठ दूसरे के स्थान पर ले जाया गया। कहीं पर सियारन ने योद्धा को पैर से ले लिया, सिर झुकाकर वह ऐसी हो गयी, जैसे प्रिया प्रिय के सामने स्थित हो। योद्धाओं से योद्धा आपस में तब तक लड़ते रहे, जब तक सत्तरह दिन बीत गये।

घत्ता—भयंकर युद्ध करके भी कुमार शत्रुसेना को नहीं जीत सका। जिस प्रकार हाथी सिंह से शंकित होकर चल देता है, उसी प्रकार कुमार वापस चला गया ॥३॥

एकदम म्लान, और किसी प्रकार मारा भर नहीं गया वह कालयवन शत्रुसैन्य से जर्जर, जैसे गरुड़ के आघातों से भरा हुआ नागकुल हो, जैसे वज्र से आहत पर्वत हो, जैसे सिंह से भयभीत मृगों का झुण्ड हो, जब घर आया तो भारतवर्ष का अर्ध-चक्रवर्ती राजा जरासंध आग-बबूला हो उठा। उसने समस्त सेनाएँ भेज दीं, जिनमें नाना प्रकार के वाहन चलाए जा रहे थे

णाणाविह वाहिय-वाहणाइं ॥
पूरिय-संखवहूह य धयवडइं ।
अप्फालिय-तूर-रथ-उक्कडइं ॥
आऊरियइं जलयर-संघडइं ।
विहडप्फड उब्भड-भडथडइं ॥
णिक्खोह-भरिय-संकड भडाइं ।
उम्मग्गलग्ग हयगयरहाइं ॥

घत्ता—जरसंधहो सेण्ण सरहसु कहिं मि ण माइयउ ।
लंघेवि पायारु दिसिअवदिसिहिं धाइयउ ॥५॥

एक्कोयरु भायरु णियसमु ।
दुद्धर रणभर-धुर-धरणक्खमु ॥
आसण्ण-मरण-भय-वज्जियउ ।
सेणावइ करिवि विसज्जियउ ॥
अवराइउ धाइउ अतुल बलु ।
णं मेहु गयणे मेल्लंतु जलु ॥
एत्तहे वि जणद्दणु सण्णहिउ ।
दस-दसारुह जरकुमार सहिउ ॥
सव्वउ सीराउह-परियरियउ ।
अवरेहि भडेहि अलंकरियउ ॥
उत्थरियइं पसरिय-कलयलइं ।
नारायण जरसंधहो वलइं ॥
पहरण-जज्जरिय-णहंगणइं ।
कोवग्गि-झुलुक्किय-सुरगणइं ॥
उद्धाइय धूलीधूसरइं ।
रुहिरोहारुणिय-वसुधरइं ॥

प्रखरपवन से पताकाएँ उड़ रही थीं, जो बजाए गए नगाड़ों के शब्द से उत्कट थीं। शंखों का समूह फूंक दिया गया, उद्भट भटों के समूह विकल हो उठे, गंभीर योद्धा क्षोभ से भर उठे। अश्व, गज और रथ उन्मार्ग से जा लगे।

घत्ता—हर्ष से भरी हुई जरासंध की सेना कहीं भी नहीं समा सकी। परकोटों को लाँघकर वह दिशाओं-विदिशाओं में फैल गयी ॥५॥

अपने ही सहोदर (भाई) को जरासंध ने सेनापति बनाकर भेजा, जो दुर्धर युद्ध-भार को उठाने में सक्षम, और आसन्नमृत्यु के भय से दूर था। अतुलबल अपराजित इस तरह दौड़ा, मानो आकाश में जल छोड़ता हुआ मेघ हो। यहाँ भी श्रीकृष्ण दस दशार्ह और जरत्कुमार के साथ तैयार हुए, बलभद्र के साथ, तथा दूसरे योद्धाओं से अलंकृत। जिनमें कलकल बढ़ रहा है, श्रीकृष्ण और जरासंध की ऐसी सेनाएँ उछल पड़ीं। हथियारों से आकाश के आँगन को जर्जर कर देनेवालीं, क्रोध की ज्वाला से देवांगनाओं को झुलसाती हुईं, और धूल से धूसरित वे रक्त की धाराओं से धरती को रँगती हुईं दौड़ चलीं।

घत्ता—रउ णहिं महिवट्टे रुहिरु, णं जाणहुं कवणु गुणु।
अकुलीण जे उट्ठहु होइ कुलीण तें खलु वि पुणु ॥५॥

[1]उट्ठंतसूराइं वज्जंत तूराइं।
जुज्झंत सेण्णाइं रणवहु णिसण्णाइं ॥
जय लच्छि लुद्धाइं उहयकुल-सुद्धाइं।
पहरण वि हत्थाइं जयसिरि-समत्थाइं ॥
कोवग्गि वित्ताइं रुहिरेहिं सित्ताइं।
हम्मंति तुरियाइं णिवडंति तुरियाइं ॥
भज्जंति सयडाइं जुज्झंति सुहडाइं।
णिग्गंति अंताइं भज्जंति गत्ताइं ॥
लोट्टंति चिंधाइं तुट्टंति छत्ताइं।
वेयाल-भूयाइं विसयाण भूयाइं ॥
अण्णोण्ण-दुव्वार मुक्केक्क हुंकार।
पहरंति पाइक्क णिग्गंति मत्थक्क ॥
जज्जरिय उरबाहु विक्खिण्ण सण्णाहु।

घत्ता—कत्थइ गय-जुज्झ दसण-कसग्गि समुट्ठियउ।
दीसइ घणमज्झे विज्जु-विलासु णाइं ठिउ ॥६॥

दारुणहं रणहं एवं गयइं।
छव्वालीस जाव तिण्णि-सयइं ॥

घत्ता—आकाश में धूल और धरती के भाग में रुधिर (उठ रहा है) न जाने क्या बात है कि अकुलीन (धरती में नहीं होनेवाला, अप्रतिष्ठित] जब उठता है तो वह कुलीन (धरती में लीन, प्रतिष्ठित] हो जाता है, दुष्ट भी ऐसा ही होता है।

शूर उठते हैं, नगाड़े बजते हैं, रण-वधू जिनके निकट है, ऐसी सेनाएँ युद्ध करती हैं जो विजय-रूपी लक्ष्मी की लोभी उभय कुलों से शुद्ध हैं, जो हाथ में हथियार लिये हुए हैं, विजयलक्ष्मी प्राप्त करने में समर्थ हैं, क्रोध की ज्वाला से प्रदीप्त हैं, रक्त से सिंचित हैं। जो तेजी से प्रहार करती हैं। अश्व गिरते हैं, शकट नष्ट होते हैं, सुभट लड़ते हैं, आँतें निकलती हैं, शरीर भग्न होते हैं, ध्वजा-चिह्न लोटपोट होते हैं, छत्र टूटते हैं। वैताल और भूत बैलों पर सवार हैं, जो एक दूसरे के लिए दुर्निवार हैं, एक दूसरे पर हुंकार करते हैं। पैदल सैनिक आक्रमण करते हैं, मस्तक गिरते हैं, वक्ष-स्थल और बाहु जर्जर होते हैं, कवच बिखरते हैं।

घत्ता—कहीं गज के युद्ध में दाँतों से आग उठती है जो ऐसी मालूम होती है जैसे मेघों के बीच विद्युत्-विलास हो ॥६॥

इस प्रकार भयंकर युद्ध करते हुए तीन सौ छियालीस दिन बीत गए। जिसका हाथ धनुष

1. "उट्ठंत सूराइं। वज्जंत तूराइं। जुज्झंत सेण्णइं। रण वहु णिसण्णइं।" 'ज' प्रति में ये पंक्तियाँ नहीं हैं।

सो ससर सरासण पसर कर ।
जरसंध बंधु दुद्धर-रिस-धरु ॥
परिभमइ महाहवे एक्करहु ।
थिउ रासिहे णाइ कूरगहु ॥
उच्छलइ फुरइ पहरणइं जहिं ।
गयघोड-थट्ट फुट्टंति तहिं ॥
रहु कडयडंति मोडंति धय ।
छत्तइं पडंति विहडंति हय ।
णियबलु संभासेवि एक्कु जणु ।
सामरिसु ससंदणु ससरु सधणु ॥
तहो जरकुमारु तहिं अंति भिडिउ ।
णं गयहो गइंदु समावडिउ ॥
ते वेवि बलुद्धर-दुद्धरिस ।
पारद्धु जुज्झु बद्धामरिस ॥

घत्ता—विंधंतेहिं तेहिं बाणणिरंतरु गयणु किउ ।
सभुवंगमु सव्वु उप्परि णं पायालु थिउ ॥७॥

सो [1]रणमुहि दिण्ण-महाहवेण ।
जरसंधहो बंधुर बंधवेण ॥
हयगयवररहु सयखंडु णिउ ।
धय पाडिउ सारहि विहलु किउ ॥
कह कहवि कुमारु ण घाइयउ ।
तहिं अवसरि सच्चइ धाइयउ ॥

और तीर पर फैला हुआ है तथा जो दुर्धर्ष ईर्ष्या धारण करनेवाला है, जरासंध का वह भाई अकेला ही रथ पर बैठकर उस महायुद्ध में परिभ्रमण करता है। वह ऐसा लगता है मानो कोई क्रूर ग्रह स्थित हो। जहाँ वह हथियारों को उछालता और चमकाता है, वहाँ हाथियों की घटाएँ नष्ट हो जाती हैं, रथ कड़कड़ा कर टूट जाते हैं और ध्वज मुड़ जाते हैं, छत्र गिर पड़ते हैं, अश्व विघटित हो जाते हैं। तब अपनी सेना से संभाषण कर, अमर्ष से भरा हुआ जरत्कुमार रथ, तीर और धनुष के साथ अकेला वहाँ अन्ततः भिड़ जाता है, जैसे महागज पर महागज आ पड़ा हो। वे दोनों ही बल से उद्धत और दुर्धर्ष हैं। अमर्ष को बाँधनेवाले उसने युद्ध प्रारम्भ किया।

घत्ता—वेधते हुए उसने आकाश को लगातार आच्छादित कर दिया, जिससे सभी भुजंगम पाताल से निकल ऊपर आ गये मानो पाताल ऊपर स्थित हो गया हो ॥७॥

तब युद्ध प्रारम्भ होने पर महायुद्ध करनेवाले जरासंध के बंधु-बांधव ने अश्व, गज और श्रेष्ठ रथ के सौ टुकड़े कर दिये। ध्वज फाड़ दिया, और सारथि को विफल कर दिया। किसी प्रकार केवल कुमार को आहत नहीं किया। उस अवसर पर सात्यिकी दौड़ा। अत्यन्त असहनीय वे दोनों आपस में भिड़ गये। प्रवर रथों को उन्होंने प्रेरित किया। वे दौड़ पड़े। शिनिसुत का धनुष

1. रणउहि।

ते भिडिय परोप्परु कुद्धिसह ।
संचोइय, धाइय, पवररह ॥
सिणिसुअ सरासणु ताडियउ ।
सुरकरिहि विसाणु णं पाडियउ ॥
धणु लइउ अवर सरु विच्छियउ ।
वसुएएं ताम पडिच्छियउ ॥
तुम्हेहि आसि संगाम कियउ ।
रोहिणि पाणिग्गहे को ण जिउ ॥
एवहि सो जि हउं सो जि तुहुं रहु ।
सो धणुद्धरु सो जि बाण-णिवहु ॥

घत्ता— पच्चारइ जाम ताम सिलीमुहेहि लइउ ।
पाडिउ सण्णाहु को ण णट्ठु लोहत्थियउ ॥८॥

हक्कारिउ ताम हलाउहेण ।
बलएएं जयसिरि-लुद्धएण ॥
छुडु रहु धाहि धाहि सवडंमुहु ।
पउ अइ ण देहि पच्छाउहउ ॥
पच्चारइ जाम-ताम भिडियउ ।
णं गिरिदहि दवग्गि समावडिउ ॥
आयरंति विण्णि वि वारणेहि ।
मोहणत्थ-आकरिसणेहि ॥
णहयल जज्जरिउ वसुंधर वि ।
बिहिए कुविए एक्कु सज्झु णवि ॥
बिहि एक्कु वि ण एक्कु अक्कमइ ।
बिहि एक्कु वि ण एक्कहो सरइ ॥
बिहिए कुविए एक्कु ण समइ ।

ताडित होकर ऐसे गिरा मानो ऐरावत का दाँत गिरा हो। उसने दूसरा धनुष ले लिया और उसपर तीर चढ़ाया। तब वसुदेव ने उसे फटकारा—"तुम लोगों के द्वारा संग्राम किया जा चुका है। रोहिणी के पाणिग्रहण में कौन नहीं जीता गया? इस समय वही मैं हूँ और वही तुम, और वही रथ है, वही धनुर्धारी और वही बाण-समूह है।

घत्ता—इस प्रकार जबतक वसुदेव ने ललकारा, तब तक उन्हें तीरों से ढक दिया गया। कवच गिर पड़ा, लोहार्थी (लोभ और लोहे का अर्थी) कौन नाश को प्राप्त नहीं होता ॥८॥

तब विजय-लक्ष्मी के लोभी हलधर श्री बलराम "शीघ्र रथ सामने हाँको, यदि तुम मुख पीछे कर पग नहीं देते हो, इस प्रकार जब तक ललकारते हैं तब तक वह सामने भिड़ गया। मानो गिरीन्द्र पर दावाग्नि गिर पड़ी हो। वे दोनों वारण मोहनास्त्र और आकर्षण-अस्त्र से व्यापार करने लगे। आकाशतल और धरती दोनों क्षत-विक्षत हो उठे। दोनों के कुपित होने पर एक भी साध्य नहीं था। दोनों में एक भी आक्रमण नहीं कर सका। दोनों में से एक भी नहीं हटता।

विहिए कुविए एक्कु ण अक्कमइ ॥
तहिं काले अणंतें अंतरिउ ।
अरिउर सिर खुरुप्पें कप्परिउ ॥

घत्ता—अवरेहिं मि सरेहिं कमकरसिरइं णट्ठियइं ।
कलहंसें णाइं कोमलकमलइं खुट्ठियइं ॥६॥

जरसंधबंधु [1]परिणट्ठु रणे ।
[2]आसंक जाय जायवहं मणे ॥
लहु णासहो मंतिलोउ चवइ ।
आयण्णइ ण जाम चक्कवइ ॥
जइ कहवि पत्तु, तो कोवि णवि ।
दसरुह णउ हरि-हलधर वि णवि ॥
णवि णंदु ण गोट्ठु ण गोवियणु ।
पइसरहु गंपि परिविउल वणु ॥
तं सव्वहु हियवए वयणु थिउ ।
अवक्कए पुरणिग्गमणु किउ ॥
अट्ठारहकुल-कोडिहिं सहिया ।
सिरि कुलहर हलहर णिग्विहिया ॥
एत्तहे वि सहोयर-सोयहउ ।
जरसंध णराहिउ मुच्छ गउ ॥
कहकहवि लद्धु चेयणु चविउ ।
जें भाइ महारउ णिद्दलियउ ॥

आक्रमण नहीं करता। उस समय श्रीकृष्ण ने व्यवधान डाला। उन्होंने खुरपे से शत्रु का उर और सिर काट लिया।

घत्ता—और भी दूसरे वीरों से पैर, हाथ और सिर नष्ट हो गये, जैसे कलहंस के द्वारा कोमल कमल काट डाले गये हों ॥६॥

जब जरासंध का भाई युद्ध में मारा गया, तो यादवों के मन में आशंका उत्पन्न हो गयी। मन्त्रिसमूह कहता है—"जल्दी भाग चलो, जब तक चक्रवर्ती नहीं सुनता। कभी वह यहाँ आ गया तो कोई नहीं है। न दशार्ह, न हरि-हलधर ही, न नन्द, न गोठ और न गोपीजन। अत्यन्त विपुल (बड़े) वनमें प्रवेश करो।" यह बात सबके दिल में जम गयी। शीघ्र ही उन्होंने नगर से कूच कर दिया तथा श्रीकृष्ण और बलभद्र अठारह कुल करोड़ लोगों के साथ वन में छिप गये। यहाँ भी भाई के शोक से आहत राजा जरासंध मूर्छित हो गया। किसी प्रकार कठिनाई से उसने चेतना प्राप्त की और कहा—"जिसने मेरे भाई को मारा है—

१. अ—परिसुट्ठु। २. 'आसंक जाय जायवहं मणे। लहु णासहो मंतिलोउ चवइ। आयण्णइ ण जाम चक्कवइ।' ये पंक्तियाँ 'अ' प्रति में नहीं हैं।

घत्ता—तं विरसु रसंतु जइ ण णेमि जमसासणहो ।
तो कल्लए वेमि उप्परि झंप हुआसणहो ॥१०॥

पहु पइज्ज करिप्पिणु णीसरिउ ।
चउरंगाणीयालंकरियउ ॥
गहरक्खसकलिकालोवमहं ।
दह दुइ गयहं लक्ख-वीसग्गहं ॥
हय जुत्तहं धुव्वमाण-धयहं ।
तेत्तियहं सव्वइं संदणहं ॥
पहरणभरियहं रिउमद्दणहं ।
दह-वीसिय-सहस-णराहिवहं ॥
मंडलपरिवालहं पत्थिवहं ।
अवरु पमाणु को बुज्झियउ ॥
अग्गिउ पेसिउ अप्पाण-समु ।
लहुयारउ णंदणु कालयमु ॥
मग्गाणु लग्गु अरिपुंगमहं ।
णं खगवइ पवरभुअंगमहं ॥

घत्ता—तहिं तेहि काले पडिउवयारभावगयउ ।
सेण्णहं वि चाले मिलियउ हरिकुलदेवयउ ॥११॥

बहुइंधणकूडागार किय ।
संचारिम महिहर णाइं थिय ॥
चउं दिसु चीयउ पज्जालियउ ।
धूमाउल-जालामालियउ ॥
अण्णण्णरूव संचारिणिउ ।
महिला वुड्ढत्तण-धारिणिउ ॥

घत्ता—विरस चिल्लाते हुए उसे यदि मैंने यम के शासन में नहीं पहुँचाया, तो कल ही, मैं आग पर कूद जाऊँगा। ॥१०॥

राजा जरासंध प्रतिज्ञा करके निकला। वह चतुरंग सेना से अलंकृत था। उसके पास नौ करोड़ प्रवर अश्व थे जो ग्रह, राक्षस और कलि के समान थे। बारह लाख बीस हाथी थे। उतने ही घोड़ों से जुते हुए, प्रकंपित ध्वजवाले, प्रहरणों से भरे हुए रथ थे। शत्रुओं का मर्दन करने वाले, मण्डलों का परिपालन करनेवाले तीन हजार दो सौ दस राजा थे। दूसरे प्रमाण को कौन समझ सका है? जरासंध ने अपने समान छोटे पुत्र कालयम को आगे भेजा जो शत्रुश्रेष्ठ के मार्ग के पीछे लग गया, मानो गरुड़-प्रवर नागों के पीछे लग गया हो।

घत्ता—वहाँ उस समय, सैन्य के चलने पर प्रत्युपकार की भावना वाली हरिवंश की देवियाँ मिलीं ॥११॥

उन देवियों ने प्रचुर ईंधन के कूटागार (ढेर) बनाये, जैसे वे चलते-फिरते पहाड़ हों। चिताएँ चारों दिशाओं में प्रज्वलित हो उठीं जो धुएँ की ज्वालाओं से युक्त थीं। दूसरे-दूसरे रूप बनाने वाली उन महिलाओं ने वृद्ध महिलाओं के रूप धारण किये। वे वहाँ रोने लगीं—"हे

रोवंति ताउ तहिं देवियउ।
देवइ जसोय हा कहिं गयउ॥
हा हरि-हलहर-दसारहहो।
हा णंद-णंद हा गोवुहहो॥
हा जायवलोयहो जाउ खउ।
हा वइय मणोरह होंतु लउ॥
सो कालजमेण पउच्छियउ।
ताउ वि कहेंति उम्मुच्छियउ॥
जरसंधु कोवि तियसहुं बलिउ।
उवखंधें उप्परि उच्छलियउ॥

घत्ता—तहो तणेण भएण जालामालाभीसण हो।
मुअ जायवसव्व उप्परि चडिउ हुआसणहो॥१२॥

तं णिसुणिवि वइरिसेण्णु वलिउ।
गउ जायवबलु अपरिक्खलिउ॥
तो गिरि उज्जंत णिहालियउ।
कल-कोइल कलरव-मालियउ॥
अलिउल-झंकार-मणोहरउ।
णं वसुह-वारंगणहो सेहरउ॥
जोव्वणविलासु णं रेवयहो।
चूडामणि णं वणदेवयहो॥
णं पुण्णपुंज णारायणहो।
णं सो जि मोक्खु सावयजणहो॥
पासहिं चउ महिहर चउ सरिउ।
चउ णम्मरिउ सुट्ठु मणोहरिउ॥
अप्पुणु मज्झारिउ जगुत्तमउ।

देवकी! यशोदा तुम कहाँ गयीं! हाय हरि हलधर और दशार्हों का, हाय नन्द और ग्वालों का अन्त हो गया। हाय! यादव लोगों का क्षय हो गया। हे देव! तुम्हारे मनोरथ पूरे हों।" तब कालयम ने पूछा, और वे उससे यह कहती हुई मूच्छित हो गयीं कि देवताओं से भी बलवान् जरासंध नाम का व्यक्ति आक्रमण द्वारा ऊपर चढ़ आया है।

घत्ता—उसके भय के कारण सभी यादव ज्वालमालाओं से भयंकर आग पर चढ़कर मर गये। ॥१२॥

यह सुनकर शत्रुसेना लौट गयी, और यादवों की सेना बिना किसी प्रतिरोध के चली गयी। उस समय उसने गिरनार पर्वत देखा जो सुन्दर कोयलों के कलरव से घिरा हुआ था, भ्रमरकुल की झंकार से ऐसा सुन्दर था मानो धरती रूपी वारांगना का शेखर हो, मानो नर्मदा का यौवन विलास हो, मानो वनदेवी का चूड़ामणि हो, मानो नारायण का पुण्यपुंज हो, मानो श्रावकजनों का यही मोक्ष हो। उसके पास में चार पर्वत और चार नदियाँ हैं और अत्यन्त सुन्दर चार

णं मेरु सुपरिट्ठिउ पंचमउ ॥

घत्ता—हरिवंस पवित्तु तहो पासिउ गिरि सहसगुणु।
जहिं होसइ णेमि जहिं सिज्झेसइ सो जि पुणु ॥१३॥

जो गज्जंतमत्त-मायंग-तुंग-दंतग्ग णिहसणुच्छलिय, मणिसिलापडण-पेल्लणुव्वीमहाभराक्कंत कूरकसणाहि-मुक्क फुक्कार-कोव-जालग्गि-जालमालाउलीयकयामूल-विउल-सिहरो।
जो करि-करड-तड विणिग्गंत-मयसरिसोसतिम्मंत कुंजसंघाय-खोल्ल-चिक्खिल्ल-तल्ल-लोलंत-कोलउलवक्कदाढा[1]हय ससिकंतमणिमयूहपज्झरंत णइ-णिवह-भरियकुहरो ॥
जो गंधवहविहूय कंकेल्लि-मल्लिय-तिलय-वउल-चंपय-पियंगु-पुण्णाय-णाय-परिगलियकुसुम-परिमलमिलंत लोलालिवलय-झंकार-मणहरुद्देसखलिय गंधव्वमिहुण-पारद्धगेयकम्मो।
जो [2]अवयच्छियसुहासुह-महागुहगाहगहिय गयगत्तविमुत्त-णाहलणिसि-णीसस-वससमुच्छलिय-धवल मुत्ताहलावलि चुण्णवण्ण-दंसण-पहिट्ठ-अच्छंत-अच्छरावलिहिय चित्तयम्मो ॥छ॥

जहिं चूय-चंदण-तमाल-ताल-चंदण।
असोय-णाय-चंपया-पियंगुपरिजायया।
जहिं चरंति संबरा, वराह-वग्घ-वाणरा।
गया समुद्धसोंडया, सवीचि-सीह गंडया।
जहिं करि-ओयडा, मराल-चक्कवायया।

नगरियाँ हैं। वह स्वयं श्रेष्ठता से बीच में स्थित है, मानो पाँचवाँ मेरु स्थित हो।

घत्ता—हरिवंश पवित्र है, उसकी तुलना में पहाड़ हजार गुना पवित्र है जहाँ नेमिनाथ उत्पन्न होंगे और वहीं वह सिद्धि प्राप्त करेंगे ॥१३॥

गरजते हुए मतवाले हाथियों के ऊँचे दन्ताग्रों के संघर्षण से उछली हुई मणिशिलाओं के पतन की प्रेरणा से धरती के महाभार से आक्रान्त, क्रूर काले नागों के द्वारा छोड़ी गई फुफकारों के कोप की ज्वालाग्नि की ज्वालामालाओं से जिसके मूल और शिखर विस्तीर्ण हैं;

हाथियों की सूँड़ों के तट से निकलती हुई मदजल रूपी नदी के स्रोतों से गीले हुए, कुंजों के समूहों के कीचड़ भरे हुए तलभागों में खेलते हुए सूकर समूह के वक्रदन्तों से आहत चन्द्रकान्त मणियों की किरणों से झरती हुई नदियों के समूह से जिसके कुहर भरे हुए हैं;

पवन से आंदोलित अशोक, मल्लिका (जुही), तिलक, बकुल, चंपक, प्रियंगु, पुन्नाग(पाटल), नागकेशर वृक्षों से गिरे हुए, पुष्पपरागों के मिले हुए, चंचल भ्रमर समूहों की झंकारों से मनोहर प्रदेशों में चलते हुए गंधर्वों के जोड़ों ने जिसमें गीत कर्म प्रारम्भ किया है;

दिखाई देनेवाली सुखामुख वाली महान् गुहाओं के ग्राहों (मगरों) के द्वारा गृहीत, गज-शरीरों से अलग हुई तथा भीलों द्वारा प्रेरित विश्वासों के कारण उछलते हुए धवल मुक्ता-वलियों के चूर्ण रंगों को देखकर प्रसन्न हुई, विद्यमान अप्सराओं के द्वारा जहाँ चित्रकर्म लिखा जा रहा है;

जहाँ आम्र, चंदन, तमाल, ताल, लाल चन्दन, अशोक, नागकेशर, चम्पा, प्रियंगु और पारिजात वृक्ष हैं, जहाँ सांभर चरते हैं, जहाँ वराह, बाघ और वानर हैं, सूंड उठाए हुए हाथी,

१. अ—मियंक व सरिस-समूह-मणि-पज्झरंत। ब—दाढा मियंक व ससि-समूह-मणि पज्झरंत।
२. अ—अवमदियम। ब—अवयच्छिय।

जहिं चंचरीयया, पफुल्ल-फुल्ल-लीलया।
जहिं च मत्त कोइला, पुलिंद-भिल्ल-णाहला।
जहिं च कम्मवारणा, णहो वरंति वारणा।

घत्ता—तं गिरि उज्जेंतु मुएवि सयणु ससाहणउ।
गउ पंकयणाहु णाइं समुद्दहो पाहुणउ ॥१४॥

दूरहो जि समुद्दु णिहालियउ।
भीयर-करि-मयर-करालियउ ॥
भंगुर-तरंग-रंगतजलु।
पुव्वावहि भरि-उव्वरिय थलु ॥
फेणाकल्लोल-मलय मुहलु।
वरवेलालिंगय गयणयलु ॥
गंभीरघोस घुम्माविय जउ।
परिपालिय-ससि पडिबिंब सउ ॥
अवयण्णिय-वडवाणल-वइरु।
गिव्वाण-पहाण पीय-मइरु ॥
णीसारिय कालकूडकलसु।
हरि हरिय सिरी-मणिणिप्फरसु ॥
परिरक्खिय-सयल-सुर-सरणु।
सरि सोत्ताणियपाणिय भरणु ॥
आगास-पमाणु दिसा-सरिसु।
जलहर-संघाय-वाहिय-वरिसु ॥

जीता सहित सिंह और गेंडे हैं, जहाँ चकोर, चातक हैं, जहाँ मराल और चकवे हैं, जहाँ खिले हुए फूलों से खेलनेवाले भ्रमर हैं, जहाँ मतवाली कोयलें हैं, पुलिंद, भील और नाहल जाति के हैं, अपने कर्म में भीषण गज आकाश का वरण करते हैं;

घत्ता—ऐसे ऊर्जयंत पर्वत को छोड़कर, स्वजनों और सेना के साथ, श्रीकृष्ण मानो समुद्र के अतिथि बनकर गये ॥१४॥

उन्होंने दूर से समुद्र देखा, जो भयंकर हाथियों और मगरों से विकराल था, जिसका जल वक्र लहरों से तरंगित हो रहा था, जिसकी पूर्वी सीमा में जल भरा हुआ था और उसके बाद की भूमि जल रहित थी जो फेनयुक्त तरंगों के समूह से मुखर था, जो अपने श्रेष्ठ किनारों से आकाश को छू रहा था, जो गम्भीर घोष द्वारा विश्व में अपनी जय घुमा रहा था, जिसने अपने में चन्द्रमा के सैकड़ों प्रतिबिम्बों का परिपालन किया है, जिसने बड़वानल की शत्रुता की उपेक्षा की है, जिसमें प्रमुख देव मदिरा का पान करनेवाले हैं, जिससे कूटकाल विष का कलश निकला है, विष्णु ने जिससे लक्ष्मी और कठोर मणि का हरण किया है, जिसने शरणागत समस्त देवों की रक्षा की है, जिसमें नदियों के स्रोतों से जल का भरण होता रहता है, जो आकाश के प्रमाण वाला है और दिशाओं के समान है, जिससे मेघ-समूह वर्षा धारण करते हैं;

घत्ता—कल्लोलमएण हरि-आगम-कियायरेण ।
सइं भूरिभुएण णाइं पणच्चियउ सायरेण ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभूएवकए जायवबल-णिग्गमो
णाम णायव्वो सत्तमो सग्गो ॥७॥

घत्ता—जो कल्लोलमय है और जिसने श्रीकृष्ण के आगमन का आदर किया है, ऐसा समुद्र अपनी प्रचुर भुजाओं से स्वयं नाच उठा ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव द्वारा विरचित 'अरिष्टनेमिचरित' में
यादव-बलनिर्गमन नाम का सातवाँ सर्ग जानना चाहिए ॥१७॥

अट्ठमो सग्गो

लइय लच्छिय कोत्थुहु उद्दालिउ ।
एवं काइं करेसइ आइयउ[1] ॥
एण भएण जलोह-रउद्दें ।
दिण्ण थत्ति णं हरिहो समुद्दें ॥छ॥
तहिं हरि-बल थिय दब्भासणेण ।
सुरु गउ तहिं इंदहो पेसणेण ॥
संपाइउ सरहु सुगहिय-मुद्दु ।
बोल्लाविउ तेण महासमुद्दु ॥
अहो सायर सुंदरसुरवरेण ।
हउं पेसिउ पासु पुरंदरेण ॥
महुमहहो कएव्वउ पइं णिवासु ।
पंचासरहिउ जोयण सहासु ॥
सुरु गउ तसु एम भणेवि जं जि ।
मणि-रयणइं अग्घु लएवि तं जि ॥
गउ जलणिहि पासु जणद्दणासु ।
चाणूरमल्ल-बल मद्दणासु ॥
लइ दिण्ण थत्ति करि पट्टणाइं ।
हउं सरियउ बारह जोअणाइं ॥
गउ णरवइ एम भणेवि जाम ।
पट्ठाविउ सुरिंदें धणउ ताम ॥

पहले लक्ष्मी ले ली, फिर मणि छीन लिया, अब आकर (श्रीकृष्ण) क्या करेंगे ? इस डर से जलसमूह से रौद्र समुद्र ने हरि के लिए स्थान (स्थिति) दे दिया। वहाँ हरि और बलभद्र दर्भासन पर स्थित हो गये। इन्द्र के आदेश से रूप (मुद्रा) धारण कर एक देव वेग से वहाँ आया। उसने महासमुद्र से कहा —"हे सागर ! सुन्दर इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हें श्रीकृष्ण के निवास की रचना करनी चाहिए जो पचास कम एक हजार योजनों वाला हो।" जैसे ही उससे यह कहकर देव गया, वैसे ही मणिरत्न और अर्घ लेकर समुद्र चाणूर मल्ल के बल का मर्दन करनेवाले श्रीकृष्ण के पास गया [और बोला]—"लो, मैं स्थान देता हूँ। नगर की रचना कीजिए। मैं बारह योजन (पीछे) हट गया।" जब नरपति (श्रीकृष्ण) से यह कहकर समुद्र चला गया, तो देवेन्द्र ने कुबेर को भेजा।

1. अ—आलिउ।

घत्ता—जाहि कुबेर करहि महु पेसणु फेडइ हरि-हलहर-दब्भासणु।
करि णयरु वारवइ सुहाएँ बारह जोयणाइं आयामें ॥१॥

वित्थारें णवजोयणाइं।
करि एक्कहिं पंच वि पट्टणाइं॥
यासविहिं कउ संविवसेणु।
दाहिणयहिं महुरहिं उग्गसेणु॥
पच्छिमियहि सउरिवसारजेट्ठु।
उत्तरेणावासउ णंदगोट्ठु॥
बारवइ-मज्झि तहिं पउमणाहु।
अच्छउ सबंधु परियणसणाहु॥
हरिभवणु करिज्जहि भुवणसारु।
अट्ठारह भूमि-[1]सहासबारु॥
आहुट्ठ-दिवस पुर धरिय ताम।
धण-धण्ण-सुवण्ण-बवुट्ठ जाम॥
रहु देज्जहि पहरण-भरियगत्तु।
गरुडधउ-चामर सेय छत्तु॥
सिक्खिउ सुरिंदेण जाइं जेम।
अवराइं मि ताइं कियइं तेम॥

घत्ता—सग्गहु पासिउ सक्काएसें, सउरी-पुरवरु रइउ विसेसें।
जहिं तइलोय-मंगलगारउ, उप्पज्जेसइ-णेमिभडारउ॥२॥

पइसारिउ पुरे केसव-सुबंधु।

घत्ता—"हे कुबेर ! तुम जाओ, मेरे आदेश का पालन करो और हरि और बलभद्र का दर्भासन तुड़वाओ, द्वारावती नाम का नगर बनाओ जो लम्बाई में बारह योजन का हो ॥१॥

जो विस्तार में नौ योजन हों ऐसे एक जगह पाँच नगर बनाओ। पूर्व दिशा में संविवसेन का निवास बनाओ, दक्षिण दिशा में मथुरा के उग्रसेन का, पश्चिम दिशा में शौर्यपुर के दशार्हों में सबसे जेठे समुद्रविजय का और उत्तर दिशा में नंदगोठ का निवास बनाओ। वहाँ द्वारावती के बीच में पद्मनाथ (श्रीकृष्ण) के लिए हरिभवन बनाओ जो भुवन में श्रेष्ठ हो, जिसमें अठारह भूमियाँ और एक हजार द्वार हों। साढ़े तीन दिन तक तब तक नगर की रचना करो जब तक वह धनधान्य और स्वर्ण से परिपूर्ण न हो जाए। हथियारों से भरा हुआ रथ दें।" कुबेर ने गरुड़ध्वज, चामर और श्वेत छत्र उसी प्रकार दिये, जिस प्रकार देवेन्द्र ने उसे सिखाया था। दूसरी चीजें भी उसने उसी प्रकार बनायीं।

घत्ता—देवेन्द्र के आदेश से स्वर्ग को स्पर्श करनेवाला शौर्यपुर विशेष रूप से बनाया गया जहाँ त्रिलोक का कल्याण करनेवाले आदरणीय नेमिनाथ उत्पन्न होंगे ॥२॥

नारायण और सुबंधु को नगर में प्रवेश कराया गया। अभिषेक किया गया और पट्ट बाँधा

---

१. अ—स वार्यबार।

अहिंसिचिउ पुणु किउ पट्टबंधु ।।
गउ धणउ सुरिंदहों पासु जाम ।
सिवएवि-गब्भहों सोहणं ताम ।।
आयउ सत्तारह देवयाउ ।
दससयपरिवारिय अवयराउ ।।
दसदिसि देवयउ सवाहणाउ ।
विविहद्धय-विविह-पसाहणाउ ।।
उक्खय-दप्पहरण-पहरणाउ ।
सियचामर-आयव-[1]धारणाउ ।।
विज्जुलकुमारि वरबुद्धिकित्ति ।
जयलच्छि लज्जसिरि[2] परमतित्ति ।।
सव्वाउ सव्वालंकरियाउ ।
मंजीर-राव-झंकारियाउ ।।
सिवएवि-पासु पहुक्कयाउ ।
णिय-णिय-णियोअणि-चक्कियाउ ।।

घत्ता —चंदकंतपह-धवलियधामे जामिणि[3]जामे पच्छिम आए ।
पल्लंकोवरि णिद्दयाए सोलह सिविणइं दिट्ठइं सिवाए ।।३।।

गउ-गोवइ-हरि-सिरि-दामजुयलु ।
ससलंछणु-दिणमणि-मीण-जुयलु ।।
सकलसु-कमलायरु-कमलखाणु ।
सायरु-सीहासणु-सुरविमाणु ।।
अहिहेलणु-मणिगण-जलणजालु ।

गया। जब तक कुबेर देवेन्द्र के पास गया, तब तक शिवादेवी के गर्भ का संशोधन करने के लिए सत्तरह देवियाँ आयीं। एक हजार देवियों से घिरी हुई वे अवतरित हुईं। वाहनों सहित देवियाँ दसों दिशाओं में थीं। विविध ध्वजाओं और प्रसाधनों वाली उन देवियों ने दर्प का हरण करने वाले अपने अस्त्र निकाल रखे थे। वे श्वेत चमर और छत्र धारण किये हुए थीं। विद्युत्कुमारी, श्रेष्ठा, बुद्धिकीर्ति, जयश्री, लज्जा, लक्ष्मी, परमतृप्ति सभी देवियाँ सब प्रकार के अलंकारों से अलंकृत थीं। अपने नूपुरों की झंकार करती हुई वे शिवादेवी के पास पहुँचीं। वे अपने-अपने काम में निपुण थीं।

घत्ता—चन्द्रकान्त मणियों की प्रभा से धवलित प्रासाद में रात्रि का अन्तिम प्रहर बीतने पर पलंग पर सोती हुई शिवादेवी ने सोलह स्वप्न देखे ।।३।।

गज, गोपति (बैल), सिंह, लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्रमा, सूर्य, दो मत्स्य, कलश सहित कमलों का समूह, सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, नागलोक, मणि समूह और अग्नि।

१. अ—आयवधारणाउ। २. अ—जल्लसिरि। ३. अ—जामइ।

दिवसमुहे दसारुहसामिसारु ॥
बोल्लाविउ सविणउ कहिउ तासु ।
पञ्चक्ख सयल-मंगल-णिवासु ॥
सुणु णाह णिहालिउ पढमु हत्थि ।
पडिबिंबु जासु जगे कोवि णत्थि ॥
सुहलक्खणु भद्दु मउविसाणु ।
मयसिसगत्तु जुत्तपमाणु ॥
पुणु रिसरंखोलिर-पुच्छ संडु ।
पुणु बीहणहर-णंगूल-सीहु ।
तरुपल्लव-लोल-ललंतजीहु ॥

घत्ता—कमलालय कमलमालणयणी कमलवयणु कमलुज्जलवयणी ।
कमलपाणि-सुरकरि-अहिसारी दिट्ठलच्छि जगमंगलकारी ॥४॥

पुणु पुरुगंधुक्कड दामजुयलु ।
परिमल-परिमिलिय-चलालि मुहलु ॥
पुणु छण-ससिलंछण रहिउ काउ ।
तहिउ आभूसिउ-भुवणभाउ ॥
पुणु दससयकिरण-करालियंगु ।
तमतिमिरणियर-वारणपयंगु ॥
पुणु मीणजुयलु [1]कलसद्दयाइं ।
णं सोक्खणिहाण-[2]महुरिद्धयाइं ॥
पुणु सरवरु कमलाकमलरम्मु ।
पुणु जलणिहि जलयरजीवजम्मु ॥

सवेरा होने पर उसने विनयपूर्वक, दशार्हों के स्वामीश्रेष्ठ (समुद्रविजय) से कहा—"प्रत्येक (अथवा प्रत्यक्ष) समस्त मंगल के निवास हे नाथ, सुनिये। पहले मैंने हाथी देखा जिसके समान दूसरा हाथी जग में नहीं है, शुभ लक्षणों वाला भद्रहस्ति, जिसका शरीर मद से सिक्त है और जो उचित प्रमाण वाला है। फिर, ईर्ष्या से अपनी पूँछ हिलाता हुआ बैल, लम्बे नखों और पूँछवाला सिंह जिसकी चंचल जीभ वृक्ष के पत्तों की तरह लपलपा रही है।

घत्ता—फिर, मैंने लक्ष्मी को देखा, सरोवर जिसका घर है, जिसके नेत्र कमलमाला के समान हैं, जो कमल के समान उज्ज्वल मुखवाली है, जिसके कमल के समान हाथ हैं, जो ऐरावत हाथी पर विहार करती है और जो विश्व का कल्याण करनेवाली है ॥४॥

फिर प्रचुरगंध से उत्कट मालायुगल जो सौरभ से मिले हुए चंचल भ्रमरों से मुखर है। फिर लांछन से रहित शरीरवाला चन्द्रमा जिसकी प्रभा से भुवन प्रभासित है। फिर, हजारों किरणों से आलिंगित शरीर और तम-तिमिर के समूह को नष्ट करनेवाला सूर्य। फिर मीनयुगल, फिर कमलों से आच्छादित सुख के घर दो कलश, फिर लक्ष्मी और कमलों से रमणीय सरोवर, फिर जलचर जीवों से सुन्दर समुद्र, फिर सिंहासन, फिर विमान, फिर प्रचुर भवनोंवाला नागलोक,

१. अ, ब—कमलं सद्दयाइं। २. अ, ब—महट्ठयाइं।

पुणु केसरिविट्ठर पुणु विमाणु।
पुणु भूरिभवणु मंदिरवाणु॥
पुणु रयणरासि पुणु जलणजालु।
फलु अक्खइ जायव-सामिसालु॥
सुउ होसइ हरिकुल-गयण चंदु।
गय-दंसणें गुरुवंदाहिवंदु॥

घत्ता— सुरवर-पुंगउ गोवइ दंसणें अतुलपरक्कमु-सीहणिरक्खणें।
तिहुअण-सिरिवइ सिरिहिं पहावें तित्थ पदरिसि दाम-दक्खावें॥५॥

कंतिल्लु [1]णियच्छिए छुहहीरि।
तेयालउ दिट्ठिए रविसरीरि॥
झसजुयल-णिहालणि सोक्खथाणु।
[2]घड-संधय-दंसणे णवणिहाणु॥
लक्खणधरु दिट्ठें सरवरेण।
केवल णिहिइ रयणायरेण॥
तइलोक्क-सामिय-सीहासणेण।
अहमिंदु विमाणहो दंसणेण॥
[3]भोइंदभवणि दिट्ठिए तिणाणि।
मणिरयणपुंजे गुण-रयण-खाणि॥
सिहिदंसणे लोय-णिरुंधणाइं।
णिद्दहइ सयल-कम्मेंधणाइं॥
इह सोलह सिविणइं जे पढंति।
सवे मंगल-सिव-कल्लाण संति॥

फिर रत्नराशि, फिर अग्नि-ज्वाला। यादवों के स्वामीश्रेष्ठ समुद्रविजय फल कहते हैं---"तुम्हारा पुत्र हरिवंश रूपी आकाश का चन्द्रमा होगा, हाथी देखने से श्रेष्ठ देवों से वन्दनीय होगा।

घत्ता—बैल देखने से सुरवरों में श्रेष्ठ होगा, सिंह को देखने से अतुल पराक्रमी होगा, लक्ष्मी के प्रभाव से त्रिभुवन की लक्ष्मी का अधिपति होगा, मालाओं के देखने से तीर्थ का प्रदर्शन करनेवाला होगा॥५॥

चन्द्रमा के देखने से कान्तिमय, सूर्य देखने से तेजस्वी, मीनयुगल देखने से सुख का स्थान, कलश-समूह देखने से नवनिधान, सरोवर को देखने से लक्षणों को धारण करनेवाला, समुद्र को देखने से केवलज्ञान के ऐश्वर्य से युक्त, सिंहासन देखने से त्रिलोक का स्वामी, विमान को देखने से अहमिंद्र, नागलोक देखने से तीन ज्ञानवाला, मणिरत्नों के समूह से गुणों और रत्नों की खान, आग को देखने से लोक का अवरोध करनेवाला, समस्त कर्म रूपी ईंधन को जलानेवाला तुम्हारे पुत्र होगा। इन सोलह सपनों को जो पढ़ते हैं उसका मंगल, शिव और कल्याण होगा। लोक के

1. अ—णिअच्छिए। 2. अ—घडसंथउ। 3. अ—भुवइंद।

ओयरिउ जयंतहो लोयणाहु ।
थिउ सिव-सरीरि-तणुतणु-सणाहु ।।

घत्ता—पुण्णपवित्तु कंति-संपुण्णउ इंदणीलमणिपुंजसवण्णउ ।
थिउ सिवएविहे देहब्भंतरि अलि जिह पउमिणी पंकयकेसरि ।।६।।

बारहकोडिउपंचासलक्ख ।
वसुहार पडिय घरे तीसपक्ख ।।
[1]संपुण्णे मासे जिणु जणिउ धण्णु ।
सावण्णसियछट्ठिहे सामवण्णु ।।
चित्तरिक्खे सुहलग्ग जाए ।
णिम्मलदिणे णिम्मलगयणभाए ।।
उप्पण्णु भडारउ सिवहे जाव ।
भावण-वितर-जोइसहं ताव ।।
संखुब्भइ देवागमणु ताव ।
भावणवितर-जोइसहं जाव ।।
कंबुयपडहं-मुणि-सहीणाय ।
जयघंट-सद्दु-सेसामराहं ।
णं गउ कोवकउ हरिपुरमुगाहं ।।
सहसक्खहो आसणकंपु जाउ ।
सावय-सेस सुरेहिं आउ ।।
अइरावउ कंचणगिरि-समाणु ।
थिउ जंबुदीव-परिप्पमाणु ।।

स्वामी स्वर्गलोक से अवतरित हुए और सूक्ष्म शरीर से युक्त वे शिवा के शरीर में स्थित हुए।

घत्ता—पुण्य से पवित्र, कान्ति से सम्पूर्ण, इन्द्रनीलमणि के समान रंगवाले वह शिवादेवी के गर्भ में उसी प्रकार स्थित हो गये, जैसे कमलिनी और कमल के पराग में भ्रमर ।।६।।

बारह करोड़ पचास लाख रत्नों की वर्षा तीस पखवाड़ों तक हुई। पूरे माह होने पर वह धन्य जिन (शिशु रूप में) उत्पन्न हुए। श्रावण शुक्ला छठी के दिन चित्रा नक्षत्र में शुभ लग्न आने पर निर्मल आकाशभागवाले निर्मल दिन में आदरणीय जिन शिवादेवी के गर्भ से जिस समय उत्पन्न हुए उस समय भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष देवों का आगमन क्षुब्ध हो उठा। शेष देवों द्वारा शंख, पटह (नगाड़ों) की ध्वनि, सिंहनाद जयघंटा शब्द होने लगा। वह ध्वनि हरि के सम्मुख तक पहुँची। तब सहस्रनयन (इन्द्र) का आसन काँप उठा। वह श्रावकों और शेष देवों के साथ आया। स्वर्णगिरि के समान और जम्बूद्वीप के समान आकार वाला

१. संपुण्णे मासे जिणु जणिउ धण्णु ।
सावण्ण सिय छट्ठिए सामवण्णु ।।
चित्तरिक्खे सुह लग्ग जाए ।
णिम्मलदिणे णिम्मलगयण भाए ।।
ये पंक्तियाँ 'अ' प्रति में नहीं हैं।

बत्तीस सोंडु बत्तीस वयणु ॥
चउसट्ठिकण्ण चउसट्ठिणयण ।
एक्केकए मुहे अट्ठट्ठदंत ॥
कलहोयवलय-उवसोह देंति ।

घत्ता--दंति दंति सरो सरि-सरि पत्तणि स वि कमलिणिवत्तिणि।
कमले कमले बत्तीस जे पत्तइं पत्ते-पत्ते णट्टाइं जि तेत्तइं ॥७॥

तहिं ताहे मायावि गइंदे ।
चलकण्णताल-तुलियालिविंदे ॥
मय-णइ-[1]पक्खालिय-गंडवासे ।
सिक्कारभाव-[2]आऊरियासे ॥
आरूढपुरंदर-भावगहिउ ।
सत्तावीसच्छर-कोडि-सहिउ ॥
संचल्ल चउव्विह सुरणिकाय ।
णं सुण्णउं सग्ग करेवि आय ॥
णाणालंकार-विहूसियंग ।
णाणा मउडंकिय-उत्तमंग ॥
णाणाधय णाणाजाणरिद्ध ।
णाणायवत्त चामरसमिद्ध ॥
णाणा देवंगावरियगत्त ।
बारवइ खणद्धेण पत्त ॥
जिणु लइउ दुकूल-पडंतरेण ।
चूडामणि णाइं पुरंदरेण ॥

ऐरावत हाथी स्थित हो गया। उसकी बत्तीस सूंडों पर बत्तीस मुख थे, चौंसठ कान और चौंसठ नेत्र थे। एक-एक मुँह में आठ-आठ दाँत थे। स्वर्णवलय उसकी शोभा बढ़ाते थे।

घत्ता—एक-एक दाँत पर सरोवर थे। सरोवर में कमलपत्र थे जो कमलनियों से युक्त थे। प्रत्येक कमल में बत्तीस दल और प्रत्येक दल में उतनी ही नर्तकियाँ थीं ॥७॥

उस समय वहाँ पर चंचल कुण्डल के समान भ्रमरसमूह मँडरा रहा था। जिसके गंडस्थल के पार्श्वभाग मदधारा से प्रक्षालित हैं, जिसने सीत्कार के जलकणों से दिशाओं को आपूरित कर दिया है, ऐसे उस मायावी गजराज पर भावों से अभिभूत देवेन्द्र, सत्ताईस करोड़ अप्सराओं के साथ आरूढ़ हो गया। चारों प्रकार के देवसमूह चले, मानो वे स्वर्ग को शून्य बनाकर आये हों। जिनके अंग नाना प्रकार के अलंकारों से विभूषित हैं, जिन्होंने अपने सिरों पर नाना प्रकार के मुकुट धारण कर रखे हैं, जो नाना ध्वजों और नाना यानों से समृद्ध हैं, जिन्होंने नाना दिव्य वस्त्रों से अपने शरीर आच्छादित कर रखे हैं, ऐसे देव आधे से आधे क्षण में द्वारावती जा पहुँचे। देवेन्द्र ने शिशु जिनेन्द्र को दुकूलवस्त्र के भीतर ले लिया, जैसे चूड़ामणि ले लिया हो।

---

१. अ—पक्खालिय। २. अ—आओरियासे।

घत्ता—मेरु-मत्थए ठविउ भडारउ तेयपिंडु तमतिमिरणिवारउ।
खीरसमुद्द होइ णिज्झाइउ णं अहिसेयपडायउ लाइउ ॥८॥

अप्फालिउ पढमारंभ-तूरु।
पडिसद्दें तिहुयण-भवणपूरु ॥
दुमदुम-दुमंति दुंदुहिणमालु।
घुमघुमघुमंत घुमुक्कतालु ॥
¹झिंझिकरंति सिक्करि-णिणाउ।
सिमि-सिमि-सिमंत-मल्लरि-णिणाउ ॥
सलसलसलंत-कंसालजुयलु।
गुंगुंजमाणु गुंजंतु मुहलु ॥
कणकणकणंत-कणकणइ-कोसु।
डमडम-डमंतउ मरुवणि-णिघोसु ॥
दों-दों-दों-दोंत मउंद-सद्दु।
झा-झा-परिछिन्न-हुडुक्क-सद्दु ॥
टंटंत-टिविलु ढंढंत-ढक्कु।
भभंत-भंभु ढंढंत-ढक्कु ॥
अवराइं मि हयइं विचित्ताइं।
अहिसेयकाले वाइत्ताइं ॥

घत्ता—कोडाकोडि-तूररव-भरियउ जइ तिवायवलएण ण धरियउ।
तो सहसुब्भाए सद्दोयरु तिहुअण जंतु आसि सयसक्करु ॥९॥

घत्ता—तमतिमिर का निवारण करनेवाले तेज शरीरवाले आदरणीय जिनदेव को सुमेरु पर्वत के मस्तिष्क पर स्थापित कर दिया गया। वे ऐसे लक्षित हुए मानो क्षीर समुद्र की भांति अभिषेक की पताका या ध्वजा हो ॥८॥

अभिषेक प्रारम्भ होने का नगाड़ा बजा दिया गया। उसकी प्रतिध्वनि से त्रिभुवन गूंज उठा। दुंदुभि का शब्द दुम-दुम करता है, सिक्करी वाद्य का निनाद झिं-झिं करता है, झल्लरि शब्द से सिमि-सिमि ध्वनित होता है, दोनों कंसाल सल-सल करते हैं, शंख गूं-गूं करता हुआ गूंजता है, कोश कण-कण करता हुआ कणकणाता है, मरुवणि का घोष डम-डम करता है। मृदंग दों-दों-दोंत शब्द करता है। हुडुक्क का शब्द झां-झां के रूप में परिलक्षित है। तबला टं-टं करता है और ढुक्क ढडंत करता है। भेरी भभंत करता है, नगाड़ा ढं-ढं शब्द करता है। और भी दूसरे वाद्य अभिषेक के समय बजाए गये।

घत्ता—करोड़ों तूर्यों के शब्द से भरा हुआ, जिसके भीतर सबकुछ है ऐसा त्रिभुवन यदि त्रिवातवलय के द्वारा धारण नहीं किया जाता, तो शंख की ऊँची आवाज के द्वारा सौ टुकड़ों में होकर रहता ॥९॥

---

१. 'झिं झिं करंति सिक्करि-णिणाउ।'
यह पंक्ति 'अ' प्रति में नहीं है।

अहिसेय-कलस हरिसियमणेहिं ।
उच्चाइय दससहसेहिं जणेहिं ॥
सुरवइ-सिहि-जमवस-णिसियरेहिं ।
वरुणाणिल वसुवइ णीसरेहिं ॥
धरणिंदचंद-णामंकिएहिं ।
मणिकुंडल-मउडालंकिएहिं ॥
अवरेहिं मि अवर महाविसाल ।
अट्ठट्ठजोयणअंतराल ॥
जोयणेक्केक्क-पमाणगीवकुं ।
संचारिम खीरमहोअहीव ॥
अट्ठोत्तरकलस-सहास एव ।
उच्चाएवि ण्हवण करंत देव ॥
ससिकोडि-समप्पह-खीरधार ।
आमेल्लिय सव्वेंहि एक्कवार ॥
गिरिमेरुसिहर रेल्लंतु धाइ ।
संचारिम सायरवेलणाइ ॥

घत्ता--ण्हाइ णाहु ण्हावेइ पुरंदरु, उवहि अणिट्ठिउ वियडउ मंदरु ।
सुरयण-खीरु वहंतु ण थक्कइ, तहिं अहिसेउ को वण्णिवि सक्कइ ॥१०॥

अहिंसिंचिउ एम तिलोयणाहु ।
सक्कंदणु होएप्पिणु सहसबाहु ॥
संतेउरु सामरु सट्टहासु ।
उव्वेल्लइ अग्गइ जिणवरासु ॥
णच्चंतहो णयणावलि विहाइ ।

हर्षित मनवाले दस हजार देवों, इन्द्र, अग्नि, यम, निशाचर, वरुण, पवन, कुबेर, नरेश, धरणेन्द्र और चन्द्र के नाम से अंकित मणिकुंडलों और मुकुटों से अलकृत दूसरे देवों ने अभिषेक के कलश उठा लिये। दूसरे बड़े-बड़े देव जो आठ-आठ योजन के अंतराल से स्थित हैं, एक-एक योजन प्रमाण ग्रीवावाले हैं, क्षीर समुद्र से लाये गये (संचारित) एक हजार आठ कलश उठाकर अभिषेक करते हैं। सबके द्वारा करोड़ चन्द्रमाओं के समान प्रभावाली जल की धार एक साथ छोड़ी गयी, जो सुमेरु पर्वत के शिखरों को सराबोर करती हुई ऐसी प्रवाहित हो रही थी जैसे समुद्र का संचरणशील ज्वार हो।

घत्ता--प्रभु का अभिषेक होता है। इन्द्र अभिषेक करता है। समुद्र निःसीम है, पर्वत विशाल है। जहाँ देवसमूह जल प्रवाहित करते हुए नहीं थकता, वहाँ अभिषेक का वर्णन कौन कर सकता है ॥१०॥

इस प्रकार त्रिलोकस्वामी (नेमिनाथ) का अभिषेक किया गया। हजार हाथोंवाला होकर इन्द्र अन्तःपुर के देवों और अट्टहास के साथ जिनवर के आगे उछलने लगता है। नृत्य करते हुए उसकी नेत्रावली ऐसी शोभित होती है जैसे अर्चना के लिए नीलकमलों की माला रच दी

रइयच्चण-कुवलयमाल णाइ ॥
णच्चंतहो णहमणि विप्फुरंति ।
पज्जालिय णाइं पईव-पंति ॥
णच्चंतए सरहसें अमरराएं ।
णिवडइ तारायणु भूमिभाएं ॥
आसीविस-विसहर-विस मुयंति ।
पक्खुहिय महोवहि जए ण मंति ॥
टलटलइ वलइ महि णिरवसेस ।
फुट्टंति पडंति गिरिपएस ॥
कड-कड वि कडत्ति णं मेरुभग्गु ।
टलटलिउ वि असेसु सग्गु ॥

घत्ता—एम णच्चिवि अग्गइ णेमिहे, थुइ आढत्त जगत्तयसामिहे ।
जिणवर-णिरुवम-गुण तुम्हारा, को सक्कइ परिगणिवि भडारा ॥११॥

गुण गणेवि ण सक्कमि मंदबुद्धि ।
जइ बोल्लमि तो णवि सद्दसुद्धि ॥
जइ [1]उवम देमि तो जगि[2]ण णत्थि ।
तिहुअणहो ण [3]तूसइ भवपमंथि ॥
अलिए पहु णवि [4]तूसंति [5]आव ।
संतेहि गुणेहि वि ण थुइ ताव ॥
ण विसेसणु जेण विसेसु कोइ ।
असरिस-उवमेहि ण कव्वु होइ ॥
तइलोयपियामह आरिसेहि ।

गयी हो। नृत्य करते हुए इन्द्र के नखमणि इस प्रकार चमकते हैं जैसे दीपों की पंक्ति जगमगा रही हो। देवराज के हर्षपूर्वक नृत्य करने पर ताराओं का समूह भूभाग पर गिर पड़ता है, आशीविष विषधर विष छोड़ देते हैं, समुद्र क्षुब्ध हो उठता है और विश्व में नहीं समाता। टल-मल करती हुई समूची धरती झुक जाती है। गिरि-प्रदेश गिरकर टूट जाते हैं, भग्न सुमेरु मानो कड़कड़ा रहा हो। समूचा स्वर्ग भी (उस समय) चलायमान हो उठता।

घत्ता—तीनों लोकों के स्वामी नेमिनाथ के आगे इस प्रकार नृत्य करके इन्द्र ने स्तुति प्रारम्भ की—"हे आदरणीय जिनवर! तुम्हारे अद्वितीय गुणों की गणना कौन कर सकता है॥११॥

मैं मंदबुद्धि आपके गुणों की गणना नहीं कर सकता। यदि बोलता हूँ तो शब्दशुद्धि नहीं है। यदि मैं उपमा देता हूँ तो जग में ऐसी उपमा नहीं है। संसार का नाश करनेवाले संसार से सन्तुष्ट नहीं होते और जब स्वामी झूठ से प्रसन्न नहीं होते, तब विद्यमान गुणों के द्वारा भी स्तुति सम्भव नहीं है। ऐसा विशेषण भी नहीं है जिससे विशेष को बताया जा सके। असमान उपमाओं से काव्य की रचना नहीं होती। हे त्रिलोक पितामह ऋषि! हम जैसे चिल्लानेवाले

१. ब—उउम। २. अ—णि। ३. अ—रूसहि। ४. अ—रूसंति। ५. अ—साव।

किं किज्जइ थुइ अम्हारिसेंहिं ॥
तिहुयणे ण मविज्जइ जइवि आसि।
णउ णिट्ठइ तुह गुण-रयण-रासि ॥
भावण भवणासण जगे पघोसु।
थुइ तेण करंतहं कवणुदोसु ॥

घत्ता—एम भणेवि दिव्वोकसणाहें परमभाव-सब्भाव सणाहें।
अंचिवि पुज्जिवि तिहुवणसारउ जणणिहिं अग्गए थविउ भडारउ ॥१२॥

गउ सुरवइ मंदिरे थवेवि बालु।
परिवड्ढइ तिहुवण-सामिसालु ॥
चउगइ-संसार समुद्दसेउ।
अजरामर-पुरवइसार-हेउ ॥
तइलोक्क-भुवण-भूसण-पईउ।
अभयामयसिंचिय-सयलजीउ ॥
लावण्ण वारिपूरिय दियंतु।
सोहग्ग-महोदहि-भवकयंतु ॥
को वण्णवि सक्कइ रूउ तासु।
सक्कु वि संकिउ थुइ करिवि जासु ॥
दससयमुहोवि धरणिंदराउ।
थोत्तुग्गीरिणि असमत्थु जाउ ॥
गुणगणेवि ण सक्कइ सरसइ वि।
असमत्थ णिहालणे सुरवइ वि ॥
हरि-हलहर-कुल-रहचक्कणेमि।
किर जेण तेण किउ णाम णेमि ॥

...गों के द्वारा भला आपकी क्या स्तुति की जाती है? यद्यपि आपकी गुणराशि त्रिभुवन के द्वारा मापी गयी है, फिर भी वह समाप्त नहीं हुई। दुनिया में यही घोषित किया जाता है कि भावना से ही भव का नाश होता है इसलिए स्तुति करने में कौन-सा दोष है?

घत्ता—परमभाव से सहित, दिव्यालय के स्वामी देवेन्द्र ने यह कहते हुए त्रिभुवन के सार-भूत आदरणीय नेमिजिन की पूजा-अर्चा कर उन्हें माता के सम्मुख रख दिया ॥१२॥

बालक को भवन में रखकर देवेन्द्र चला गया। त्रिभुवन के स्वामी श्रेष्ठ वहाँ बढ़ने लगते हैं। जो चार गतिवाले संसाररूपी समुद्र के सेतु हैं, जो अजर-अमर नगर के स्वामी और सारभूत हैं, जो त्रिलोकरूपी विश्व के शोभाप्रदीप हैं, जिन्होंने अपने अभय वचनामृत से समस्त जीवों को जिलाया है, जिन्होंने सौंदर्यरूपी जल से दिगंत को आपूरित किया है, जो सौभाग्य के समुद्र और भव के लिए कृतांत हैं, उनके रूप का वर्णन कौन कर सकता है? एक हजार मुखवाला धरणेन्द्र भी आपकी स्तुति के उच्चारण में असमर्थ है। सरस्वती भी आपके गुणों की गणना नहीं कर सकती है। आपको देखने में देवेन्द्र भी असमर्थ है। चूंकि आप नारायण और बलभद्र के वंश के रत्नचक्र के नेमि हैं, इसलिए आपका नाम 'नेमि' रखा गया।

घत्ता—सो तइयलोयहो मंगलगारउ सुरगुरु-पुण्णपवित्तभडारउ।
इंदियचोरगणहो आरूसेवि थिउ हरिवंसु सव्व संभूसिवि ॥१३॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभूएवकए
णेमिजम्माहिसेउ अट्ठमो सग्गो ॥८॥

घत्ता—तीनों लोकों का मंगल करनेवाले बृहस्पति के पुण्यों से पवित्र, आदरणीय वे इन्द्रियरूपी चोरसमूह से रूठे हुए समस्त हरिवंश की शोभा बढ़ाते हुए स्थिर थे ॥१३॥

इस प्रकार अरिष्टनेमिचरित में धवलया के आश्रित स्वयंभूदेव कृत
नेमिजन्माभिषेक नामक आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥८॥

णउमो सग्गो

अहिसिंचिए णेमिभडारए मेरुसिहरि सक्कंदणेण।
सिसुपालहो सहुँ जीयासए रुप्पिणि हरिय जणद्दणेण॥

ताम देव-दाणव-कलियारउ।
ता बारवइ पराइउ णारउ॥
कविलजडाजूडंकिय-मत्थउ।
छत्तिय-भिसिय कमंडलु हत्थउ॥
जोगवट्टियालंकिय-विग्गहु।
धोयधवल-कउपीण-परिग्गहु॥
जण्णोवईय-सत्तसर-मंडिउ।
हिंडणसील महारय-कोड्डिउ॥
चरमदेहु गयणांगण-गामिउ।
बंभचरिय-उववास किलामिउ॥
परसम्माण-दुहिउ गउ तेत्तहे।
सच्चहाम सिंहासणि जेत्तहे॥
अच्छइ णिययरूउ जोयंती।
मोहणजालु णाइं ढोयंती॥
णं लावण्णतलाए तरंती।
णं जगु णयणसरेहिँ भिंदंती॥

सुमेरुपर्वत के शिखर पर देवेन्द्र के द्वारा आदरणीय नेमि जिन का अभिषेक किए जाने पर, शिशुपाल की जीवन-आशा के साथ, जनार्दन ने रुक्मणी का हरण कर लिया।

इसी बीच देवों और दानवों में कलह करानेवाले नारद द्वारावती पहुँचे। जिनका मस्तक कपिल जटाओं के जूड़े से अंकित है, जिनके हाथ में छत्र, आसन और कमंडलु हैं, जिनका शरीर योगपट्टिका से अलंकृत है, जो धुली हुई सफेद लंगोटी धारण किए हुए हैं, सात लड़ोंवाले यज्ञोपवीत से मंडित हैं, जो भ्रमणशील और अत्यंत कुतूहलवाले हैं, जो चरमशरीरी और आकाश विहारी हैं, जो ब्रह्मचर्य और उपवास से खिन्न हैं तथा दूसरे के सम्मान से दुःखी रहते हैं, ऐसे नारद वहाँ गये जहाँ सत्यभामा सिंहासन पर अपना रूप देखती हुई, संमोहन का जाल धारण करती हुई, मानो सौन्दर्य के तालाब में तिरती हुई, मानो नेत्ररूपी तीरों से विश्व को बेधती हुई स्थित थी।

घत्ता—णं णारिरयणु वण्णुज्जल रूवोहामिय पहपसरु।
णारायणु कंचणजडिउ अवसें होसइ महग्घउ ॥१॥

णवजोव्वण-सोहग्ग-मयंधए।
दप्पणवित्तिबंध-णिबद्धए ॥
घरि पइसंतु ण जोइउ वइवरु।
जलियपलित्तु णाइं वइसाणरु ॥
जाम ण दुट्ठहे[1] भग्गमडप्फरु।
ताव ण करमि किंपि कम्मंतरु ॥
एम भणेवि सरोसु गउ तेत्तहे।
थिउ अत्थाणे जणद्दणु जेत्तहे ॥
अब्भुत्थाणु करेवि अवग्गहेहिं।
उच्चासणे वइसारिउ सव्वेहिं ॥
बल-णारायणेहिं पुणु पुच्छिउ।
गुरु एत्तडउ कालु कहिं अच्छिउ ॥
कहइ महारिसि हरिसु वहंतउ।
आयउ कुंडिल-णयरहो होंतउ ॥
जं महिमंडले सयले पसिद्धउ।
बहु-धणधण्ण-सुवण्ण-समिद्धउ ॥
तेत्थु भिप्फु णामेण पहाणउ।
णरवरिंदु अमरिंद समाणउ ॥

घत्ता—धवलच्छि लच्छि तहो गेहिणि पुत्तु रुप्पि रुप्पिणी तणया।
णिहि रूवलच्छहं लायण्णहं गुणसोहग्गहं पारंगया ॥२॥

घत्ता—वह मानो रंग से उज्ज्वल नारीरत्न थी, जिसने रूप से प्रभा के प्रसार को पराजित कर दिया था। नारायण (श्रीकृष्ण) रूपी स्वर्ण से विजड़ित वह अवश्य ही अत्यन्त मूल्यवान् (शोभा युक्त) होगी ॥१॥

नवयौवन और सौभाग्य से मदान्ध तथा दर्पण की चमक में अपने ध्यान को लगानेवाली इस (सत्यभामा) ने घर में प्रवेश करते हुए मुनिवर को नहीं देखा—[यह सोचकर] नारद आग की तरह भभक उठे—"जबतक मैं इस दुष्ट के घमण्ड को चूर-चूर नहीं कर दूँगा तबतक कोई दूसरा काम नहीं करूँगा।" यह विचार कर वह वहाँ गये जहाँ जनार्दन दरबार में थे। शरीर-प्रमाण दूरी से वे उठ खड़े हुए। सबने उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाया। फिर बलभद्र और नारायण ने पूछा—"हे गुरु, आप इतने समय तक कहाँ थे?" महर्षि नारद ने हर्ष प्रकट करते हुए कहा—"उस कुण्डलपुर नगर से आया हूँ जो समस्त महीमण्डल में प्रसिद्ध है। प्रचुर धन-धान्य और स्वर्ण से समृद्ध है। उसमें भीष्म नाम का प्रमुख राजा है। वह नरेश देवेन्द्र के समान है।

घत्ता—धवल आँखोंवाली उसकी लक्ष्मी नाम की गृहिणी है। उससे रुक्मि पुत्र और रुक्मिणी पुत्री है। वह रूप-लावण्य और सौन्दर्य की निधि है तथा गुणों और सौभाग्य के पार पहुँच चुकी है ॥२॥

1. ज. ब. दुट्ठहो।

जाहिं अंगि परिवार-सहाएं ।
मुक्क पयाणउ वम्महराएं ।।
लीलाकमलु-जुयल-चलणयलहिं ।
मणिरयणइं अंगुलेहिं सयलहिं ।।
तोरणथंभ उरुअहं सोहिं ।
राउलु विउल-णियंब पएसहिं ।।
तिवलि-तिपरिहउ णाहिमंडले ।
थण-अहिसेय-कलस वच्छयले ।।
¹रत्तासोय करिल्लकरग्गहिं ।
मयणंकुस णहदप्पणग्गहिं ।।
कंबुउ कंठि-वयणि कोइलकुलु ।
णयणहिं बाणजुयलु पिच्छाउलु ।।
भउंहहिं चावलट्ठि संचारिय ।
सिरिहि सिहंडि-सिहरि पइसारिय ।।
किर परिणेवी कामहो बप्पें ।
किउ आवासु तेण कंदप्पें ।।

घत्ता—उवइट्ठ आसि सिसुवालहो ताव रिसिहिं आएसु किउ ।
जसु सोलह गोवि सहासइं होसइ सो रुप्पिणिहि पिउ ।।३।।

सो मइं कहिउ सव्वु णियवइयरु ।
जहिं अइमुत्तउ आइयउ जइवरु ।।
तहिं उवएसु ताए फुडु लइउ ।
हरि वरइत्तु वुत्तु मयरद्धउ ।।
सेहुव अवसरु होसइ कइयहुं ।

अपने परिवार की सहायता वाले राजा कामदेव ने उसके (रुक्मणी के) शरीर में डेरा डाल दिया है। दोनों चरणतलों में लीलाकमल, समस्त अंगुलियों में मणिरत्न, जाँघों के प्रमाण में तोरणस्तंभ, नितम्ब-प्रदेशों में विशाल राजकुल, नाभिमंडल में त्रिवलि रूपी तीन परिखाएँ (खाइयाँ), वक्षस्थल में स्तनरूपी अभिषेक-कलश, हथेलियों की अंगुलियों में लाल अशोक, नख-रूपी दर्पण के अग्रभागों में कामदेव का अंकुश, कण्ठ में शंख, वाणी में कोमलकुल, नेत्रों में पुंखों से व्याप्त बाणयुगल और भौंहों में धनुर्यष्टि संचारित कर दी गई है। मानो मयूर ने अपनी सम्पूर्ण शोभा का प्रसार पर्वत के शिखर पर किया हो। चूंकि कामदेव के पिता के द्वारा इसका परिणय किया जाएगा, इसलिए कामदेव ने उसके शरीर में आवास कर लिया है।

घत्ता—वह शिशुपाल के लिए दे दी गई थी, परन्तु मुनियों ने आदेश दिया कि जिसकी सोलह हजार गोपियाँ सहायक हैं, वह (कृष्ण) रुक्मिणी का पति होगा ।।३।।

उस रुक्मिणी ने अपना सब वृत्तान्त मुझे बता दिया है कि जब अतिमुक्तक यतिवर आये थे, तब उस (रुक्मणी) ने उनसे उपदेश ग्रहण किया था। कामदेव हरिश्रेष्ठ कहे गए हैं—वह अवसर

---

१. ब प्रति में 'रत्तसोयकरिल्लकरग्गेहिं' यह पंक्ति नहीं है।

करि लग्गइ णारायणु जइयहुं ॥
जाणमि महरिसि वयणु ण चुक्कइ ।
जइ परमेसरु पुरवरु दुक्कइ ॥
जइयहुं णवउज्जाणें णवल्लए ।
सइं लेविणु आवेसइ कल्लए ॥
तो णिक्कलमि समउ जगणाहें ।
होउ होउ सिसुवाल-विवाहें ॥
अच्छउ णियबलेण चउरंगें ।
पट्टणु वेढिवि रुप्पि णिहंगें ॥
तिह कुरु गुरु जिह मिलइ जणद्दणु ।
दुद्दम-दाणव-देह-विमद्दणु ॥

घत्ता—पडपडिम लिहिवि दरिसाविय पंकयणाहहो णारएण ।
णं हियवए विद्धु अणंगएण कुसुमसरासण-धारएण ॥४॥

जिह-जिह चरणजुयलु णिज्झायइ ।
तिह-तिह बाल चिंत उप्पायइ ॥
जिह-जिह उरुपएसु णियच्छइ ।
तिह-तिह मुहदंसणु पिरु इच्छइ ॥
जिह-जिह विउलु णियंबु णिरिक्खइ ।
तिह-तिह णीससंतु ण थक्कइ ॥
जिह-जिह तिवलिमाल णिज्झायइ ।
तिह-तिह जर सव्वंगिउ आवइ ॥
जिह-जिह दिट्ठि थणोवरि थक्कइ ।
तिह-तिह वम्महुं जलणु झुलुक्कइ ॥
जिह-जिह पडिम कंठु दरिसावइ ।

कब होगा कि जब हरि मेरे हाथ लगेंगे । मैं जानती हूँ कि महामुनि का वचन असत्य नहीं होता । यदि परमेश्वर नगर में आते हैं और नये श्रेष्ठ उद्यान में कल स्वयं लेने के लिए आते हैं, तो जग के स्वामी के साथ निकलूँगी । शिशुपाल का विवाह हो तो हो, चतुरंग प्रच्छन्न सेना के साथ रुक्मि नगर का घेरा कर रहे । हे गुरु, ऐसा कीजिए कि जिससे जनार्दन से भेंट हो जाए कि जो दुर्दम दानवों की देह का विमर्दन करनेवाले हैं ।

घत्ता—नारद ने पट-प्रतिमा लिख कर श्रीकृष्ण को दिखायी, मानो कुसुम धनुष धारण करने वाले काम ने हृदय में विद्ध कर दिया हो ॥४॥

(पटचित्र में) जैसे-जैसे वे दोनों चरणों को देखते हैं वैसे-वैसे वह बाला रुक्मिणी उनके लिए चिन्ता उत्पन्न करती है । जैसे-जैसे वे उरु प्रदेश देखते हैं वैसे-वैसे मुख देखने की इच्छा प्रबल हो उठती है । जैसे-जैसे वे विशाल नितम्ब देखते हैं वैसे-वैसे निश्वास लेते हुए वे नहीं थकते । जैसे-जैसे वे त्रिवलि-माला देखते हैं वैसे-वैसे उनके शरीर के सब अंग तपने लगते हैं । जैसे-जैसे उनकी दृष्टि स्तनों पर ठहरती है वैसे-वैसे कामदेव की ज्वाला प्रदीप्त हो उठती है ।

तिह-तिह मुहहो ण काइं वि भावइ ॥
जिह-जिह चिहुर-णिबंधणु जोयउ ।
तिह-तिह हरि संदेहहु ढोयउ ॥
दसमउ थाणु णाहि तें चुक्कउ ।
णं तो मरणावत्थहो ढुक्कउ ॥

घत्ता—ता रुप्पिणिरूव णिएवि बल-णारायण णीसरिय ।
धणुलट्ठिहे ढोइज्जंतहं कामसरहं विहि अणुहरिय ॥५॥

हरिबलएव वेविगय तेत्तहिं ।
रुप्पिणि थिय णंदणवणे जेत्तहिं ॥
किरणावलि घिवइ तरुविंदहो ।
रहवरु ढुक्कु ताम गोविंदहो ॥
मंदरु णाइं सुरेंहिं संचालिउ ।
घंटाकिंकिणिजाल-वमालियउ ॥
गारुडलंछण-लंछिय-धयवडु ।
परणरवर-संगर-सिरि-लंपडु ॥
वारुड-कसतोरविय-सुरंगमु ।
चक्ककारें चूरियउ-जंगमु ॥
रहु सुमणोहरु दीसइ कण्णए ।
णारउ दूरहो दावइ सण्णए ॥
एँहु सो रुप्पिणि कंतु तुहारउ ।
दुद्दमदाणव-देहवियारउ ॥
तो आरूढ वाल वरसंदणि ।
सिय-सोहग्ग देंतु जउ णंदणि ॥

जैसे-जैसे प्रतिमा कष्ठ दिखाती है वैसे-वैसे मुख के लिए कुछ भी अच्छा नहीं लगता। जैसे-जैसे केश निबन्धन देखते हैं वैसे-वैसे हरि सन्देह करते हैं। दसवाँ स्थान नाभि वे चूक जाते हैं, नहीं तो वे मरण अवस्था को पहुँच जाते।

घत्ता—तब चित्रपट में रुक्मिणी का रूप देखकर, बलभद्र और नारायण निकल पड़े। धनुर्यष्टियों पर ढोए हुए कामदेवों के बाणों का उन्होंने अनुकरण किया ॥५॥

कृष्ण और बलराम दोनों वहाँ गये जहाँ उद्यान में रुक्मिणी स्थित थी। वृक्षों के समूह द्वारा किरणावली ग्रहण की जा रही थी। इतने में गोविंद का रथ वहाँ पहुँचा जो मंदर(सुमेरुपर्वत) के समान देवों से संचालित था। घण्टों की किंकणियों (घुंघरुओं) के जाल से मुखर, गरुड़ के चिह्न से अंकित ध्वजपटवाला, शत्रुराजाओं की युद्ध-लक्ष्मी का लंपट, लकड़ी के चाबुक से उत्तेजित अश्वों वाला, चक्कों के चलने की आवाज से जीवों को चूर-चूर करता हुआ सुन्दर रथ कन्या ने देखा। नारद दूर से उसे बताते हैं—"हे रुक्मिणी! यही तुम्हारा वह पति है—दुर्दम दानवों के देहों को चूर-चूर कर देने वाला।" तब बाला वर के रथ पर यदुनन्दन को श्री और सौभाग्य देती हुई चढ़ गयी।

घत्ता—तहिं अवसरि केण वि अक्खिउ दुद्दमदणु-विणिवायणेण।
कुढि लग्गहो जइ ओलग्गहों रुप्पिणि णिय णारायणेण ॥६॥

तो कंदप्पदप्प-दद्दलहो।
साहणु संणज्झइ सिसुवालहो ॥
भिच्चु भिच्चु जो अवसरु सारइ।
सूरु सूरु जो रहधुर धारइ ॥
रहु रहु जो रहसेण पयट्टइ।
करि करि जो अरि करी विहट्टइ ॥
तुरिउ तुरिउ जो तुरउ पयाणइ।
जाणु जाणु जो जाएवि जाणइ ॥
जोहु जोहु जो जोहवि सक्कइ।
रहिउ रहिउ जो रहिवि ण थक्कइ ॥
खग्गु खग्गु खग्गुज्जल धारउ।
चक्कु चक्कु परचक्क-णिवारउ ॥
कोंतु कोंतु परकोंतु-णिवारउ।
सेल्लु सेल्लु परसेल्ल-णिवारउ ॥
सव्वलु सव्वलु सव्वल-भंजणि।
लउडि लउडि लउडाउह तज्जणि ॥

घत्ता—सण्णहेवि सेण्णु सिसुवालहो धाइउ रणरहसुज्जमेण।
महुमहणेण पडिच्छिउ एंतउ [1]आओसमणेण व जमेण ॥७॥

तामपत्त मयमत्तवारणा।
संपहार-वावार-वारणा ॥

घत्ता—उस अवसर पर किसी ने जाकर कहा—"दुर्दम दानवों का विदारण करनेवाले नारायण के द्वारा रुक्मिणी ले जायी जा रही है। यदि पीछा कर सकते हो तो करो" ॥६॥

तब कामदेव के दर्प को चूर-चूर करनेवाली शिशुपाल की सेना तैयार होती है। भृत्य वही है जो अवसर साधता है, शूर वही है जो रथ की धुरा को धारण करता है, रथ वही है जो वेग से दौड़ता है, हाथी वही है जो शत्रु के हाथी को नष्ट कर देता है और तुरंग (अश्व) वही है जो तुरंत प्रयाण करता है, यान वही है जो चलना जानता है, योद्धा वही है जो लड़ सकता है, रथिक वही है जो रथ में (बैठा हुआ) नहीं थकता। खड्ग वही है जो खड्ग के पानी को धारण करता है। चक्र वही है जो शत्रुचक्र का निवारण करनेवाला है, कोंत वही है जो शत्रुकोंत का निवारण करनेवाला है। सेल वही है जो शत्रु-सैल का निवारण करनेवाला है। सव्वल भी वही है जो शत्रु के सव्वल को नष्ट करनेवाला है। लकुट वही है जो लकुट-आयुध का तर्जन करने वाला हो।

घत्ता—शिशुपाल की सेना तैयार होकर युद्ध के लिए हर्ष और उद्यम से दौड़ी। आती हुई उस सेना को क्रुद्धमन यम की तरह श्रीकृष्ण ने चाहा ॥७॥

इतने में मद से मतवाले हाथी पहुँचे जो प्रहार के व्यापार का प्रतिकार करने वाले थे।

---

१. ज, ब—आयोसमणु; स—आवोसमणु।

[1]भद्दलक्खण-गणिय संजुया ।
दससहास [2]परिमाण संजुया ॥
मंद तेत्तिया तेत्तिया मया ।
वीससहास संकिण्णणामया ॥
सयलकाल जे दाणवंतया ।
[3]सुरवारण-बहुदाणवंतया ॥
तरुणिसिहिण-[4]अणुहारि कुंभया ।
[5]जे अंति विहुरे णिकुंभया ॥
धवल-णिद्ध-णिद्दोस दंतया ।
[6]जे कयावि ण कें णवि अदंतिया ॥
महिहरव्व बहुलद्ध-पक्खया ।
[7]कालवट्ठ-णट्ठ-परपक्खया ॥
जलहरव्व जलपूरियासया ।
सायरव्व परिपूरियासया ॥

घत्ता—तहिँ लक्खइं वरतुरंगहं सट्ठिसहासइं रहवरहं ।
सिसुवालरुप्पि रणे विण्णिवि भिडिय विहि वि हरि-हलहरहं ॥८॥

तो रुप्पिणिहें वयणु थिउ कायरु ।
दीसइ सेण्णु णाइं रयणायरु ॥
अहो अहो देव णारायणु ।
हउं हयासय-दुक्खहं-भायणु ॥
पइं भत्तारु लहेवि जयसारउ ।
णवरि परिट्ठिउ वइउ महारउ ॥

महावर्तों से युक्त दस हजार भद्रलक्षण वाले थे। मन्द हाथी भी उतने ही थे और मद हाथी भी उतने ही थे। संकीर्ण नाम के हाथी बीस हजार थे, जो सदैव मदजल देनेवाले थे। सुर-वारण (ऐरावत) के समान प्रचुर मदजल वाले, युवतियों के स्तनों के समान कुंभस्थल वाले थे जो संकट के समय बिना कुम्भस्थल के चलते हैं, जो धवल और निर्दोष दांतों वाले हैं, जो पर्वतों की तरह अनेक पक्ष धारण करनेवाले हैं, कालपृष्ठ धनुष की तरह परपक्ष को नष्ट करनेवाले हैं, मेघों के समान दिशाओं को जलों से आपूरित करनेवाले हैं तथा सागर के समान जिनका आशय परिपूरित है।

घत्ता—वहाँ एक लाख उत्तम घोड़े, साठ हजार श्रेष्ठ रथ थे। युद्ध में शिशुपाल और रुक्मि दोनों से हरि और बलराम दोनों भिड़ गए ॥८॥

तो रुक्मिणी का मुख कातर हो गया। उसे सेना ऐसी दिखाई देती थी जैसे समुद्र हो। (वह बोली) हे देव नारायण ! मैं हताश और दुख की पात्र हूं। विश्व में श्रेष्ठ आप जैसे पति को पाकर भी केवल मेरा भाग्य आकर खड़ा हो गया कि आप दो हैं और शत्रुसेना अनन्त है। क्या

---

१. अ—गलिय संभुया। २. अ—परिणाम। ३. अ—सुरवरघवइ। ४. अ—अनुहरि। ५. अ—जेण अंति विहुरे व कुंभया। ६. अ—जे कयाइ ण किणावि दंतिया। ७. अ—कालयम-बहुलद्धपक्खया।

तुम्हइं विण्णिवि, अणंतउ परबलु।
किं घुट्टेहिं पिज्जइ सायरजलु ॥
भीयभीरुमब्भीसिअ कण्हें।
छिंदिय सत्तताल-जसतण्हें ॥
मुद्दावज्जसयल संचूरिय।
सीमंतिणिहे मणोरह पूरिय ॥
जाणिवि अतुलपयाउ अणंतहो।
पाएहिं पडिय पियअ-कंतहो ॥
जइवि दुद्धरु खलु अविणयगारउ।
रणे रक्खिज्जइ भाइ महारउ।

घत्ता --तो वासुएउ-बलएवहिं अभउ दिण्णु असगाहिणिहे।
तहिं अवसरि पुण्णपहावें पत्त विण्णि वाहिणिहे ॥९॥

जायवसेण्णु असेसु पराइउ।
सरहसु विण्णु परोप्परु साहउ ॥
लइयइं पहरणइं रह वाहिय।
पक्खरिय तुरंग गइंद पसाहिय ॥
दिण्णइं तूरइं कलयलु घोसिउ।
णारउ सहुं सुरेंह परिओसिउ ॥
ताव दमिय-दुद्दम-वणुविंदें।
पूरिउ पंचयण्णु गोविंदें ॥
णियजलयरु सुघोसिउ बलहद्दें।
बहिरिउ तिहुअणु ताहं णिणद्दें ॥
डरिय भुअंग वसुंधरिय हल्लिय।
गिरि-संघाय जाय पासल्लिय ॥

घूटों से समुद्र के जल को समाप्त किया जा सकता है? तब भयभीत उसे कृष्ण ने अभय वचन दिया। यश की तृष्णा रखनेवाले उसने सात तालपत्रों को छेद दिया और हीरे की सम्पूर्ण अंगूठी को चूर-चूर कर दिया। सीमंतनी (रुक्मिणी) का मनोरथ पूरा हो गया। अनन्त (श्रीकृष्ण) का अतुलित प्रताप जानकर वह अपने पति के पैरों पर गिर पड़ी (और बोली)—"यद्यपि मेरा भाई दुर्धर, दुष्ट और अविनय करनेवाला है, तब भी युद्ध में उसकी रक्षा की जाए।"

घत्ता—तब असत् पाने की इच्छा रखनेवाली उसे वासुदेव और बलराम ने अभय वचन दिया। उसी समय पुण्य के प्रभाव से उन दोनों ने सेना प्राप्त की ॥९॥

समस्त यादवसेना पहुंच गयी। उसने हर्षपूर्वक एक-दूसरे का आलिंगन किया। अस्त्र ले लिये गये और रथ हांक दिए गये। घोड़ों को कवच पहना दिए गये; हाथियों को सज्जित कर दिया गया, नगाड़े बजा दिए गये, कलकल घोषित कर दिया गया, देवों के साथ नारद संतुष्ट हुए। तब दुर्दम दानवों के समूह का दमन करनेवाले गोविन्द ने शंख बजाया। बलभद्र ने भी अपना शंख बजाया। उनके निनाद से त्रिभुवन बहरा हो गया। नागराज भयभीत हो उठे, धरती कांप गयी।

झलझल्लाविय सयल वि सायर।
कवडु कवियकाय किय कायर॥
णवगहु डरिय विसामुहु वंकिय।
एयारहु वि रुद्द आसंकिय॥

घत्ता—तिहुअणभवणोयर वासियउ सयलु लोउ आसंकियउ।
रुप्पिणी-विरहु संतत्तउ परपक्खिक्कु ण संकियउ॥१०॥

रुप्पिणि-कारणे अमरिस कुद्धइं।
अमरवरंगण-रइ-रस-लुद्धइं॥
भिडियइं बलइं पबल्लबलयंतइं।
दुद्दम-दंतिदंतहयगत्तइं॥
पडिपहुराहय-णिहय गइंदइं।
किय कुंभय-लोलोक्खलविंदइं॥
दसणमुसल-छंदाविय-पाणइं।
पडिय-विमाण-जाण-जंपाणइं॥
संचाणिय-संदण-संदोहइं।
दुज्जयजोह-परज्जिय जोहइं॥
रंगाविय रणरंग-तुरंगइं।
रुहिरारुणिय-रहोहरहंगइं॥
छिण्ण-कवय खंडिय करवालइं।
सुरवहुखित्तसयंवर-मालइं॥
उब्भडभिउडि-भयंकरमालइं।
पेसिय एक्कमेक्क-सरजालइं॥

गिरिसमूह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया। समस्त समुद्र छलछला उठे। दिग्गजों के शरीर कायर हो गये, नवों ग्रह डर गये और दिशाओं के मुख टेढ़े हो गये। ग्यारहों रुद्र आशंकित हो उठे।

घत्ता—त्रिभुवन के उदर (भीतर) में निवास करनेवाला समस्त लोक आशंकित हो उठा। रुक्मिणी के वियोग से संतप्त केवल शत्रुपक्ष आशंकित नहीं हुआ॥१०॥

क्रुद्ध देवों की उत्तम अंगनाओं के रतिरस की लोभी प्रबलरूप से बलवान् दोनों सेनाएँ रुक्मिणी के कारण भिड़ गयीं, उनके शरीर दुर्दम हाथियों के दाँतों से आहत थे। जिन योद्धाओं के गज प्रतिहारों से हत-आहत थे, जिन्होंने गजकुम्भों को चंचल ऊखलों का समूह बना लिया है, दाँतों के मूसलों से जिनके प्राण छिन्न-भिन्न कर दिए गये हैं, जिनके विमान, यान और जंपाण गिरे हुए हैं, रथों का समूह ध्वस्त कर दिया गया है; दुर्जेय योद्धाओं के द्वारा जिनके योद्धा पराजित हो गए हैं, जिनके घोड़े रणरंग (उत्साह) से रंग दिए गये हैं; जिनके रथ-समूह और चक्र रक्त से रंजित हैं, कवच छिन्न-भिन्न हैं और तलवारें खंडित हैं; जिन पर सुरवधुओं ने स्वयंवर की मालाएँ फेंकी हैं, जो उद्‌भट भौंहों की भयंकर मालाओं वाली हैं, जो एक-एक कर तीरों का जाल फेंक रही हैं।

घत्ता—रणवणे रिउरुक्ख-भयंकरे [1]धणुहसाहाणिवासिएहिं ।
खज्जंति बलइं सरसप्पेहिं तोणा-कोडर-वासएहिं ॥११॥

रणु जाउ लग्गु लग्ग सुहडल्लहं ।
सच्चइ उत्तमुज्ज-सिणिसल्लहं ॥
पिहुरुप्पिहं उम्मय दुमरायहं ।
वेणुदारि रोहिणितणुजायहं ॥
जेत्तहे-जेत्तहे हलहरु ढुक्कइ ।
तेत्तहे-तेत्तहे कोवि ण चुक्कइ ॥
गयवरु गयवरेण वलवट्टइ ।
रहवरु रहवरेण संघट्टइ ॥
तुरउ तुरंगमेण संचूरइ ।
णरवरु णरवरेण मुसुमूरइ ॥
जाणे जाणु विमाणु विमाणें ।
सिल्लए महदुमेण पहाणें ॥
जं करे लग्गइ तेण जि पहरइ ।
सहसु-लक्ख-कोडि वि संहरइ ॥
संकरिसण रणचरिउ णिएप्पिणु ।
वेणुदारु गउ पाण लएप्पिणु ॥

घत्ता—पिहु-रुप्पि रणंगणे जेत्तहे-तेत्तहे रोहिणिउ वलिउ ।
बलकवले कालु णं धाइउ पुणु अण्णत्तहे णं संचलिउ ॥१२॥

रुप्पिणी-भायरेण पिहु जिज्जइ ।
जीवग्गाहु किर जाव लइज्जइ ॥

घत्ता—शत्रुरूपी वृक्षों से भयंकर उस युद्धरूपी वन में धनुष रूपी शाखाओंमें निवास करने वाले तूणीर (तरकस) रूपी कोटरों में रहनेवाले तीर रूपी साँपों के द्वारा सेनाएँ खाली जाती हैं ।।११।।

इस बीच बड़े-बड़े योद्धाओं, सत्यकी, उत्तम ओजोवाले शिनि, शल्य, पृथु, रुक्मी, उम्मद, द्रुमराज, वेणुदारा और रोहिणी के पुत्र में युद्ध होने लगा। जहाँ-जहाँ हलधर जाते हैं, वहाँ-वहाँ कोई नहीं बचता। वह गजवर से गजवर को कुचलता है, रथवर से रथवर को टकरा देता है, घोड़े से घोड़े को चूर-चूर कर देता है, नरवर को नरवर से मसल देता है, यान से यान, और विमान से विमान को नष्ट कर देता है। चट्टान से महाद्रुम और पाषाण से—जो भी हाथ में आता है उससे प्रहार करता है। हजारों-लाखों और करोड़ों का वह संहार करता है, बलराम के रणचरित को देखकर, वे वेणुदार अपने प्राण लेकर भागे।

घत्ता—युद्ध के मैदान में जहाँ पृथु और रुक्मि थे उस ओर बलराम मुड़ा, जैसे सेना को निगलकर काल दौड़ा हो। फिरी वह दूसरी ओर गये ।।१२।।

रुक्मिणी के भाई द्वारा पृथु जीत लिया गया। जब तक उसके जीव का ग्रहण किया जाता

---

१. ज, अ - धणुबाहाणिवासिएहिं । ब—धणुवा साहणिवासिएहिं ।

तहिं अवसरे बलेण हक्कारिउ ।
¹रहवररहवरेण मुसुमूरिउ ॥
राम-रुप्पि रहसेण रणंगणे ।
उत्थरंति घण णाइं णहंगणे ॥
विसहर-विससमेहिं-सरजालेहिं ।
खयदिणमणि-किरण-करालेहिं ॥
सो तालद्धयएण धउ खंडिउ ।
विरहु णिरत्थु करिवि रिउ छंडिउ ॥
उम्मएण दुमराउ णिवारिउ ।
दिण्ण पुट्ठि गउ कहवि ण मारिउ ॥
उत्तमोज्ज सिणिसुयहो पभज्जिउ ।
सच्चइ-बप्पें सल्लु परज्जिउ ॥
चेइ णराहिउ ताम पधाइयउ ।
णारायणु णाराएहिं छाइयउ ॥

घत्ता—सिसुवालहो लोय-परिवालहो करचरणंग-लग्गा ।
जिह देंतहं तिह जुज्झंतहं जंति अलक्खिय मग्गणा ॥१३॥

²णर-कबंध-धर-संयुयं ।
सिय-सरासणो-संजुयं ॥
खरप्पहारदारुणं ।
णवपवालकंदारुणं ॥
समुच्छलिय लोहियं ।
सुरविलसिणि सोहियं ॥
पणच्चिय विहंडयं [भरंडयं] ।
भमिय-भूरिभेरुंडयं ॥

कि तभी बलराम ने उसे ललकारा और रथवर को रथवर से चूर-चूर कर दिया। बलराम और रुक्मि वेग से युद्ध के प्रांगण में इस प्रकार उछलते हैं मानो नभ के आँगन में मेघ हों। विषधर और विष के समान तथा प्रलय के सूर्य की किरणों के समान भयंकर सरजालों से तालार्धध्वजवाले ने ध्वज खंडित कर दिया, और शत्रु को रथ और अस्त्र से विहीन करके छोड़ दिया। उम्मद ने द्रुमराज का प्रतिकार किया, उसने पीठ दी और भाग गया। किसी प्रकार उसे मारा भर नहीं। उत्तम और आर्य शिनिसुत से नष्ट हुए। सत्यकी के पिता से शल्य पराजित हुआ। इस बीच चेदिराज दौड़ा। नारायण भी नाराचों (तीरों) के साथ दौड़ पड़े।

घत्ता—लोक का परिपालन करनेवाले शिशुपाल के हाथों और पैरों के अंग में लगनेवाले तीर—जिस प्रकार देनेवाले के—उसी प्रकार युद्ध करनेवाले के लिए अलक्षित रहते हैं ॥१३॥

जो मनुष्यों के कबंधों से युक्त है, जो तीखे धनुषों से युक्त है, तीव्र प्रहार से दारुण है, नवरत्न प्रवालों के अंकुरों के समान अरुण है, जिसमें रक्त उछल रहा है, जो सुरबालाओं का लोभी है; जिसमें भेरुंड पक्षी नृत्य कर रहे हैं, जिसका लक्ष्मी ने स्वयं वरण किया है, जो जल-थल-नभ

१. अ, ब, ब—रहवरेणंतराले पइसारिउ। २. अ— कायं णवर संयुयं।

सयंवरिय-लच्छियं ।
[1]जल-थल-णह-सच-लंछियं ॥
समुच्चरिय काहहं ।
छिविय दूरि सण्णाहयं ॥
कडत्तरिय देहयं ।
जणिय-पाण-संदेहयं ॥
धरावरियछत्तयं ।
धुय धयावलीछत्तयं ॥
गया अहोमुह गया ।
पहरसंगया णिग्गया ॥
महारुहिर-रंगिया ।
पर तुरंगमा रंगिया ॥
[2]कयावि रहु दूरहा ।
बहु मणोरहा णो रहा ॥
हरिप्पमुह विधूया ।
जउ-णराहिवा विद्धुया ॥

घत्ता—रिजुधम्मलग्गगुण कड्ढिया[3] मोक्खहलावसाण पसरा ।
असरीरभयदेह-पयत्तयणे तवसि व कण्हहो लग्ग सरा ॥१४॥

तहिं अवसरे सारंग वि हत्थें ।
दुद्दम-दाणव-दलण-समत्थें ॥
मुक्कु विअब्भाहिव-सुयकंतें ।
सरवर-णियरु अणंतु अणंतें ॥
पच्छइ जइवि ठइज्जइ अण्णेंहि ।
को गुणवंतु ण लग्गइ कण्णेंहि ॥

और सरोवरों से शोभित है, जिसमें स्वामियों का उद्धार किया गया है। जिसमें कवच दूर फेंक दिया गया है, देह कड़कड़ करके टूट गयी है, जिसमें प्राणों का संदेह हो गया है, जिसमें छत्र धरती पर रख दिए गये हैं, छत्र और ध्वजावलियाँ काट दी गयी हैं, गज अधोमुख होकर चले गये हैं, प्रहारों से संगत होकर चले गए हैं, महारक्त से जो रंग गया है, जिसमें शत्रु के घोड़े रंग गये हैं; कभी रथ दूर थे, मनोरथ बहुत थे परंतु रथ नहीं थे; हरिप्रमुख योद्धा जिसमें कंपित हो उठे, जिसमें यादव राजा उखड़ गये।

घत्ता—जो ऋजुधर्म (सीधे धनुष) लगी हुई डोर से खींचे गये थे, मोक्ष (छुटकारा) रूपी फल के अवसान का प्रसार करनेवाले थे ऐसे तीर प्राण रहित देह के प्रयत्न में तपस्वी की तरह कृष्ण को लगे ॥१४॥

उस अवसर पर जिसके हाथ में धनुष है, जो दुर्दम दानवों का दलन करने में समर्थ हैं, जो विदर्भराज की पुत्री के कान्त हैं ऐसे अनन्त (श्रीकृष्ण) ने अनन्त तीर समूह छोड़ा। दूसरों के द्वारा वे तीर यद्यपि पीछे स्थापित किए जाते हैं, परन्तु कौन गुणवान् कानों से नहीं लगता? यद्यपि

१. अ—जलथलं मह लच्छियं। २. अ—कियावि एहु। ३. अ—कच्छिया।

[1]जइवि मणहरपाणहरु रुच्चइ।
मुट्ठिहे जो ण माइ सो मुच्चइ॥
छंडिय-सवणधम्मु गुणखंडणु।
णिवसइ कासु पासि किर मग्गणु॥
धणु-कड्ढियउ सव्वु आकंदइ।
गुणपणमणेण कवणु ण णंदइ॥
वंकत्तणगुणेण परिछिज्जइ।
को कोडीसरु जो णउ गज्जइ॥
पीडिज्जंतु मुट्ठि को मुयइ।
कड्ढिज्जंति जीवेँ को ण रुयइ॥

घत्ता—सरधोरणि-वइरि-विसज्जिय केसव-सर पहराहिहय।
णं पासु भमेवि सुपुरसहो असइ विलक्खी होइ गय॥१५॥

सो विणिवारिएण सरजालें।
णिसि-पहरणु पेसिउ सिसुवालें॥
छाइउ अंबरविवरु दियंतरु।
एउ ण जाणहुं कहिं गउ दिणयरु॥
फुरियइं तारागह-णक्खत्तइं।
णहसरे वियइं सयवत्तइं॥
णिरवसेसु जगु मायए छाइयउ।
जायवसाहणु णिद्दए लाइयउ॥
उर-कउत्थुह-मणिरयणुज्जोएँ।
कोत्थुण-चंदाइच्चालोएं॥
मेल्लिउ विप्फुरंतु गोइंदें।

वह तीर सुन्दर प्राणों का हरण करनेवाला है, फिर भी अच्छा लगता है। जो मुट्ठी में नहीं समाता उसे छोड़ दिया जाता है। जिसने श्रवण धर्म छोड़ दिया है, जो गुणों का खंडन करनेवाला है ऐसा मग्गण (बाण और याचक) किसके पास ठहरता है ? धणु (धन, धनुष) निकाल लिया गया, सभी आक्रन्दन करते हैं (चिल्लाते हैं)। गुण के प्रणमन से कौन आनन्दित नहीं होता ? वक्रता गुण से भी वह क्षीण हो जाता है, कौन कोटीश्वर (धनुष, करोड़पति) है, जो नहीं गरजता ? पीड़ित किए जाने पर भी मुट्ठी कौन छोड़ता है ? जीव के निकाले जाने पर कौन नहीं रोता।

घत्ता—शत्रु के द्वारा विसर्जित, श्रीकृष्ण के तीरों के प्रहार से अभिहत तीरों की परम्परा उसी प्रकार विलखकर जाती है जिस प्रकार सत्पुरुष के निकट घूमकर असती स्त्री॥१५॥

तब सरजाल के विनिवारण कर देने पर शिशुपाल ने निशाप्रहरण प्रेषित किया। आकाश का विवर और दिगन्तराल आच्छादित हो गया। यह पता नहीं चला कि दिनकर कहाँ गया। तारा-ग्रह और नक्षत्र चमक उठे मानो आकाश के सरोवर में कमल खिल गए हों। अशेष विश्व माया से आच्छादित हो गया। यादव-सेना को नींद आ गयी। जिनके वक्षःस्थल में कौस्तुभ

1. जइवि मणोहरु पाणहुं रुच्चइ।

पण्णय-पहरणु चेइ-णरिंदें ॥
फुरियफणामणि-सोहिय सेहर ।
रणुपूरंतु पधाइय विसहर ॥
णिवडिय गयवर वरगिरि सिहरइं ।
ण तरुवर-वरपल्लव णियरइं ॥

घत्ता—रहवर-चक्कीय-सहासेहिं तुरय-कण्ण-मुह-कोडरिहिं ।
णिवसियाणाराय-भुअंगम जम जिह बहुरूवंतरिहिं ॥१६॥

तहिं अवसरे सरकरपरिहत्थें ।
पेसिउ गारुडत्थु सिरिवत्थें ॥
एक्कु अणेयागारेंहिं धाइउ ।
दसदिसि-चक्कवाले णउ माइउ ॥
पक्खपसारणे किय घणडंबरु ।
[1]दूरदवण-पवणविहुअणहयरु ॥
चलणुच्चालण-चालिय महिहरु ।
कय सयविवर-दुवार-वसुंधरु ॥
सइं पायालहुं जंति विहंगम ।
कहिं णासंतु वराय-भुअंगम ॥
गारुडत्थु जं एम वियंभियउ ।
तो चेइवें थाणु पारंभिउ ॥
पेसिउ अग्गि-अत्थु बलवंतउ ।
णहु महि-एक्कीकरणु-करंतउ ॥
हरिबलबलु समजालो हुयउ ।

मणिरत्न का प्रकाश है और जिनके नेत्र चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाशवाले हैं ऐसे गोविंद ने दिनकर अस्त्र छोड़ा। चेदिनरेश ने पन्नग प्रहरण छोड़ा। जिनके शेखर फणामणियों से शोभित हैं ऐसे विषधर रण को आपूरित करते हुए दौड़े। गजवर और बड़े पहाड़ों के शिखर ऐसे गिर पड़े मानो बड़े-बड़े वृक्षों के वरपल्लव-समूह हों।

घत्ता—रथवरों को हजारों नाभियों, घोड़ों के कानों और मुखों के कोटरों, और अनेक रूपान्तरों में तीर रूपी नाग यम की तरह स्थित थे ॥१६॥

उस अवसर पर तीरों और हाथों की क्षिप्रता से श्रीवत्स ने (कृष्ण ने) गारुड़ अस्त्र प्रेषित किया। वह एक, अनेक आकारों में दौड़ा, दशों दिशाओं में चक्रमण्डल में वह नहीं समाया। पंखों के फैलाव में उसने मेघाडम्बर किया। दूर के दबाव से पवन ने नभचरों को प्रकंपित कर दिया। पैरों के चालन से उसने महीधर को हिला दिया और धरती में सैकड़ों विवर और द्वार बना दिये। जब पक्षी स्वयं पाताल में जाते हैं तो बेचारे साँप कहाँ भागें? गरुड़ास्त्र जब इस प्रकार बढ़ने लगा तो चेदिराज ने स्थान-परिवर्तन प्रारम्भ किया। उसने बलवान् आग्नेय अस्त्र छोड़ा। आकाश और धरती को एक करते हुए हरि की सेना की शक्ति भस्मीभूत हो गयी, जैसे

---

१ ज, अ—दूर दवण पवण विहुअंवरु। ब—दूरद्दमण पवण विहुणंवरु ॥

खंधे चडाविय वइवस-वूयउ ॥

घत्ता—तो वारुणु मुक्कु अणंतेण हुयवहु तेण णिरत्थियउ।
जहिं अप्पउ कहिं मि ण दीसइ तेउ अतेउ होवि थियउ ॥१७॥

वसीकरण-णिवारणा।
अवरवारिणा वारिणा ॥
अहोमुह-विहारिणा।
हुयवहहारिणा हारिणा ॥
णवंबुरुह-वासिणा।
बरहिवासिणा वासिणा ॥
कयं-कुवलयं वसं।
कुवलयं वसज्झायसं ॥
स चेइवइ वासुणा।
किर सरेण दिव्वाउणा ॥
समाहणइ वारुणं।
महुमहेण सावारुणं ॥
अिसंवयणपंकयं।
पलयभाणु-दप्पंकयं ॥
गुणालिय-खुरुप्पयं।
वहइ जं फलं रुप्पयं ॥
सयाइं अय-पुंखयं।
कणयकत्तरीपुंखयं ॥
सिणा पलय-दित्तिणा।
रिउ-विराविणा राविणा ॥
ण तं हणइ कोसिरं।
सहसवार-उक्कोसिरं ॥

कन्धे पर यम का दूत चढ़ गया हो।

घत्ता—तब श्रीकृष्ण ने वारुण अस्त्र छोड़ा। उसने आग्नेय अस्त्र व्यर्थ कर दिया। जिसमें अल्प भी कहीं नहीं दिखाई दिया, तेज अतेज (प्रकाश अंधकार) होकर स्थित हो गया ॥१७॥

जो वशीकरण का निवारण करनेवाला, दूसरों का प्रतिकार करनेवाला, अधोमुख विहार करनेवाला, अग्नि का शमन करनेवाला, नवकमलों में निवास करनेवाला, मयूरों में निवास करनेवाला है, ऐसे उस वारुण अस्त्र से श्रीकृष्ण ने कुवलय (पृथ्वीमंडल) को वश में कर लिया। जो कुवलय से भयभीत है, ऐसा चेदिराज दिव्यायुवाले वायु शर से वारुण अस्त्र को भयंकर रूप से आहत करता है। तब मधुसूदन ने (चक्र उठाया), जो अत्यन्त अरुण, कमल के मुखवाला, प्रलयभानु के दर्प से अंकित, डोरों से जिसमें खुरुपे लगे हुए हैं, जिसमें चाँदी के फलक हैं, लोहे के सैकड़ों अग्रभागवाले बाण हैं, जिनमें स्वर्ण कैंचियों के पुंख हैं। प्रलय की दीप्तिवाले, शत्रु का नाश करनेवाले, मुखर चक्र से आक्रोश करनेवाले, हजार

गयं वसुहवासयं ।
वसुह-वासयं वासयं ॥

घत्ता—सिरु पडिउ कबंधु पणच्चइ वत्तु णियंतु सयं भुवणे ।
बहुकालहो अविणयवंतेण सीसें णमिउ सयंभुवणे ॥१८॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभूएवकए
सिरिरुप्पिणि-अवहरणणामो णवमो सग्गो । ॥९॥

वार गाली देनेवाले, धरती के वास को प्राप्त, धरती के वास को, वास को,

घत्ता—सिर गिरता है, कबन्ध नाचता है, भुवन में मुख स्वयं देखता है। बहुत समय तक अविनीत रहनेवाले सिर ने स्वयं भुवन में नमस्कार किया।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव द्वारा विरचित अरिष्टनेमिचरित में
श्री रुक्मिणी-अपहरण नाम का नौवाँ सर्ग समाप्त हुआ।

दहमो सग्गो

उज्जंत-महागिरिवर-सिहरे जियसिसुवाल-महाहवेण ।
सइं रुप्पिणि-पाणिग्गहणु किउ [1]माहवे मासे माहवेण ॥
परिणेप्पिणु रुप्पिणि महुमहणु ।
परणरवर-समरभरुव्वहणु ॥
पइसरइ स-बंधव-[2]बारवइ ।
जहिं मणसंभवहो वि मणु हरइ ॥
पायाले सुरालए धरणिवहे ।
उवमिज्जइ उवमाणु ण उ तहे ॥
गोविंदेण णयणाणंदयरु ।
रुप्पिणिहिं समप्पियउ णिययहरु ॥
धणुधण्णु सुवण्णु दिण्णु अतुलु ।
तियलोयसारु जीविउ विउलु ॥
कुप्पर[3]-कुंडासय-कुप्पियइं ।
सोवण्णइं थालइं रुप्पियइं ॥
हय गय-रह-चामर-चिंधाइं ।
छत्तइं-वाइत्त-समिद्धाइं ॥
एयइं अवराइं मि जेत्तइं ।
को अक्खिवि सक्कइ तेत्तियइं ॥

ऊर्जयन्त महागिरि के शिखर पर शिशुपाल से महायुद्ध जीतनेवाले माधव ने वसन्त माह में स्वयं रुक्मिणी से विवाह कर लिया। रुक्मिणी से विवाह कर, शत्रुराजाओं के युद्धभार को वहन करनेवाले श्रीकृष्ण भाई बलराम के साथ द्वारावती (द्वारिका) में प्रवेश करते हैं। जहाँ वह नगरी कामदेव के भी मन का हरण करती है। पाताल, सुरालय और धरणीपथ में उसका उपमान नहीं है कि जिससे उपमा दी जाये। गोविन्द ने नेत्रों को आनन्द देनेवाला अपना घर रुक्मिणी के लिए समर्पित कर दिया। उसे अतुल धन-धान्य और सुवर्ण दिया। लोक के सार को जीतनेवाला विपुल जीवन, कोपर, सैकड़ों कुंडा, कुप्पियाँ और सोने-चाँदी के थाल, अश्व, गज, रथ, चामर, चिह्न, बाजों से समृद्ध छत्र आदि और भी जो दूसरी वस्तुएँ दीं, उन सबका का वर्णन कौन कर सकता है?

१. अ—माहवहो मासहो। २. अ—चामराइं। ३. अ—कुंडाइं सकुप्पइं।

घत्ता—सच्छायइं अंगइं रुप्पिणिहे सच्चहे जायइं सामलइं।
णियचरियहिं को पावइ णवि रिसि-अवमाणकम्महो फलइं ॥१॥

तो वासुएव-बलएव जहिं।
पडिआयउ णारउ आउ तहिं ॥
हरि अच्छइ एक्कु कण्णरयणु।
[1]इंदारविंद-सण्णिह-वयणु ॥
वेयड्ढहो दाहिण-सेढियहे।
विज्जाहरपुर-परिवेढियहे ॥
जंबुउरणाहहो जंबवहो।
पिय जंबुसेण णामेण तहो ॥
सुय जंबुमालि सुय जंबवइ।
कल-कोइल-कंठि-मरालगइ ॥
तो कण्हें दूउ विसज्जियउ।
आयउ तियरयण-विवज्जियउ ॥
णियमणे चिंतावइ महुमहणु।
किण्ण कियउ कण्णपाणिग्गहणु ॥
उववासें हरिबलएव थिय।
वरमंताराहणं तुरिउ किय ॥

घत्ता—तो अक्खिलदेवें तुट्ठिएण दिण्णउ णहयलगामिणिउ।
सीहाउह-सारंगाउहं-हरिवाहिणि-खग्ग-वाहिणिउ ॥२॥

ते गरुड-महद्धय-तालद्धय।
वेयड्ढहो दाहिणसेढि गय ॥

घत्ता—रुक्मिणी के अंग सुन्दर कांतिवाले हो गए और सत्यभामा के अंग काले पड़ गए। मुनि के अपमान के कर्म का फल, अपने चरित (आचरण) से कौन नहीं पाता ॥१॥

तब जहाँ वासुदेव और बलदेव थे, नारद फिर वहाँ आये और बोले—"हे कृष्ण! एक विशाल मुख-कमलवाला सुन्दर कन्यारत्न है। विद्याधरों के नगरों से घिरे हुए विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में जम्बुपुर नगर के स्वामी जम्बु की जम्बुसेना नाम की पत्नी है। उसका पुत्र जम्बुमाली और पुत्री जम्बुवती है जो कोयल के समान स्वरवाली और हंस के समान गतिवाली है। तब श्रीकृष्ण ने अपना दूत भेजा, जो स्त्रीरूपी रत्न के बिना आ गया। मधुसूदन अपने मन में सोचते हैं कि उसने कन्यारत्न का पाणिग्रहण क्यों नहीं किया? श्रीकृष्ण और बलराम दोनों उपवास करने के लिए बैठ गये और उन्होंने तुरन्त श्रेष्ठमन्त्र (णमोकार मन्त्र) का आराधन किया।

घत्ता—तब यक्षदेव ने सन्तुष्ट होकर आकाशतलगामिनी, सिंहवाहिनी और खड्गवाहिनी विद्याएँ श्रीकृष्ण और बलराम को प्रदान कीं ॥२॥

वे गरुड़ध्वज और तालध्वजवाले (श्रीकृष्ण-बलराम) विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में

---

१. अ—सुंदारविंद-सुन्दर-वयणु।

अवहरिय कण्ण कुविउ लग्ग पहु।
रणु जाउ परोप्परु दुव्विसहु॥
पाडिउ सेण्णु जंबुक्हेण।
जिउ जंबुमालि सीराउहेण॥
महुचंडु गएण रणुज्जएण।
जंबउ गोविंदें दुज्जएण॥
विज्जाहरि परिणिय जंबवइ।
पइसारिय पुरवरे वारवइ॥
अण्णहिं दिणि णयणाणंदयरे।
सुमणोहरे वीयसोयणयरे॥
पहु चंदमेरु चंदमइ तिय।
किय कण्णहे तेहिं विवाह-किय॥
आणेप्पिणु दिण्णु गोरि हरिहे।
[1]सुहुं थियइ दारावइ-पुरिहे॥

घत्ता—लक्खण सुसीम गंधारितिय सस लहुयारी रेवइहे।
पउमावइ परिणिय महुमहेण पुण्ण मणोरह देवइहे॥३॥

इय अट्ठमहाएविहिं सहियउ।
अण्णु वि उरसिरिए परिग्गहउ॥
भुज्जंतु रज्जु थिउ महुमहणु।
धण-धण्ण-सुवण्ण-समिद्ध जणु॥
घरे-घरे णं कामधेणु सवइ।
घरे-घरे णं धण-दव्वु वहइ॥
घरे-घरे वसुहार णाइं पडइ।
घरे-घरे चिंतियउ समावडइ॥

गये और कन्या का अपहरण किया। विद्याधर राजा पीछे लगा। दोनों में परस्पर अत्यन्त असह्य युद्ध हुआ। जंबुकह ने सेना को परास्त कर दिया। बलराम ने जम्बुमाली को जीत लिया। युद्ध में उद्यत दुर्जेय गोविन्द ने गदा से महाप्रचंड जम्बू को जीत लिया और विद्याधरी जम्बुवती का पाणिग्रहण कर लिया, तथा उसको द्वारावती में प्रवेश कराया। दूसरे दिन नयनानन्द, अत्यन्त सुन्दर वीतशोक नगर में राजा चन्द्रमेरु और उसकी पत्नी चन्द्रमती ने अपनी कन्या को ब्याह दिया और गौरी लाकर श्रीकृष्ण को दे दी। द्वारावती में वे सुख से रहने लगते हैं।

घत्ता—लक्ष्मणा, सुसीमा और गन्धारी तथा रेवती की छोटी बहन पद्मावती से श्रीकृष्ण ने विवाह किया। देवकी का मनोरथ पूरा हो गया॥३॥

इस प्रकार आठ महादेवियों सहित, तथा लक्ष्मीदेवी के साथ मधुसूदन राज्य का भोग करते हुए रहने लगते हैं। लोग धनधान्य और सुवर्ण से समृद्ध हैं। घर-घर में मानो कामधेनु दुही जाती है। घर-घर में धनद्रव्य बहता है। घर-घर में जैसे रत्नों की वर्षा होती है। घर-घर में मन-

1. ब—सुहुं थियइं दारावइ पुरिहे।

अण्णहिं दिणे उववणे पइसरेवि।
केलिहरे सुरयलील करेवि॥
मंडेप्पिणु रुप्पिणी अल्लविय।
मणिवाविहे पासे परिट्ठविय॥
मायाविणि अणिमिस-दिट्ठी किय।
वणदेवय णं पच्चक्ख थिय॥
उप्पाइय कावि अउव्वसिय।
णउ णावइ जिह सामण्णतिय॥

घत्ता—जं तहिं उव्वरिउ पसाहणउ तं सच्चहे उवढोइयउ।
देवय पच्चक्खी हुय महु किं अच्छरिउ ण जोइयउ॥४॥

भट्टिएण भाम भामिय भवणे।
पइसारिय पवरुज्जाणवणे॥
अप्पणु दुट्ठु मणोहरए।
थिउ पल्लवबहल-लताहरए॥
जहिं रुप्पिणि-रूवहो पारु गय।
णं मयणुब्भिय-सोहग्गधय॥
लक्खिज्जइ भामिणि भामियए।
घण-पीणपओहर-णामियए॥
कर-चरणाणण-लोयण-कमले।
तरमाण णाइं लायण्णजले॥
भज्जइ व मज्झि तणुयत्तणेण।
ण णिहालइ महि णवजोव्वणेण॥
पेक्खेप्पिणु सच्चहाम णमिया।
जइ तुहुं कावि देवय सच्चियए॥

चाही चीजें आ जाती हैं। दूसरे उपवन में प्रवेश कर तथा केलिगृह में कामक्रीड़ा कर, श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को सजाकर अलक्तक लगा दिया और उसे मणिवापिका के पास स्थापित कर दिया। उस मायाविनी ने अपनी दृष्टि अपलक कर ली, और ऐसी स्थिति हो गयी जैसे साक्षात् वनदेवी हो। उसकी अनोखी ही शोभा थी। वह सामान्य स्त्री की तरह दिखायी नहीं देती थी।

घत्ता—जब रुक्मिणी का लेप (प्रसाधन) पूरा हो गया तो मधुसूदन सत्यभामा के पास पहुँचे और बोले—"मुझे देवी प्रत्यक्ष हुई हैं। क्या तुमने यह आश्चर्य नहीं देखा॥४॥

मधुसूदन ने सत्यभामा को भवन में घुमाया और फिर विशाल उद्यानवन में घुमाया। वह स्वयं प्रचुर पत्तोंवाले सुन्दर लतागृह में बैठ गये, कि जहाँ रुक्मिणी रूप की सीमा पार कर स्थित थी, जैसे वह कामदेव की सौभाग्य ध्वजा हो। अपने सघन और स्थूल स्तनों से नमित हुई, सत्यभामा ने उसे देखा जैसे वह कर, चरण, मुख और लोचनरूपी कमलोंवाले सौन्दर्य के जल में तिर रही हो। कटिभाग की कृशता के कारण भग्न होती हुई-सी वह नवयौवन के कारण धरती को नहीं देखती। सत्यभामा ने उसे देखकर नमन किया, "यदि तुम सचमुच की कोई देवी

तो महु सोहग्ग देहि अचलु ।
कुसवत्तिहे दूहवह महाहलु ॥
घत्ता—परमेसरि अणुदिणु होइ महु आणवडिच्छउ महुमहणु ।
सीसु व आयरियं पायवडिउ [1]पोढत्त-पडिउ जिह थेरथणु ॥५॥

जं सुंदरि एम [2]पभणंति ठिय ।
तो जायवणाहें विहस किय ॥
मायण्हो फेडहि अप्पाणिय ।
एह रुप्पिणि देवय कहिं तणिय ॥
विज्जाहरि मुद्धं णव-वहुडियहे ।
किह णमिय सवत्तिहे लहुडियहे ॥
हरिवेहु सुणेवि तणु-तणुयडिय ।
सच्चहें रुप्पिणि पाएहिं पडिय ॥
तहिं अवसरि रिउ-मइ-मोहणेण ।
पट्ठविउ लेहु दुज्जोहणेण ॥
महएविहिं बिहिं वि पलंबभुउ ।
जो उप्पज्जेसइ पढमसुउ ॥
तहो तणय देसु हउं अप्पणिय ।
संभावण एह महु्त्तणिय ॥
जं वायणु बोल्लु सुमणोहरेहिं ।
उण्णयथणपीण-पओहरेहिं ॥
घत्ता—उप्पण्णहो सुयहो पहिल्लाहो कुरुव-तणय परिणंताहो ।
णिपुत्ती सीसें मुंडिएण हिट्ठि ठवेवि ण्हंताहो ॥६॥

हो तो अचल सौभाग्य दो और मेरी कुत्सित सौत को दुर्भाग्य का महाफल दो ।

घत्ता—हे परमेश्वरी, मधुसूदन प्रतिदिन मेरी आज्ञा के माननेवाले हों। जिस प्रकार शिष्य आचार्य के पैर पड़ता है, या जिस प्रकार वृद्धा के स्तन प्रौढ़ता से च्युत हो जाते हैं, उसी प्रकार वे मेरे पैरों में पड़े रहें ॥५॥

जब सुन्दरी सत्यभामा इस प्रकार कहती हुई स्थित थी, तो यादवनाथ ने उपहास किया, "तुम अपनी मृगतृष्णा छोड़ दो, यह रुक्मिणी है, देवी कहाँ की ? हे विद्याधरी, तुमने छोटी नव-वधू अपनी सौत को क्यों नमन किया ?" श्रीकृष्ण का उपहास सुनकर छोटी रुक्मिणी सत्यभामा के पैरों पर गिर पड़ी। उस अवसर पर शत्रु की मति का मोहन करनेवाले दुर्योधन ने लेख भेजा कि दोनों महादेवियों (सत्यभामा और रुक्मिणी) में से जिसके लम्बी बाहुओंवाला पहला पुत्र उत्पन्न होगा उसे अपनी कन्या दूंगा, यह मेरा संकल्प है। तब जिनके उन्नत और स्थूल पयोधर हैं ऐसी उन सुन्दर देवियों में यह बात हुई (यह तय हुआ)।

घत्ता—पहले उत्पन्न हुए, दुर्योधन की कन्या से विवाह करते हुए स्नान करनेवाले पुत्र के नीचे, निपूती मुण्डित सिर से रखी जायेगी ॥६॥

१. अ—पोरत पडिउ। २. अ—एव चवन्ति।

बहुदिवसहिं भिक्खराय-सुयएँ।
रयस्सलाएँ चउत्थतोयचुयएँ॥
जो पच्छिम-पहरे णिरिक्खियउ।
सो सिविणउ विप्पमुहें अक्खियउ॥
णारायण दिट्ठु विमाणु मइं।
हरि भणइ लहेवउ पुत्तु पइं॥
विज्जाहर-जायव-कुलतिलउ।
सोहग्गरासि-गुणगणणिलउ॥
भामए वि एम सिविणउ कहिउ।
सुउ होसइ एक्कोयर-सहिउ॥
बहु दिणेंहिं महंतेंहिं सोहलेंहिं।
णवमाह-पुण्ण-सहुं-दोहलेंहिं॥
एक्कहिं दिणि बेवि पसूइयउ।
पट्ठवियउ णिय-णिय दूइयउ॥
पहिलारउ तुट्ठु पहु उट्ठियएँ।
कमलोयर-चलणंतट्ठियएँ॥
वद्धाविउ रुप्पिणिदूइयएँ।
अवरएँवि सिरंतरि हूइयएँ॥
जउ णंदउ-णंदणु जाउ तउ।
विहसंतु अणंतु तुरंत गउ॥

घत्ता—पहिलउ पेक्खंतहो पुत्तमुहुं जं सुहु तहिं दामोयरहो।
चक्कक्ककित्ति-वद्धावणए दुक्करु तं भरहेसरहो॥७॥

पेक्खेप्पिणु रुप्पिणि-सुयवयणु।
गउ सच्चहामघरु महुमहणु॥

बहुत दिनों बाद, चौथे दिन जल से स्नान करनेवाली रजस्वला भीष्मराज की पुत्री रुक्मिणी ने रात्रि के पश्चिम प्रहर में जो सपना देखा वह सवेरे बताया, "हे नारायण, मैंने विमान देखा है।" श्रीकृष्ण कहते हैं, "तुम पुत्र प्राप्त करोगी जो विद्याधरों और यादवों के कुलों का तिलक, सौभाग्यराशि और गुणसमूह का घर होगा।" सत्यभामा देवी ने भी इसी प्रकार सपना बताया। (कृष्ण ने कहा) भाई सहित एक पुत्र होगा। बहुत दिनों बाद बहुत बड़े सोहरों और दोहलों के साथ नौ माह पूरे हुए। एक ही दिन दोनों ने पुत्रों को जन्म दिया और उन्होंने अपनी-अपनी दूतियों को भेजा। उठने पर स्वामी (कृष्ण) के जिनमें कमल चिह्न हैं ऐसे चरणों के निकट बैठी हुई, रुक्मिणी की दूती के बधाई देने पर पहले सन्तुष्ट हुए। दूसरी दूती ने सिर के पास (कहा), "आपकी जय हो, आप प्रसन्न हों, आपके पुत्र हुआ है।" हँसते हुए श्रीकृष्ण तुरन्त गये।

घत्ता—पहले पहल पुत्र का मुख देखते हुए वहाँ दामोदर को जो सुख हुआ, वह चक्ररत्न और पुत्र अर्ककीर्ति की बधाई में भरतेश्वर को भी कठिन था॥७॥

रुक्मिणी के पुत्र का मुख देखकर मधुसूदन सत्यभामा के पास गये। उस अवसर पर वृद्ध

तहिँ अवसरे धूमकेउ असुरु ।
दढ-कठिण-[1]भुयजुयल-वियड-उरु ॥
णहे जंतहो तहो विमाणु खलिउ ।
णउ [2]चरमसरीरोवरि चलिउ ॥
जाणिउ विहंगणाणहो बलेण ।
हउं चिर [3]परिहविउ एण खलेण ॥
अवहरिउ कलत्तउ महत्तणउ ।
तं [4]वइरि हणेव्वउ मइं अप्पणउ ॥
अइणिद्द महाएविहे करेवि ।
सो बालु विमाणहो अवहरेवि ॥
थं गरुडेण णायकुमारु णिउ ।
अइभूमि गंपि चिंतंतु थिउ ॥
णउ आयहो जीविउ अवहरमि ।
सयमेव मरइ जिह तिह करमि ॥

घत्ता—गउ बालहो उप्परि देवि सिल [5]वइवसणयरपल्लि तहिँ ।
तहिँ कालि कालसंवरु गयणे सुक्कें[6] कीलिउ मेहु जहिँ ॥८॥

[7]खयरवणि तक्खसिल-सिहरि मुक्क ।
विज्जाहरु संवरु ताम तहिँ दुक्क ।
तो मेहकूड-उर-सामियहो ।
सकलत्तहो णहयलगामियहो ॥

कठिन भुजयुगल और विकट उरवाला धूमकेतु विद्याधर था। आकाश में जाते हुए उसका विमान स्खलित हो गया, वह चरमशरीरी के ऊपर नहीं चल सका। विभंग अवधिज्ञान के बल पर उसने जान लिया कि इस दुष्ट के द्वारा पूर्वभव में मेरा पराभव किया गया था। इसने मेरी पत्नी का अपहरण किया था, इसलिए मुझे अपने इस दुश्मन को मारना चाहिए। महादेवी (रुक्मिणी) को गहरी नींद में कर, उस बालक का विमान में अपहरण कर, वह उसे उसी प्रकार ले गया जिस प्रकार गरुड़ साँप के बच्चे को ले गया हो। मरघट (अतिभूमि) पर पहुँचकर वह विचार करता है—मैं इसके जीवन का अपहरण नहीं करूँगा, वैसा करूँगा जिससे यह खुद मर जाये।

घत्ता—वह बालक के ऊपर वहाँ चट्टान रखकर चला गया कि जहाँ वइवस नगर की बस्ती थी। उस अवसर पर कालसंवर आकाश में उसी प्रकार कीलित हो गया, जिस प्रकार शुक्र नक्षत्र द्वारा 'मेघ' कील दिया जाता है ॥८॥

खदिरवन में तक्षशिला में उसे छोड़ दिया। इतने में विद्याधर संवर वहाँ पहुँचा। तब मेघकूट नगर के स्वामी, आकाशगामी, पत्नीसहित विद्याधर कालसंवर का विमान कुमार के

1. अ—भुयगलु। 2. अ—चमरि। 3. अ—परिभमिउ। 4. अ—वयरु। 5. अ—वइवस-णयर पयोलि णिहु। 6. अ—कीलिउ मेहु जिहु। 7. ये दो पंक्तियाँ अ प्रति में नहीं हैं।

ण कुमारोवरि विमाणु चलइ ।
अवुहवयणु इव वार-वार खलइ ॥
जाणहो वं ओयरिउ वंकियहो ।
मुत्ताहल-मालालंकियहो ॥
दीसइ ससंत सिल ताम तहिं ।
मयरद्धय चरमसरीरु जहिं ॥
सो उवलु छित्तु वें चप्पियउ ।
सिसु कंचणमालहें अप्पियउ ॥
ण समिच्छिउ ताएँ वियक्खणएँ ।
णव-कोमल-कमल-दलक्खणएँ ॥
अहिणायइं णयणाणंदणहं ।
जहिं पंचसयइं वरणंदणहं ॥
तहिं आयहे कवणु पहुत्तणउं ।
तेणमइ वेयारमि अप्पणउं ॥

घत्ता—तो कडुढेवि कण्णहो कणयदलु सिरिजुवरायपट्टु वधिउ ।
इहु सामिउ पयहो महारहहो एण पियहे मणु संधविउ ॥६॥

तो मणे परितुट्ठ पहिट्ठाइं ।
विण्णि वि णियणयरु पइट्ठाइं ॥
किर गूढगब्भु उप्पण्णु सुउ ।
पुरे मेहकूडे आणंदु हुउ ॥
पज्जण्णकुमारु णाम कियउ ।
रुप्पिणिहरे णं मसाणु थियउ[1] ॥
सा जाम विउज्झइ ताम णवि ।

ऊपर नहीं चलता, मूर्ख के शब्दों की तरह बार-बार स्खलित होता है। जब वह अपने टेढ़े, मुक्तामालाओं से अलंकृत विमान से उतरा तो उसे वहाँ शिला हिलती (साँस लेने से) हुई दिखायी दी कि जहाँ चरमशरीरी कामदेव(प्रद्युम्न) था। जिस पत्थर ने उसे चाँप रखा था, वह फेंक दिया गया, और शिशु कंचनमाला को दे दिया। नव कमलदल के समान आँखोंवाली विलक्षण उसने उसे नहीं चाहा। (वह बोली)—जहाँ नेत्रों को आनन्द देनेवाले पाँच सौ श्रेष्ठ पुत्र हों वहाँ इसकी क्या प्रभुसत्ता होगी इसलिए मैं इसे अपना नहीं समझती।

घत्ता—तब कर्ण कनकदल कर विद्याधर ने बालक को श्री युवराज-पट्ट बाँध दिया, यह प्रजा का और मेरा स्वामी है—इस प्रकार प्रिया के मन को ढाँढस बँधाया ॥६॥

मन-ही-मन सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर वे दोनों अपने नगर में प्रविष्ट हुए। प्रच्छन्न गर्भवाला बालक उत्पन्न हुआ, इससे मेघकूट नगर में आनन्द छा गया। बालक का नाम प्रद्युम्नकुमार रखा गया। रुक्मिणी के घर जैसे मरघट आ गया। वह (रुक्मिणी) जब जागी तो उसने पुत्र नहीं देखा। वह जोर से चीखी—'धनुष और हल करकमल में धारण करने वाले हरि

1. थियउ

ओइउ जायवकुलणहयरवि ॥
धाइउ धाइउ हलहरु ...

धाहाविउ धावहो हरिबलहो ।
सारंग-सीरहर-करयलहो ॥
सिणि-सच्चइ-पिहु-पसेण-णरहो ।
सिवतणय-समुद्दविजय-जरहो ॥
अक्खोह थिमिय सायरवरहो ।
हिम-हरि-विजयाचल-णरवरहो ॥
धारण पूरण अहिणंदणहो ।
वसुएव माम महु णंदण हो ॥

घत्ता—कुडे लग्गहो केण वि अवहरिउ बालु कमलपुंडरियक्खु ।
तुम्हहं सव्वहं पेक्खंताहं गउ महु आसा-पोट्टलउ ॥१०॥

हा केण पुत्तु महु अवहरिउ ।
णिरुवमगुण-रयणालंकरिउ ॥
हा एक्कसि दावहु मुहकमलु ।
पण्हविउ पुत्त पिउ थणजुयलु ॥
उव्वलिउ-मलिउ ण णिहालियउ ।
ण सणेहें लालिउ-पालियउ ॥
मइं पावहं दुक्खहं भायणए ।
णिहयए हयएं अलक्खणए ॥
दुद्दमदाणवबल-महणाहो ।
उच्छंगे ण दिट्ठु जणद्दणहो ॥
उच्चाएवि लइउ ण हलहरेण ।
णालिंगिउ अम्हहु कुलहरेण ॥
ण दसारुहेंहिं परिचुंबियउ ।

और बलभद्र दौड़ो। सिनि, सत्यकी, पृथु, प्रसेन, अर्जुन, शिवा के पुत्र समुद्रविजय जरत्कुमार अक्षोभ्य, स्तमित, सागरवर, हिमगिरि, विजय, अचल, नरश्रेष्ठ धारण, पूरण और अभिनंदन, ससुर वसुदेव मेरे पुत्र के पीछे लगो। आप सब लोगों के देखते-देखते मेरी आशाओं की पोटली चली गयी।

हा किसने मेरे अनुपम गुणरूपी रत्नों से अलंकृत पुत्र का अपहरण किया ? हा एकबार उसका मुखकमल दिखाओ। हे पुत्र, स्तनयुगल से दूध झरता है तुम पिओ। न उबटन किया न मला और न देखा, न स्नेह से पालन-पोषण किया। पापों और दुःखों की भाजन, भाग्यहीन आहत और लक्षणहीन मैंने दुर्दम दानव-बल का मर्दन करनेवाले जनार्दन की गोद में उसे नहीं देखा। हलधर ने उछालकर उसे नहीं लिया और न हमारे कुलधर ने उसका आलिंगन किया। और न दशार्हों ने उसे चूमा। किसी ने मेरे पुत्र को मार डाला है, उसके प्राण लेते हुए

केण वि महु पुत्तु विहंडियउ[1] ॥
तहो जीविउ लितहे कुम्मइहे ।
किह सीसु ण फुट्टउ पयावइहे ॥

घत्ता—तहिं अवसरे धीरिय महुमहेण पुत्तु तुम्हारिउ ।
तहो पावहो दुक्कियगारहो सणि अवलोयणे अज्जु थिउ ॥११॥

ण मरइ तुह णंदणु जइवि णिउ ।
केवलिहिं आसि आएसु कियउ ॥
होसइ विअब्भवइ-सुयहे सुउ ।
मम्महु सुरकरिकर-पवर-भुउ ॥
दुग्गेज्झु अवक्खय-णट्ठउ वि ।
ण मरइ सुरिंद-वज्जाहउ वि ॥
जाएवि जाएसइ कंति कहिं ।
हउं हलहर बेवि सहाय जहिं ॥
तहिं अवसरि णवर समावडिउ ।
आयासहो णारउ णं पडिउ ॥
मब्भीसिय तेण तुरंतएण ।
किं रोवहि मइं जीवंतएण ॥
अइमुत्तमहारिसि सिद्धि गउ ।
जिणु अणुवओइयउ ण कहइ तउ ॥
हउं ताम गवेसमि सयल-महि ।
सो जाम ण दिट्ठु गुण-मणि-उवहि ॥

दुर्मति प्रजापति का सिर क्यों नहीं फूट गया ?

घत्ता—उस अवसर पर श्रीकृष्ण ने उसे (रुक्मिणी को) धीरज बंधाया कि तुम्हारा पुत्र जिसके भी द्वारा ले जाया गया है, उस दुष्ट अन्यायकारी को देखने में मैं आज शनि के समान हूँ।

तुम्हारा पुत्र मरेगा नहीं, यद्यपि उसका अपहरण किया गया है । केवलज्ञानियों ने ऐसा आदेश किया है कि विदर्भपति की कन्या का पुत्र कामदेव ऐरावत के सूंड के समान प्रबल बाहुओंवाला, अपक्षय से नष्ट होने पर दुर्ग्राह्य, देवेन्द्र के वज्र से आहत होने पर भी नहीं मरेगा । हे कांते ! जाकर भी, वह कहाँ जाएगा कि जहाँ मैं और हलधर उसके सहायक हैं । उस अवसर पर मात्र यह बात हुई, कि नारद आकाश से आ टपके । तत्काल उन्होंने अभय वचन दिया कि मेरे होते हुए तुम क्यों रोती हो ? अतिमुक्तक मुनि ने सिद्धि प्राप्त कर ली है । जिनेन्द्र भगवान् अनुपयोगी कथन नहीं करते । मैं पृथ्वी पर तब तक खोज करूंगा कि जब तक गुण रूपी मणियों के समुद्र उसे नहीं देख लेता ।

१. अ—विडंवियउ ।

घत्ता—गउ एम भणेप्पिणु देवरिसि पुव्वविदेहे णहंगणेण ।
सीमंधरसामि-समोसरणु जहिं सयंभूसियउ सुरयणेण ॥१२॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय-सयंभूएवकए
पज्जुण्ण-हरणं णामेण दहमो सग्गो ॥१०॥

घत्ता—इस प्रकार कहकर देवर्षि नारद आकाश के आँगन से पूर्व विदेह के लिए चल दिये कि जहाँ देववरों ने सीमंधर स्वामी के समोसरण को स्वयं अलंकृत किया था।

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव द्वारा विरचित
नेमिनाथचरित में प्रद्युम्नहरण नाम का
दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ॥१०॥

एयारहमो सग्गो

ताम कालसंवरणिवहो उट्ठु व रज्जुपरचक्कें ।
एक्करहेण जि वम्महेण हउ तिमिरु णाइं तवणक्कें ॥

सो ताम[1] जुवाणभावें चडियउ ।
णं सुरकुमार सग्गहो पडियउ ॥
सुमणोहरि मेहसिगणयरे ।
हरितणउ कालसंवरहो घरें ॥
वड्ढिउ सोलहवरिसइं गयाइं ।
जायइं अंगइं विक्कममयाइं ॥
सोहग्ग-महामणि-रयणणिहि ।
तहो को णिव्वण्णइ रूवणिहि ॥
जसु केरा [2]परवड्ढिय-पसरा ।
तिहुअण-असेस लगगंति सरा ॥
सो मयर केउ सइं अवयरिउ ।
कर-चरणाहरणालंकरियउ ॥
परिसक्कइ दुक्कइ जहिं जि जहिं ।
तरुणीयणु सम्मइ तहिं तहिं जि तहिं ॥
दीहरलोयण-सर-पहर-हय ।
णियजणणि जि वहो अहिलासु गय ॥

इतने में शत्रुसमूह ने कालसंवर का राज्य छीन लिया। एकरथी कामदेव(प्रद्युम्न)ने उसे उसी प्रकार पराजित कर दिया, जिस प्रकार तरुण सूर्य अंधकार को पराजित कर देता है। कुमार इस बीच यौवन भाव को प्राप्त हुआ, मानो कोई देवकुमार स्वर्ग से आ पड़ा हो। सुन्दर मेघकूट नगर में, काल संवर के घर हरिपुत्र प्रद्युम्न बड़ा होने लगा। सोलह वर्ष बीत गए। जिसके अंग पराक्रम से परिपूर्ण हो गए, जो सौभाग्य का महामणि और रूप की निधि था, प्रसार को प्राप्त हुए जिसके तीर समस्त त्रिभुवन को पीड़ित करते हैं, ऐसा कामदेव स्वयं अवतरित हुआ है। हाथों और पैरों में गहनों से शोभित वह जहाँ जहाँ जाता या पहुँचता, वहाँ वहाँ युवतीजन आर्द्र हो उठतीं। लम्बे नेत्र रूपी तीरों से आहत उसकी अपनी माता(कंचनमाला) की उस पर इच्छा हो गयी।

१. अ—ताण। २. अ—परविड्ढिय-पसरा।

घत्ता—कामें कामुक्कोयणेण कलकोयल [1]मायमहे ।
अंगहों लाइउ रणरणउं अत्थक्कए कंचणमालहों ॥१॥

परमेसरि पीण पओहरीहिं ।
बोल्लइ समाणु पियसहयरीहिं ॥
हलि लवलि-लवंगिए उप्पलिए ।
हलि कंकोलिए जाइफलिए ॥
कप्पूरिए कुंकुमकद्दमिए ।
नवकुसुमिए मउलिए पल्लविए ॥
किण्णरिए किसोरि-मणोहरिएँ ।
आलाविणि-परहुय-महुयरिएँ ॥
महु चित्तहो [2]भुंभुलभोलाहो ।
पडिहाइ ण झुणि हिंदोलाहो ॥
णउ भास हें विविह पयारियहें ।
णउ कउहहे ओसाहारियहे ॥
णउ टक्कराय-टक्कोसियहे ।
सामीरय-मालय-कोसियहे ॥
लइ पंचमु पंचमु-कामसरु ।
जो विरहिणिमण-संतावयरु ॥

घत्ता—विघणसीलउ-मारणउ सहि सत्थे पंचमु गाइयउ ।
कंचणमालहे वच्छयले वम्महेण णाइं सरु लाइयउ ॥२॥

पक्खोवइ णीवी-बंधणउ ।
ढिल्लारउ करइ सइं परिघणउ[3] ॥
दरिसावइ वम्महो घरसिहरु ।

घत्ता—सुन्दर कोयल की तरह मतवाली कंचनमाला के शरीर में काम की उत्कंठा उत्पन्न करनेवाले कामदेव ने शीघ्र बेचैनी उत्पन्न कर दी ॥१॥

स्थूल पयोधरों वाली वह अपनी सहेलियों से कहती है, "हला! लवली, लवंगी तथा उत्पला हला! कंकोली, जातिफला, कर्पूरी, कुंकुम, कर्दमा, नवकुसुमिता, पल्लविता, किन्नरी, किशोरी, मनोहरी, आलापनी, परभृता, मधुरा, हिंदोलराग की ध्वनि मेरे मदविह्वल चित्त को अच्छी नहीं लगती। विविध प्रकार की भाषा, ककुभ, ओसाहारी, टक्कराग, टक्कोशिराग, सामीरय और मालकोश की ध्वनि अच्छी नहीं लगती। तो यह लो पंचम पंचमकामसर (काम स्वर/सर) है, जो विरहिणी के मन के लिए संतापकर है।

घत्ता—हे सखी! विघनशील मारण को शास्त्र में पाँचवाँ राग गाया गया है। कंचनमाला के वक्षस्थल में मानो कामदेव ने तीर मार दिया हो ॥२॥

वह नीवी की गाँठ खोलती है, स्वयं अपने परिधान को ढीला करती है। कामदेव के गृह-

---

१. अ—वायालहो। २. क ब—भुंभर। ३. अ— परिहणउ।

रोमावलि-तिवलि थणद्धधरु ॥
आमेल्लइ-गिण्हइ-दप्पणउ ।
सयवार णिहालइ अप्पणउ ॥
गलि रसणा दामु परिट्ठविउ ।
करि णेउरु कंकणु कण्णे किउ ॥
कमि कंठउ पुट्ठिए [1]कण्णरसु ।
मुहि अंजणु लोयणे लक्खरसु ॥
परिचिंतइ दंसणु अहिलसइ ।
दीहरउ पुणु वि पुणु णीससइ ॥
जरु पेल्लइ मेल्लइ डाहु णवि ।
आहारभुत्ति ण सुहाइ कवि ॥
णिरवज्ज-लज्ज परिहरइ मणे ।
उम्माहहिं भज्जइ खणे जि खणे ॥

घत्ता—खणे उप्पज्जइ कलमलउ खणे मणु उल्लोलहिं धावइ ।
वाहिहे अउव्वी भंगि कवि एक्कुवि उसहु ण महावइ ॥३॥

सो विरह-वेयण-विहाणिए ।
इहि अवसरि पुच्छिउ राणियए ॥
जं सुंदरु एत्थु मज्झु घरहो ।
तं किं महु किम कासु वि परहो ॥
पणवेप्पिणु सहयरि विण्णवइ ।
कच्छउ कच्छियहि जि संभवइ ॥
जो तरु वल्लरिहि रक्ख करइ ।
अवसाणि तहो जि फलु अवयरइ ॥

शिखर को दिखाती है, जो रोमावली त्रिवलि और स्तन के आधे भाग को धारण करते हैं। वह दर्पण को छोड़ती है और ग्रहण करती है, सौ बार अपने को देखती है। करधनी को वह गले में डाल लेती है, हाथ में नूपुर और कान में कंकण धारण करने लगती है। पैरों में कंठा और पीठ पर कर्णफूल। मुख पर अंजन और आँखों में लाक्षा रस। वह चिन्ता करती है, देखना चाहती है, फिर बार बार लम्बे उच्छ्वास लेती है। ज्वर पीड़ा देता है और तपन नहीं छोड़ता। कोई भी आहार-भुक्ति उसे अच्छी नहीं लगती। निरवद्य लज्जा का वह अपने मन में परित्याग कर देती है। उन्माद से क्षण क्षण में नष्ट होती है।

घत्ता—एक क्षण में बेचैनी उत्पन्न होती है, एक क्षण में मन उत्सुकताओं में दौड़ता है। उस व्याधि की अनोखी भंगिमा यह थी कि एकाकी औषधि का प्रभाव नहीं होता था ॥३॥

विरह वेदना से व्याकुल रानी ने किसी सखी से पूछा—"जो यह सुंदर मेरे घर में है, वह मेरा है या किसी दूसरे का ?" तब सहेली प्रणाम करके निवेदन करती है—"कच्छ कच्छा पर ही संभव होता है। जो तरु लता की रक्षा करता है, अन्त में उसी पर फल अवतरित होते हैं।" इस

१. अ—वणवसु।

कोक्किकउ कुमारु तं मणि धरिवि ।
पण्णत्ति समप्पिय पिउ करिवि ॥
जं पेसणु देव्वउ किंपि मइं ।
तं पडिवज्जेव्वउ सयलु पइं ॥
अवर्णाह दिणे पडिहक्कारियउ ।
पल्लंकोवरि बइसारियउ ॥
कड्ढिउ ओरेसरु सुहय लहु ।
एक्कसि आलिंगणु देहि महु ॥

घत्ता--छत्तइं वसुमइ अइसणउ लइ हय-गय-रयणाइं ।
तुहु पइ, हउं महएवि, अइ तो सग्गें किज्जइ काइं ॥४॥

णिय-देहरिद्धि जइ वल्लहिय ।
तो रायलच्छि लइ मइं सहिय ॥
पहु होहि समाणु पुरंदरहो ।
विसु संचारिज्जइ संवरहो ॥
तहे वयणु सुणेवि कुसुमाउहेण ।
बोल्लिज्जइ रुप्पिणि-सणुरुहेण ॥
एउ काइं अजुत्त-जुत्त-वयणु ।
तुहुं जणणि कालसंवरु-जणणु ।
सिरु छिज्जइ जइवि अज्ज मरमि ।
दुक्कम्मइं बिण्णिवि णउ करमि ॥
कंचणमालए णिब्भच्छियउ ।
तुहुं महु उयरे जि ण अच्छियउ ॥
वणे लद्धउ केण वि कहिं व हुउ ।
कहो तणिय माय कहो तणउ सुउ ॥
तं तेहउ ताहे वयणु सुणेंवि ।

बात को मन में धारण कर उसने कुमार को बुलाया और प्रिय करके उसे प्रज्ञप्ति विद्या सौंप दी और कहा, "मैं जो भी आज्ञा दूं वह सब तुम्हारे द्वारा स्वीकार की जाए।" दूसरे दिन उसने कुमार को फिर बुलाया, और पलंग के ऊपर बिठाया। "ओ सुभग, शीघ्र कण्ठ को हटाओ और एक बार मुझे आलिंगन दो।"

घत्ता—छत्र, धरती, कुबेर, घोड़ा, हाथी और रत्न ले लो। यदि तुम पति और मैं महादेवी होती हूँ तो स्वर्ग से क्या ? ।।४।।

यदि तुम्हें अपनी देह-ऋद्धि प्रिय है तो मुझ सहित राजलक्ष्मी लो। इन्द्र के समान राजा बनो। कालसंवर के लिए विष का संचार कर दो।" उसके वचन सुनकर रुक्मिणी के पुत्र कामदेव ने कहा—"यह तुमने अयुक्त वचन क्यों कहा ? तुम माँ हो, और कालसंवर पिता हैं। सिर चाहे काट दिया जाए, या आज मर जाऊँ, मैं दोनों ही दुष्कर्म नहीं करूँगा।" तब कंचनमाला ने उसे झिड़का—"तुम मेरे उदर में नहीं थे। किसी के द्वारा कहीं पैदा हुए, वन में तुम प्राप्त हुए। किस की माँ और किसका पुत्र ?" उसके वैसे वचन सुनकर कामदेव अपने अंगों को

पभणइ अप्पणु अंगइं धुणेवि ॥

घत्ता—पइं हउं लालिउ-ताडियउ-परिपालिउ णवतरु जेम ।
दिण्ण विज्ज थणु पाइयउ भण जणणि ण वुच्चइ केम ॥५॥

जउणंदणु-णंदणु दणुदलणु ।
अइबाल-कमल-कोमल-चलणु ॥
गउ वीरु महारहवरे चडेवि ।
थिय कणयमाल मंचए पडेवि ॥
णहणियर-विदारिय-थणय-जुअ ।
बाहुपलोहाइय-णयण हुअ ॥
णिहिवोसरु ताव समोसरिउ ।
सामंत सहासहिं परियरियउ ॥
पिएं पुच्छिय कुम्मण काइं थिय ।
तउ तणएं एह अवत्थ किय ॥
जं एम णरिंदहो अक्खियउ ।
तेण वि करवालु कडक्खियउ ॥
तहिं अवसरे विज्जुदाढु चवइ ।
खत्तियहो अखत्तु ण संभवइ ॥
किं रह-गय-तुरय-जोह-बलेण ।
जइ हम्मइ तो केण वि छलेण ॥

घत्ता—सिरिमेसइरि-मल्लइरिहिं सूयर-णिसियर-कइ-णायहिं ।
तेहिं णिहम्मइ बालु रणे अण्णेहिं अवरेहिं उवायहिं ॥६॥

थिउ णरवइ णिक्किउ णिवारियउ ।
सिसु अग्गिकुंडि पइसारियउ ॥

धुनता हुआ कहता है—

घत्ता—"मैं तुम्हारे द्वारा प्यार किया गया, ताड़ित किया गया। नववृक्ष की तरह परिपालित हुआ। तुमने विद्या दी, दूध पिलाया। बताओ तुम्हें माँ किस प्रकार न कहा जाए?" ॥५॥

दानवों का दलन करनेवाला, अत्यन्त नव कमल के समान कोमल चरणवाला, यदुनन्दन का नन्दन (प्रद्युम्न) वीर एक बड़े रथ पर चढ़कर चला गया। जिसने नखसमूह से अपने दोनों स्तन विदीर्ण कर लिए हैं तथा आंसुओं से दोनों नेत्र लाल हैं, ऐसी कंचनमाला पलंग पर पड़कर रह गई। तब राजा हजारों नौकर-चाकर तथा सामंतों के साथ वहाँ प्रविष्ट हुआ। प्रिय ने पूछा—"तुम अनमनी क्यों हो?" [उसने कहा] "तुम्हारे बेटे ने यह हालत की है।" जब राजा से यह कहा गया, तो उसने अपनी तलवार खड़खड़ाई। उस अवसर पर विद्युत्‌दंष्ट्रा ने कहा कि क्षत्रिय से अक्षत्रिय आचरण नहीं हो सकता? रथ, गज, अश्व और योद्धाओं की ताकत से क्या? यदि मारना है तो किसी भी छल से!

घत्ता—श्री मेषगिरि, मल्लगिरि, सूकर, राक्षस, वानर और नाग, इन उपायों या किन्हीं दूसरे उपायों से उस बालक को युद्ध में मारा जाए ॥६॥

मना करने पर राजा निष्क्रिय बैठ गया। शिशु को अग्निकुंड में प्रविष्ट कराया गया। अग्नि

उहणेण वि तहु डाहोत्तरइं।
दिण्णइं गोत्तरगइं अंबरइं॥
णिउ मज्झे मेसमहीहरहं।
वज्जोवसमं विणिवायकरहं॥
बे वज्जिउ तेहि समप्पियउ।
तिहुअण-जण णयण-मणप्पियउ॥
साहिउ वराहु अवराहुकरु।
तें दिण्णु संखु तहो भीमसरु॥
जिउ रक्खसु तेण वि दिण्ण गय।
समहारहु सकवय जणिय भय॥

घत्ता—सुरेण कविट्ठ-णिवासिएण मणि-किरण-सहासु-भिण्णउ।
खिग्गि णहंगण गामिणिउ पाउयउ कुमारहो दिण्णउ॥७॥

थोवंतरि विष्फुरमाणमणि।
देवाहं पि दुद्दमु-दमिउ फणि॥
तेण वि मरगयकर-विच्छुरिय।
ढोइज्जइ मुह-मुहिय-छुरिय॥
धणु-ससरु समंडलग्गु फरउ।
कामंगुत्थलउ ससेहरउ॥
विणिवारिय दिवसयरायवेण।
देवें कणयज्जुणपायवेण॥
विज्जंति सुरासुर-डमर-करा।
धणु-कउसुमु कउसुमपंचसरा॥
खीरोवणि मक्कड तेण जिउ।
सव्वोसहि मायामउ लहिउ॥

ने भी उसे दहन से रहित सुवर्ण-वस्त्र दे दिये। उसे मेषमहीधर के भीतर ले जाया गया जो वज्र के समान निपात करनेवाला था।

उन्होंने उसे दो वज्र दिये जो त्रिभुवन के जनों के नेत्रों के लिए प्रिय थे। उसने अपराध करनेवाले वराह को सिद्ध कर लिया। उसने उसे भीमस्वर करनेवाला शंख दिया। उसने राक्षस को जीता। उसने भी हाथी दिया, तथा जो महारथ और कवच सहित था और भय उत्पन्न करनेवाला था।

घत्ता—कपित्थ पर निवास करनेवाले देव ने मणि की हजारों किरणों से चमकती हुई, आकाशगामिनी दो पादुकाएँ कुमार को प्रदान कीं।।७।।

थोड़ी देर में, जिसका मणि चमक रहा है ऐसे देवों द्वारा भी दुर्दम्य नाग का उसने दमन कर दिया। उसके द्वारा भी मरकत मणि की किरणों से व्याप्त पिशाचमुखी छुरी भेंट में दी गयी। तीर सहित धनुष, तलवार सहित स्फरक (अस्त्र विशेष) और मुकुट सहित काम की अंगूठी। सूर्य के आतप का निवारण करनेवाले स्वर्णवृक्षदेव ने कुसुमधनुष और कुसुम के पाँच तीर दिये जो देवासुरों को भय उत्पन्न करनेवाले थे। क्षीरवन में उसने वानर को जीता और

सूरप्पहु-रह-विमाणु-पवरु ।
सियछत्त-सेयचामर-जुयलु ॥
गउ विउल वावि तहिं मयरु जिउ ।
उवलक्खणु णवर धयग्गे किउ ॥

घत्ता—वइरिहिं अमरिस-कुद्धएहिं सिलविज्जइ वाविहिं झंपणउ ।
ताम्वहिं बुज्झिउ वम्महेण जिह चिंतिउ महु अहियत्तणउ ॥८॥

अणाउलें बालें तुलिय सिला ।
लक्खणेण आसि जं कोडिसिला ॥
पण्णत्ति-पहावें वइरि जिय ।
असमत्थ-णिरत्थ-असत्थ किय ॥
उद्ध-अद्ध-ओबद्ध-रुद्ध किह ।
थिय पायवि बाउल विहय जिह ॥
कह कहवि तहिं चुक्कु एक्कु जणु ।
गउ संवर-भवणु पवणगमणु ॥
णरवइ सुह णंदण णट्ठविय ।
उब्बंधवि सयल परिट्ठविय ॥
परिकुविउ कालसंवरु मणेण ।
पट्ठविय असेसु सेण्णु खणेण ॥
तुरमाण तुरंगारूढ भड ।
वाहियरह चोइय हत्थिहड ॥
सेण्णावइ तहिं सुघोसु पवरु ।
वाउद्धरु वाउवेउ अवरु ॥

उससे मायामयी सर्वौषधि प्राप्त की। सूर्य की प्रभा के समान रथ और प्रबल विमान, श्वेत छत्र और दो चामर भी। वह विशाल बावड़ी पर गया और वहाँ मगर को जीता और उसे केवल अपनी ध्वजा का चिह्न बनाया।

घत्ता—असहिष्णुता के कारण क्रुद्ध शत्रुओं ने बावड़ी को ढकने के लिए शिला रख दी। तब तक कामदेव अपने मन में समझ गया कि किस प्रकार मेरा अहित सोचा गया है ॥८॥

अनाकुल उस बालक ने शिला उठा ली; जो लक्षण से कोटिशिला थी। उसने प्रज्ञप्ति विद्या के प्रभाव से शत्रुओं को जीत लिया और उन्हें असमर्थ, निरर्थ और अशस्त्र बना दिया। उठे हुए, आधे बँधे हुए और अवरुद्ध वे ऐसे मालूम होते थे जैसे वृक्ष पर बाउल पक्षी स्थित हों। वहाँ किसी प्रकार एक आदमी बच गया। पवन की गतिवाला वह कालसंवर के घर गया, (और बोला), राजन्! तुम्हारे पुत्र नष्ट हो गये हैं, वे सब बाँधकर रख दिए गये हैं। कालसंवर अपने मन में कुपित हुआ। एक क्षण में उसने समूची सेना भेज दी। योद्धा शीघ्र घोड़ों पर आरूढ़ हो गये, रथ हाँक दिये गये और गजघटा प्रेरित कर दी गयी। वहाँ सुघोष प्रवर सेनापति था तथा दूसरा वायु के समान उद्धत वायुवेग था।

घत्ता—रणरसिएं किय‍कलयलेण वज्जिय वहु पडह वमालें ।
वेढिउ वम्महु साहणेण विज्झइरि जेम घण जालें ॥९॥

[1]उत्थरिउ बालरिउ-साहणहो ।
रहतुरय-महगयवाहणहो ॥
णं गिम्ह-दवग्गि-वंसवणहो ।
णं गरुडु-भुयंगविसमगणहो ॥
णं करिसंघायहो पंचमुहु ।
णं अगहु सणिच्छरु थिउ संमुहु ॥
गय दमइ ण दम्मइ गयवरेहिं ।
हय हणइ ण हम्मइ हयवरेहिं ॥
रहणं दलइ दलिज्जइ णवि रहेहिं ।
विक्खरइ सिरइं दसदिसिवहेहिं ॥
पण्णत्ति-पहावें सयलुबलु ।
मंदरेण महिउ णं उवहिजलु ॥
णं भग्गु गइंदें कमलवणु ।
साहारु णं बंधइ सरणमणु ॥
हय-गय-रह-णर-णरिंद दलिय ।
सयलेहिं मि विउल वावि भरिय ॥

घत्ता—भरिय ढंकणु वेविसिल अण्णु पडिएंतु णिहालइ ।
जमु करंतु कलेवउउ सालणं णाइं पडिवालइ ॥१०॥

घत्ता—सेना ने कामदेव को घेर लिया, मानो मेघजाल ने विन्ध्यागिरि को घेर लिया हो ॥९॥

वह बाल शत्रु जिसके पास रथ, अश्व, महागज और वाहन थे, ऐसे सैन्य के ऊपर इस प्रकार उछला मानो बांसों के वन पर ग्रीष्मवह्नि उछली हो। मानो सांपों के विषम समूह पर गरुड़ हो, मानो सिंह हाथियों के समूह पर हो, मानो विश्व के सम्मुख शनि हो। गज दमन नहीं करता, और न गजवरों के द्वारा वह दमित होता है। इसी प्रकार अश्व न तो मारता है, और न अश्ववरों के द्वारा आहत होता। रथ दलन नहीं करता, और न रथों के द्वारा दला जाता है। दशों दिक् पथों में सिर बिखरे हुए हैं। प्रज्ञप्ति के प्रभाव से समस्त सेना उसी प्रकार मथ दी गयी जिस प्रकार मंदराचल से समुद्र मथ दिया जाता है, मानो गजेन्द्र ने कमलवन को नष्ट कर दिया हो। शरण की इच्छा रखनेवाले सैन्य को ढाढ़स नहीं बँधता। अश्व, गज, रथ, नर और राजा धराशायी हो गये, उन सबके द्वारा जैसे बावड़ी भर दी गयी।

घत्ता—भरी हुई बावड़ी पर शिला ढककर वह दूसरे शत्रु को उसी प्रकार आते हुए देखता है जैसे कलेवा करता यम सालन (कढ़ी की तरह एक खाद्य) की प्रतीक्षा करता है ॥१०॥

१. ब—उत्थरियउ।

अवरेक्केण केणवि किंकरेंण।
कंठक्खलियक्खर जंपिरेण॥
अक्खियउ कालोत्तर संवरहो।
धयधवल-छत्त-छइयंबरहो॥
परमेसर-सेण्ण-पराज्जियउ।
वइवसपुरवहेण विसज्जियउ॥
तो राएं अमरिस-कुद्धएण।
सामंत वेवि जसलुद्धएण॥
ते भूमिकंप महिकंपभड।
समुहउ सतुरंग सहत्थिहड॥
पट्ठविय पधाइय भिडियरणे।
णं पवण-हुआसण सुक्कवणे॥
जे वम्मह मारहुं भणेवि गय।
ते विज्जापण्णइं सयल हय॥

घत्ता—जिणिव तिवारउ वइरिबलु अण्णहो वि दिट्ठि पुणु ढोइयउ।
जमु तिहि कवलहिं अधाइउ णाइ णं कवलु चउत्थउ जोइयउ॥११॥

पडिवत्त कालसंवरहो गया।
सामिय असेस सामंत हया॥
एवहिं विहि कज्जहं एक्कु करे।
अह कहिं वि णासु अह भिडु समरे॥
बलु-सयलु कुमारें णट्ठवियउ।
पेयाहिव-पंथे पट्ठवियउ॥
तं णिसुणेवि णरवइ भीडभउ।
तहे कंचणमालहे पासु गउ॥
ढोयहि पण्णत्ति वयत्ति महु।

कण्ठ से लड़खड़ाते हुए अक्षर बोलने वाले किसी एक और अनुचर ने, ध्वजों और धवल छत्रों से आकाश को आच्छादित करनेवाले कालसंवर से कहा, "हे परमेश्वर, सैन्य पराजित हो गया। और वह यमपथ पर भेज दिया गया है।" तब, असहिष्णुता से क्रुद्ध होते हुए, यश के लोभी राजा ने रथ, अश्व और गजघटा के साथ भूमिकंप और महीकंप योद्धा भेजे। वे दौड़े और युद्ध में भिड़ गए, मानो सूखे हुए जंगल में पवन और आग हों। जो कामदेव को मारने की कहकर गये थे, वे सब प्रज्ञप्ति विद्या के द्वारा आहत हो गये।

घत्ता—इस प्रकार तीन बार शत्रुबल को जीतकर उसने फिर दूसरे पर दृष्टि डाली। तीन कौर से संतुष्ट नहीं होते हुए यम ने मानो चौथे कौर की प्रतीक्षा की॥११॥

कालसंवर के पास फिर समाचार गया—"हे स्वामी, सभी सामन्त मारे गये। अब दो कामों में से एक कीजिए, या तो कहीं भाग जाइये या फिर युद्ध में लड़िए। कुमार ने सारे सैन्य को नष्ट कर दिया और उसे यम के रास्ते लगा दिया।" यह सुनकर, राजा कालसंवर डरकर कंचनमाला के पास गया (और बोला)—"मुझे शीघ्र प्रज्ञप्ति विद्या दो जिससे मैं शत्रु

आवरमि जेण अरिएण सहुँ ॥
पच्चुत्तरु दिण्णु कवडु करिवि ।
विज्जाहरणाह विज्ज हरिवि ॥
णिय मंड तेण तुह णंदणेण ।
आसंकिउ णरवइ णियमणेण ॥
पुण्णक्खए पुण्ण-विवज्जियउ ।
विज्जउ वि ण होंति सहेज्जियउ ॥

घत्ता—अहवइ रण्णे णिवसंताहो केसरिहो कवण सहिज्जउ ।
छुडु धीरत्तणु सुपुरिसहो भुयदंड वि होंति सहिज्जउ ॥१२॥

विज्जाहरणाहु एम भणेवि ।
णिय-जीउ तिणयसमाण गणेवि ॥
अवसेसु सेण्णु सण्णहेवि गउ ।
जहिं कुसुमहु धम्महु लद्धजउ ॥
ते भिडिय परोप्परु कुद्धिसह ।
णं गयणहो णिवडिय कूरगह ॥
णं उद्धसुंड सुरमत्त गया ।
णं हरि दूरुज्झिय-मरणभया ॥
णं सलील-गज्जिय पलयघण ।
णं फणिमणि विप्फारिय-फारफण ॥
पहरंति अणेयहिं आउहेहिं ।
पिसुणेहिं व परविंधण मुहेहिं ॥
बिहिं एक्कु वि जिज्जइ जिणइ णवि ।
जम धणय पुरंदर सोम रवि ॥
बोल्लंति परोप्परु गयणे थिय ।

के साथ लड़ सकूँ।" उसने कपटकर उत्तर दिया, "हे विद्याधर स्वामी, तुम्हारे उस पुत्र ने विद्या बलपूर्वक छीनकर ले ली है।" राजा अपने मन में आशंकित हो उठा कि पुण्य का क्षय होने पर मैं पुण्यविहीन हूँ। विद्याएँ भी तब सहायक नहीं होतीं।

घत्ता—अथवा वन में निवास करने वाले सिंह का कौन सहायक होता है? धीरज और भुजदण्ड ही सत्पुरुष के सहायक होते हैं ॥१२॥

विद्याधर-स्वामी यह कहकर, अपना जीवन तिनके के बराबर समझकर, समूची सेना तैयार कर वहाँ गया जहाँ विजय प्राप्त करनेवाला कामदेव था। असह्य वे दोनों आपस में लड़ने लगे। मानो आकाश से दो क्रूर ग्रह गिरे हों, मानो देवों के सूँड उठाए हुए मतवाले हाथी हों, जिन्होंने मृत्युभय दूर से छोड़ दिया है ऐसे सिंह हों, मानो लीलापूर्वक गरजते हुए प्रलयमेघ हों, मानो अपने विस्तृत फन फैलाए हुए फणमणि हों। वे, दुष्ट की तरह जिनके मुख दूसरों को काटनेवाले हैं, अनेक हथियारों से प्रहार करते हैं। दोनों में से, न तो एक जीता जाता है, और न जीतता है। यम, धनद, देवेन्द्र, सोम और रवि आकाश पर स्थित होकर कहते हैं, "पुत्र और

सुय-जणणहं अविणये थत्ति किय ॥

घत्ता— ताम पराइउ देवरिसि म वेवि अकारणें जुज्झहो ।
करेवि परोप्परु गोत्तखउ का कवण थत्ति जहिं जुज्झहो ॥१३॥

खिखिवारिय विण्णवि णारएण ।
जिह धरियमेह अंगारएण ॥
मघरोहिणि उत्तरपत्तएण ।
तिह तावसेण दुक्कंतएण ॥
ओसारिय संवर कुसुमसर ।
जुज्झंतहं जगे जंपणउ पर ॥
सुयजणण हो विग्गहु कवणु किर ।
दुल्लंघण-लंघिय तवसि-गिर ॥
थिय बिण्णिवि रणु उवसंघरिवि ।
पुत्तत्तणु तायत्तणु करेवि ॥
पण्णत्ति पहावें अतुलु बलु ।
उट्ठविउ कालसंवरहो बलु ॥
तो भणइ महारिसि कित्तिएण ।
हउं एत्थु पराइउ एत्तिएण ॥
एहु चरम देहु सामण्णु णवि ।
मय रद्धउ हरिकुल गयण रवि ॥

घत्ता- -असुरें णिउ पइं वड्ढावियउ सीमंधरसामें सिट्ठउ ।
एहु सो णंदणु रुप्पिणिहे मइँ कहमि किलेसें दिट्ठउ ॥१४॥

पिता ने अविनय को स्थिरता दी है।"

घत्ता—इतने में वहाँ नारद पहुँचे (और बोले)—"तुम दोनों अकारण मत लड़ो, परस्पर गोत्र का नाशकर वह कौन-सी स्थिति है जहाँ तुम युद्ध होते हो ? ॥१३॥

नारद ने दोनों को रोक दिया। जिस प्रकार मघा और रोहिणी के उत्तर में प्राप्त मंगल मेघों को रोक देता है, उसी प्रकार पहुँचते हुए मुनि नारद ने कालसंवर और कामदेव को हटा दिया (यह कहते हुए) कि लड़ते हुए दुनिया में तुम्हारी निन्दा होगी। पिता और पुत्र के बीच युद्ध कैसा ? तपस्वी की वाणी दुर्लंघ्य का भी लंघन करनेवाली होती है। दोनों युद्ध बन्द करके स्थित हो गये, पितृत्व और पुत्रत्व का सम्मान करते हुए। प्रज्ञप्ति के प्रभाव से, कालसंवर का अतुल बलसैन्य उठ खड़ा हुआ। तब महामुनि कहते हैं—कि यह किस तरह यहाँ पहुँच सका ? यह चरमशरीरी है, सामान्यजन नहीं है, कामदेव और हरिवंशरूपी आकाश का चन्द्रमा है।

घत्ता—सीमंधर स्वामी ने कहा है कि असुर के द्वारा ले जाया गया और तुम्हारे (कालसंवर के) द्वारा बड़ा किया गया यह रुक्मिणी का वही पुत्र है जिसे मैंने बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार देख लिया ॥१४॥

पेसिउ णरवइ णियपट्टणहो ।
रिसि अक्खइ रुप्पिणि-णंदणहो ॥
किं बहुवें वाया-वित्थरेण ।
जिह अक्खिउ सिरिसीमंधरेण ॥
जिह परिभमिओसि भवंतरइं ।
पावंतउ दुक्खपरंपरइं ॥
जिह केसव-कंतहि संभविउ ।
जिह धूमकेउ दाणवेण णिउ ॥
जिह कहिमि सिलायलि संणिमिउ ।
जिय खयरें पिय हे समल्लविउ ॥
जिह सोलह वरिसइं ववगयइं ।
जिह सिद्धइं विज्जाहर पयइं ॥
जिह वइरि-सेण्णु सरें जज्जरिउ ।
जिह कंचनमाला-दुच्चरिउ ॥
जिह पहु-कोवग्गि-समणं गयइं ।
जिह लद्धइं कामएवपयइं ॥

घत्ता—तिह सयलु वि बुज्झियउ लहु जाहु देहि अवरुंडणु ।
जाम भाम णउ रुप्पिणिहो सहं भुएहि करइ सिर-मुंडणु ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभूएवकए पज्जुण्ण-
लीलावण्णणो णाम एयारहमो सग्गो ॥११॥

राजा कालसंवर को अपने घर भेज दिया गया। महामुनि रुक्मिणी के पुत्र से कहते हैं—"बहुत वाणी के विस्तार से क्या, जिस प्रकार श्रीसीमंधर स्वामी ने कहा है, जिस प्रकार तुम जन्मान्तरों में घूमे हो और दुःख-परम्परा को प्राप्त हुए हो, जिस प्रकार नारायण के तेज से उत्पन्न हुए हो, जिस प्रकार धूमकेतु दानव के द्वारा ले जाये गये, जिस प्रकार शिलातल पर रखे गये, जिस प्रकार सोलह वर्ष बीते, जिस प्रकार विद्याधर पादुकाएँ सिद्ध हुईं, जिस प्रकार तीर से शत्रु-सैन्य को जर्जर किया, जिस प्रकार कंचनमाला का दुश्चरित था, जिस प्रकार राजा की क्रोधाग्नि शान्त हुई और जिस प्रकार कामदेव का पद स्वीकार किया,

घत्ता—वह सब जान लिया। अब शीघ्र जाओ और (माँ को) आलिंगन दो, कि जब तक सत्यभामा अपने हाथ से रुक्मिणी का मुण्डन नहीं करती।" ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित महाकवि स्वयंभूदेव द्वारा विरचित अरिष्टनेमिचरित में प्रद्युम्नकी लीला-वर्णन नामक ग्यारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥११॥

बारहमो सग्गो

पवरविमाणारूढु संचल्लु कुमारु सुहावइ।
सच्चहे-छायाभंगु रुप्पिणिहे-मणोरहु णावइ॥

छत्तिय-भिसिय-कमंडल-धारउ।
पुच्छिउ वम्महेण रिसिणारउ॥
कहि-कहि ताय सणुतावणु।
किह मायहे भद्दावणु॥
भणइ महारिसि किं वित्थारें।
सुणु अक्खमि तं जेण पयारें॥
सच्चहाम महएवि पहिल्ली।
रुप्पिणि-रुप्पिणि पुणु पच्छिल्ली॥
ताहं विहि मि चवंकिय णामहं।
हुय होड तुह मायरि-भामहं॥
जाहि वि जेट्ठपुत्तु परिणेसइ।
सो मुंडिए सिरि पाउ ठवेसइ॥
कुविउ कामु गुणगण-गरुयारी।
का परिहवइ जणेरि महारी॥
तहो तोडमि सिरु विरसु रसंतहो।
सरणु पवज्जइ जइ वि कयंतहो॥

विशाल विमान पर आरूढ़ कुमार चला। वह ऐसा शोभित होता है जैसे सत्यभामा की कान्ति का भंग और रुक्मिणी का मनोरथ हो। छत्र, आसन और कमंडलु को धारण करनेवाले मुनि नारद से कामदेव ने पूछा—"हे तात! कहिए कहिए, शरीर को संताप पहुँचानेवाला माता का मुण्डन क्यों?" महामुनि कहते हैं, "विस्तार से क्या? सुनो, मैं कहता हूँ कि जिस कारण मुण्डन होना है। सत्यभामा पहली पत्नी है। रुक्मिणी, रुक्मिणी बाद की पत्नी है। यश से अंकित नाम वाली तुम्हारी माँ और सत्यभामा दोनों में यह होड़ हुई कि जिसका जेठा पुत्र विवाह करेगा वह दूसरी के मुँड़े हुए सिर पर अपना पैर स्थापित करेगी।" यह सुनकर कामदेव कुपित हो गया—गुणसमूह से महान् मेरी माँ का पराभव कौन कर रहा है? मैं, बुरी तरह चिल्लाते हुए, उसका सिर तोड़ दूँगा। भले ही वह यम की शरण में चला जाए।

घत्ता—एम भणेवि कुमारु संचलिउ विज्जापाणे ।
दीसइ णहयले जंतु णं रावणु पुप्फविमाणे ॥१॥

चलिउ महारिसि समउ कुमारें ।
णं मयलंछणु सहुं सवितारें ॥
बिण्णिवि तेअवंत उवसोहिय ।
णं णहभवणे पईवा बोहिय ॥
पट्टणु ताव दिट्ठु कुरुणाहहों ।
कलिकालहों कलुस सणाहहो ॥
णिवडिउ सग्गखंडु णं तुट्टें वि ।
थिउ धणयधाम विच्छुट्टेवि ॥
णाइं अणंगणयरु आवासिउ ।
सुंदर सुरवरपुरहों पासिउ ॥
जहिं पायार णहंगण लंघा ।
गुरुउवएस जेम दुल्लंघा ॥
जहिं सुंदर-मंदिरइं अणेयइं ।
चंदाइच्च-समप्पह-तेयइं ॥
केत्तिउ वार-वार बोल्लिज्जइ ।
हत्थिणायउर कहो उवमिज्जइ ॥

घत्ता—तहिं पर एत्तिउ दोसु हरिवंसमहद्दह-खोहणु ।
दुम्महु दुण्णयवंतु जं वसइ दुट्ठु दुज्जोहणु ॥२॥

णयरु णिएंवि णियरहसु ण रक्खइ ।
पुच्छइ बालु महारिसि अक्खइ ॥

घत्ता—जिसके हाथ में विद्या है ऐसा कुमार इस प्रकार कहकर चला। आकाश में जाते हुए वह ऐसा मालूम होता है मानो पुष्पक विमान में रावण हो ॥१॥

कुमार के साथ महामुनि भी चले, मानो सूर्य के साथ चन्द्रमा हो। दोनों ही तेजस्वी और शोभित थे, मानो आकाश के भवन में प्रदीप आलोकित कर दिये गये हों। इतने में कलिकाल, कलंक से युक्त कुरुराज(दुर्योधन) का नगर दिखाई दिया, मानो स्वर्णखण्ड ही टूटकर गिर पड़ा हो, मानो अलग हुआ कुबेर का घर हो, मानो कामदेव का नगर बस गया हो। सुन्दर सुरपुर के चारों ओर आकाश के आँगन को लाँघने वाला परकोटा था, जो गुरु के उपदेश की तरह दुर्लंघ्य था। जहाँ अनेक सुन्दर प्रासाद थे—जो सूर्य और चन्द्रमा के समान आभा और तेज वाले थे। बार-बार कितना कहा जाए, हस्तिनागपुर की किससे उपमा दी जाए?

घत्ता—परन्तु एक दोष है कि जो उसमें हरिकुल रूपी महान सरोवर को क्षोभित करनेवाला, दुर्मद, दुर्नय वाला दुर्योधन निवास करता है ॥२॥

नगर को देखकर प्रद्युम्न अपना हर्ष नहीं रख पाता। बालक पूछता है और महामुनि कहते हैं—

किं घरणिहि [धरणिहुं] अंगइं कंटइयइं ।
णउ-णउ धण्णइं कणिसुब्भइयइं ॥
किर महि-चिहुरभार थिउ उब्भउ ।
णउ-णउ तरु-आराम-समुब्भउ ॥
किह उत्थल्लिवि उवहि परिट्ठिउ [अहिट्ठिउ] ।
णउ-णउ परिहावलउ परिट्ठिउ ॥
किह हिमवंतु महंतु महीहरु ।
णउ-णउ पुरपायारु मणोहरु ॥
किं हिमगिरि-सिहरइं [हिम] धवलइं ।
णउ-णउ मंदिराइं छुहधवलइं ॥
किह मेहउलइं महियल-पत्तइं ।
णउ-णउ गयविंदइं मयमत्तइं ॥
किह तरंग मयरहरहो केरा ।
णउ-णउ कुरुतुरंग-परंपेरा ॥

घत्ता—किह थलभिसिणी भावइ वियसियइं सेयसयवत्तइं ।
णउ-णउ ससिधवलइं आयइं दुज्जोहण-छत्तइं ॥३॥

इत्थु अराइ राइ-रण-रोहणु ।
णिवसइ कुरुवइ राउ दुज्जोहणु ॥

"क्या ये धरती के रोमांचित अंग हैं ?"
"नहीं नहीं, उठे हुए अग्रभाग वाले धान्य हैं।"
"क्या यह धरती का उठा हुआ केश-समूह है ?"
"नहीं नहीं, वृक्षों उद्यानों का समूह है।"
"क्या यह समुद्र उछलकर बैठ गया है ?"
"नहीं नहीं, यह परिखावलय है।"
"क्या यह महान् हिमगिरि है ?"
"नहीं नहीं, यह सुन्दर नगर-परकोटा है।"
"क्या ये हिमगिरि के हिमधवल शिखर हैं ?"
"नहीं नहीं, सुधा (चूना) से धवलित मन्दिर हैं।"
"क्या ये मेघकुल धरतीतल पर आ गये हैं ?"
"नहीं नहीं, ये मदमत्त गजसमूह हैं।"
"क्या ये समुद्र की तरंगें हैं ?"
"नहीं नहीं, यह कुरु के तुरंगों की परम्परा है।"

घत्ता—"क्या यह स्थल-कमलिनी शोभित है या श्वेत कमल खिले हुए हैं ?"
"नहीं नहीं, ये चन्द्रमा के समान धवल दुर्योधन के छत्र हैं ॥३॥

यहाँ पर शत्रु-राजाओं से युद्ध करनेवाला कुरुराज दुर्योधन निवास करता है—

सच्चहे पक्खिउ दुण्णयवंतु ।
तेण विवाहु जोउ आढत्तउ ॥
उवहिमाल वर विक्कम सारहो ।
देसइ पिय-सुय भाणुकुमारहो ॥
मंगलतूर एउ ओ वज्जइ ।
णं णव पाउसे जलणिहि गज्जइ ॥
पुरवरे रक्खाविग्गउ वट्टइ ।
एत्तिउ कुरुजणत्त पयट्टइ ॥
एत्थु विवाहु जाहि असुहावणु ।
होसइ तुह जणणहे भद्दावणु ॥
तं णिसुणेवि कुमार पलित्तउ ।
णं ववग्गि वुव्वाएं घित्तउ ॥
रिसि सविमाणु मुएप्पिणु तेत्तहे ।
पइसइ कुरुवराय-पुरु जेत्तहे ॥

घत्ता—कामिणि-कामहं कामु धुत्तहं अब्भंतरे धुत्तु ।
भगडइ पट्टणु सव्वु बहुरूविहि रुप्पिणि पुत्तु ॥४॥

सो पण्णत्ति-पहावें बालउ ।
पइसइ हत्थि होइ गयसालउ ॥
मयगल-मयमुअंत फेडाविय ।
भग्गालाणखंभ ओसारिय ॥
पुरे पइसरइ बालु बडुवेसें ।
जोइज्जइ डिंभयहिं विसेसें ॥
वीहियवालिकुमारइं रंभइ ।
जलु जुअइहिं णिएहुं ण लब्भइ ॥

सत्यभामा के पक्ष का और दुर्नयी। उसने विवाह का योग प्रारम्भ किया है। विक्रम में श्रेष्ठ भानुकुमार को वह अपनी कन्या उदधिमाला देगा। यह मंगल तूर्य बज रहा है, मानो नवपावस में समुद्र गरज रहा हो। पुरवर में रक्षा का प्रबन्ध है। यह कुरु की बारात जा रही है, यहाँ उसका अशोभन विवाह होगा और तुम्हारी माता का सिर मूंडा जाएगा। यह सुनकर कुमार भड़क उठा, मानो आग को तूफान ने छू लिया हो। महामुनि को विमान सहित वहाँ छोड़कर, जहाँ कुरुराज का नगर था वहाँ प्रवेश करता है।

घत्ता—कामिनियों और कामों का कामदेव, और धूर्तों के बीच में धूर्त रुक्मिणी का बेटा अनेक रूपों में सारे नगर से झगड़ा करता है ॥४॥

प्रज्ञप्ति के प्रभाव से यह बालक हाथी बनकर गजशाला में प्रवेश करता है और मद छोड़ते हुए मैगल गजों को नष्ट करता है। उसने आलान(खूंटे)नष्ट करके हाथियों को हटा दिया। बालक बटु के वेश में नगर में प्रवेश करता है। बालकों के द्वारा वह विशेष रूप से देखा जाता

सव्वइं भोयणइं आगरिसइ ।
बंभणजण असण्णइं वरिसइं ॥
वहगुण बणिहिं अग्घु बड्ढावइ ।
णं तो बहुरूवहिं कड्ढावइ ॥
सो णरु णाहिं जो ण खलियारिउ ।
पट्टणि एम करंतु कुमालिउ ॥

घत्ता—गउ दुज्जोहणु जेत्थु, करे माहुलिगु ढोइज्जइ ।
तेण वि पुणु सयवार पियमाणुस जिह जोइज्जइ ॥५॥

जसु-जसु ढोयइ कुरुपरमेसर ।
सो-सो भणइ देव एउ विसहरु ॥
भंडागारिएण ण समिच्छिउ ।
देव ण माहुलिगु एँउ विच्छिउ ॥
पुच्छिज्जंतु बियारेंहिं जंपइ ।
बडु पंडिउ पयंडु णउ कंपइ ॥
हउं पीयंबरजणणें जायउ ।
कण्णत्थिउ तुम्हहं घरु आयउ ॥
परिरक्खंति अज्जु जइ देव वि ।
मइं परिणेवी अवसें लेय वि ॥
तहिं अवसरे दुज्जोहण-राणी ।
उवहिमाल णामेण पहाणी ॥
पेसिय ताए महत्तरि कुमरी ।

है। बावड़ी के लम्बे द्वारों को अवरुद्ध करता है। युवतियों के द्वारा जल ग्रहण नहीं किया जा सकता। उसके द्वारा सारा भोजन खींच लिया गया। ब्राह्मण लोग अप्रसन्न दिखाई देते हैं। भिक्षुकों के द्वारा दसगुनी पूजा सामग्री बढ़वा देता है और नहीं तो, अनेक रूपों में निकाल लेता है। वहाँ कोई ऐसा आदमी नहीं था जिसे तंग न किया गया हो। नगर में इस प्रकार ऊधम करता हुआ,

घत्ता—वह वहाँ गया, जहाँ दुर्योधन था। उसके हाथ में बिजौरा नीबू था। उसने भी उसे सौ बार प्रिय मानुस के समान देखा ॥५॥

वह कुरु परमेश्वर जिस-जिसको नीबू देता है वह वह कहता, "हे देव, यह विषधर है।" भण्डारी ने भी उसे नहीं चाहा, वह कहता है— "हे देव, यह नींबू नहीं है।" विद्वानों द्वारा पूछे जाने पर वह बोलता है कि "मैं वटु पण्डित हूँ और प्रचण्ड हूँ, मैं काँपता नहीं। मैं पीताम्बर पिता से उत्पन्न हुआ हूँ और कन्यार्थी होकर तुम्हारे घर आया हूँ। यदि देव भी आज रक्षा करते हैं, तब भी मैं अवश्य ही कन्या को लेकर रहूँगा।" उस अवसर पर दुर्योधन की उदधिमाल नाम की प्रधान रानी थी। उसके द्वारा भेजी गयी महत्तरी (उदधिकुमारी) पहुँची।

सम्मोहेण मूयहलेवि मुक्की ॥
जउ णीसरइ वाइ परसण्णइ (उ)।
बालु णिरारिउ गुण-णिवण्णइ (उ) ॥

घत्ता—खुज्जउ होवि पइट्ठु खंडिलेण लेवि वहु ण्हाविय।
पुणु वरयत्त-छलेण अवहरिवि विमाणि चडाविय ॥६॥

तहिं अवसरे संणज्झइ साहणु।
रहवर तुरय महागय-वाहणु ॥
विण्ण तूर विवड्डिय कलयलु।
घणु दप्पहरणु पहरण कलयलु ॥
रुप्पिणि-तणएं विसम सहावें।
मोहिउ बलु पण्णत्ति-पहावें ॥
जो-जो ढुक्कइ तं-तं चप्पेवि।
उवहिमाल कुरुवइहे समप्पेवि ॥
रिसि उच्चइ एहु रुप्पिणिणंदणु।
काइं अकारणे किउ कडमद्दणु ॥
एम भणेवि वेवि गय तेत्तहे।
पंडवराअ-पहाणउ जेत्तहे ॥
रहवर-तुरय-गइंद-विमाणेहिं।
धय-छत्तेहिं अणेय-पमाणेहिं ॥
दप्पण-दहिं दुव्वक्ख-सेसहिं।
अइहय मंगल-कलस-विसेसहिं ॥

कामदेव ने उसे मूक बनाकर छोड़ दिया। उसकी वाणी नहीं निकलती, वह संज्ञा से बोलती है। बालक गुणों की अत्यन्त प्रशंसा करता है।

घत्ता—बौना होकर प्रविष्ट हुए भाई ने बहू को ले जाकर नहलाया। फिर वर के छल से उपहरण कर उसे विमान में चढ़ा लिया ॥६॥

उस अवसर पर जिसमें रथवर, तुरग और महागजवाहन हैं, ऐसी सेना तैयार होती है। नगाड़े बजा दिये गये। कलकल बढ़ने लगा। दानवों के दर्प का हरण करनेवाली, शस्त्रों की आवाज होने लगी। विषम स्वभाववाले रुक्मिणी के पुत्र ने प्रज्ञप्ति के प्रभाव से सेना को मोहित कर लिया। जो जो उसके पास पहुँचता है उसे उसे चाँपकर उदधिमाल कुरुपति को सौंपता है मुनि ने कहा—"यह रुक्मिणी का बेटा है। तुमने अकारण मारकाट क्यों की?" यह कहकर वे दोनों वहाँ गये जहाँ पाण्डवराजाओं का प्रमुख था। रथवर, तुरग और गजेन्द्र और विमानों, ध्वज-छत्रों, अनेक प्रकार के दर्पण, दही, दूर्वा, अक्षत और शेष, अत्यन्त उत्सवमंगल कलश विशेषों के साथ।

घत्ता—पुच्छिउ कुसुमसरेण कहि ताय-ताय कि सेरउ।
दीसइ खंधावारउ जहु संचलंतु कहो केरउ ॥७॥

तो वय-विणय-परक्कम-जुत्तहो।
कहइ महारिसि रुप्पिणिपुत्तहो ॥
एहु सो चंदकेउ-कमलाउहु।
पंकय-दल करचिहु-पंकय-मुहु ॥
पंडवजेट्ठु सुट्ठु विक्खायउ।
धम्मपुत्तु धम्मुच्छवें जायउ ॥
दीसइ चिंधि जासु पंचाणणु।
एँहु सो भीमु भीम-भडभंजणु ॥
जसु सोवण्णमहाधए वाणरु।
एँहु सो अज्जुणु पवरधणुद्धरु ॥
अंध नमल थिय अग्गिमखंधें।
रिउ णासंति जाहं रणु गंधें ॥
णरणंदहें णंदहें उप्पण्णी।
कंचणमाल-कला-संपुण्णी ॥
सच्चहाम तणयहो बलसारहो।
दिज्जइ अग्गी भाणुकुमारहो ॥

घत्ता—तं णिसुणेवि पज्जुणु तरुवेल्लियाउलयमग्गए।
ससर-सरासण-हत्थु धाणुक्क होवि थिउ अग्गए ॥८॥

ससर सरासण हत्थु पढुक्किउ।
हउं णारायण केरउ संकिउ॥
सुक्कु देवि महुपहेण पयट्टहु।
णं तो मइ समाणु अब्भिट्टहु ॥

घत्ता—कामदेव ने पूछा—"हे तात, हे तात, बताइए चुप क्यों हैं ? यह जाता हुआ स्कन्धावार किसका है ?" ॥७॥

तब वय, विनय और पराक्रम से युक्त रुक्मिणीपुत्र से महामुनि कहते हैं, "जिसके ध्वज में चन्द्रकेतु है ऐसे कमलायुध, कमलदल के समान कर, आँखों और कमलमुखवाले पाण्डवों में सबसे बड़े अत्यन्त विख्यात यह धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) धर्म-उत्सव में उत्पन्न हुए थे। जिसके चिह्न में सिंह है ऐसा बड़े-बड़े योद्धाओं का भंजक यह भीम है। जिसके स्वर्ण-महाध्वज में वानर है, वह यह प्रवर धनुर्धारी अर्जुन है। स्कन्धावार के अग्रिमभाग में वे नकुल और सहदेव स्थित हैं, जिनकी गन्ध से युद्ध में शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं। मनुष्यों को आनन्द देनेवाली नन्दा से उत्पन्न स्वर्णमाला की कला की तरह सम्पूर्ण (उदधिकुमारी) बल में श्रेष्ठ सत्यभामा के पुत्र (भानुकुमार) को दी जाने लगी है।

घत्ता—यह सुनकर प्रद्युम्नकुमार वृक्षों और लताओं से आच्छादित रास्ते में धनुष और बाण हाथ में लेकर धनुर्धारी के रूप में स्थित हो गया ॥८॥

वह बोला, "तीर और धनुष जिसके हाथ में हैं ऐसा मैं नारायण का कर उगाहनेवाले के रूप

तं णिसुणेवि णउल सहएवेंहि ।
परिवड्ढियपयाव-अवलेवेंहि ॥
रणु आढत्तु घोरु जियवालें ।
णउ उत्थरिउ महालरजालें ॥
जिउ वम्महेण विओयरु धाइउ ।
सो वि परज्जिउ कहवि ण घाइउ ॥
धम्मपुत्तु आयामिउ जावहिं ।
कोंतिहि कहइ महारिसि तावहिं ॥
यहु रुप्पिणि-णंदणु मयरद्धउ ।
तुम्हेहिं कलहु काइं पारद्धउ ॥
एम भणेवि बेवि गयणद्धें ।
गय बारवइ पत्त णिमिसद्धें ॥

घत्ता—पेक्खिवि मयण-विमाणु हरिणंदणु चंदण-चच्चिउ ।
धयचिंधुद्धकरेहिं णं महुमहणपुरेण पणच्चिउ ॥६॥

णारउ णहे सविमाणु परिट्ठिउ ।
बीयउ णिम्मलि णाइं रवि उट्ठिउ ॥
बारावइ पइट्ठु मयरद्धउ ।
मायाकवडु-भाउ पारद्धउ ॥
एक्कु वि णिम्मिउ दुब्बल घोडउ ।
तिसियहु जासु समुद्दु वि थोडउ ॥
सो मोक्कलिउ तुरउ तुरंतउ ।
खद्धइं धंतु सलिलं सोसंतु ॥
उवयणु भाणुकुमारहो केरउ ।

में आ पहुँचा हूँ; मुझे कर दो और रास्ते से जाओ, और नहीं तो मुझसे युद्ध करो।" यह सुनकर, जिनका प्रताप और अहंकार बढ़ रहा है ऐसे नकुल और सहदेव ने भयंकर युद्ध शुरू किया, लेकिन बालक के द्वारा जीत लिया गया। तब अर्जुन बाणजाल के साथ उछला। वह भी कामदेव के द्वारा जीत लिया गया। भीम दौड़ा, वह भी पराजित हुआ, किसी प्रकार वह मारा भर नहीं गया। धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) सचेष्ट हुए ही थे कि इतने में महामुनि ने कुन्ती से कहा—"यह रुक्मिणी का पुत्र कामदेव है। तुम लोगों ने युद्ध क्यों शुरू किया।" यह कहते ही वे दोनों (नारद और कामदेव) आकाश के मार्ग से गये, और आधे पल में द्वारावती जा पहुँचे।

घत्ता—कामदेव का विमान और चन्दन से चर्चित हरि के पुत्र को देखकर श्रीकृष्ण का नगर ध्वजचिह्नों की उठी हुई बाहों के बहाने मानो नाच रहा था ॥६॥

नारद आकाश में विमान सहित स्थित हो गये, मानो आकाश में दूसरा सूर्य उदित हुआ हो। कामदेव ने द्वारावती में प्रवेश किया। उसने मायावी कपटभाव प्रारम्भ किया। उसने एक दुर्बल घोड़ा बनाया, प्यासा कि जिसे समुद्र भी थोड़ा था। उसने उस घोड़े को तुरन्त छोड़ा, दूब खाता हुआ और पानी सोखता हुआ। भानुकुमार के जनों के मन और नेत्रों को आनन्द देनेवाले

णायमणमयणाणंदजणेरउ ॥
माया-मक्कडेण विद्धंसिउ ।
मउर-फुल्लफलपत्तु विणासिउ ॥
कहिं वि अणंगु होवि पुरु मोहइ ।
णायरियायण-मणु संखोहइ ॥
कत्थवि विज्जु कहिं मि णेमित्तउ ।
कत्थवि भूमिदेउ अइलुलिउ ॥

घत्ता—बंभण सयइं जिणेवि उवइट्ठु णवि अग्गासणे ।
सच्चहे जं घरे रद्धु तं घिप्पइ णाइं हुवासणे ॥१०॥

भोयणु भुंजेवि पाणिउं सोसि वि
तहिं अणंतु मंतु आघोसेवि ॥
खुड्डावेसें पइसइ तेत्तहिं ।
रुप्पिणि भवणु मणोहरु जेत्तहिं ॥
ताम ताए सुणिमित्तइं दिट्ठइं ।
णेमित्तियहिं जाइं उवइट्ठइं ॥
कोइल-महुर-मणोहर-जंपउ ।
अंबउ मउरिउ-फलिलउ-पक्कउ ॥
सुक्कवावि जलभरिय खणंतरि ।
पुत्तागमु दिट्ठु सिविणंतरि ॥
जायइं खुज्ज-पंगु-बहिरंधइं ।
रूवगमण-सवणच्छि समिद्धइं ॥
ताम पराइउ णयणाणंदणु ।
खुड्डावेसें केसव-णंदणु ॥

उपवन को मायावी मर्कट (बन्दर) ने विध्वस्त कर दिया। उसके मौर, फूल, फल तथा पत्ते नष्ट कर दिये। कहीं पर वह कामदेव बनकर नगर को मोहित करता है, तथा नगर-स्त्रियों के मनों को क्षुब्ध करता है। कहीं पर भवनवासी देव, कहीं पर नैमित्तक और कहीं पर जनेऊ पहने हुए बहुत से ब्राह्मण।

घत्ता—सैकड़ों ब्राह्मणों को जीतने के लिए वह अग्र-आसन पर जाकर बैठ जाता है और सत्यभामा के घर में जो भोजन बनाया गया था उसे जैसे आग में डालने लगता है ॥१०॥

भोजन कर और पानी सोखकर तथा वहाँ अनन्त मन्त्र की घोषणा कर क्षुल्लक के वेश में उस स्थान पर प्रवेश करता है जहाँ रुक्मिणी का सुन्दर भवन है। उस अवसर पर उसके द्वारा (रुक्मिणी के द्वारा) अच्छे निमित्त देखे गये, कि जिनका पूर्वकथन ज्योतिषियों ने किया था। कोयल और भी सुन्दर बोली, आम में बौर आ गये, वह फल गया और पक गया। सूखी बावड़ी एक क्षण के भीतर भर गयी। सपने में उसने पुत्र के आगमन को देखा। बौने, लंगड़े, बहरे और अन्धे रूप, गमन, श्रवण और आँखों से समृद्ध हो गये। इतने में नेत्रों को आनन्द देनेवाला केशवपुत्र (प्रद्युम्न) क्षुल्लक के रूप में वहाँ पहुँचा और तुरन्त कृष्ण के आसन पर

कण्हासणे उवइट्ठउ तुरंतउ ।
थंभिउ तेण घरग्गि बलंतउ ॥

घत्ता--सोसिउ सलिलु असेसु हरि-मोयय-सहासइं दिण्णइं ।
तेहिं मि बालु ण अघाइ सूयार-सयइं णिव्विण्णइं ॥११॥

तहिं अवसरि आयउ हक्कारिउ ।
तुम्हहं सिर-भद्दावण-वारउ ॥
सो चक्किल्लु कुमारें तज्जिउ ।
मुंडिय जणु सिरेण विसज्जिउ ॥
आयउ कुट्टणि-णिवहु सतूरउ ।
माया-गयवरेण किउ चूरउ ॥
अवर महत्तर अट्ठ पराइय ।
ताउ बंधेवि भद्दें घाइय ॥
आयउ गय-कुमारु विब्भारिउ ।
मायासीहें कहव ण मारिउ ॥
सावलेउ वसुएउ पराइउ ।
मायामेसें कहवि ण धाइउ ॥
आयउ जरकुमारु रिउ-वंभणु ।
ताम बारे थिउ मायाबंभणु ॥
सो पइसारु ण देइ कुमारहो ।
मोक्खु जेम चउगइ-संसारहो ॥

घत्ता--बंभण उट्ठि भणंतु चरणे धरेप्पिणु कड्ढइ ।
णवर णिरारिउ पाउ रिणु जिह सकलंतउ वड्ढइ ॥१२॥

बैठ गया, उसने जलती हुई घर की आग स्तंभित कर दी (रोक दी)।

घत्ता—उसने सारा पानी सोख डाला, उसे कृष्ण के हजारों लड्डू दिये गये, परन्तु बालक उनसे सन्तुष्ट नहीं हुआ। सैकड़ों रसोइये खिन्न हो उठे ॥११॥

उस अवसर पर हलकारा आया कि तुम्हारे सिर के मुण्डन कराने का अवसर है। उस नाई को कुमार ने डाँट दिया। उसे सिर से मूंडकर छोड़ दिया। तूर्य के साथ दासी समूह आया। मायावी हाथी ने उन्हें चूर-चूर कर दिया। और भी दूसरी बड़ी-बड़ी दासियाँ आयीं। उन्हें बाँधकर उस भद्र ने आहत कर दिया। विस्मयजनक गज का बच्चा (कलभ) आया, परन्तु मायावी सिंह ने उसे किसी प्रकार मारा भर नहीं। अहंकार के साथ वसुदेव आये, परन्तु मायावी मेष ने उन्हें किसी प्रकार आहत भर नहीं किया। शत्रुओं को रौंधनेवाला जरत्कुमार आया, इतने में द्वार पर एक मायावी ब्राह्मण खड़ा हो गया। वह कुमार को भीतर नहीं घुसने देता, उसी प्रकार जिस प्रकार चार गतिवाला संसार मोक्ष को प्रसार नहीं देता।

घत्ता—'हे ब्राह्मण, उठो' कहते हुए उसे पैर से पकड़कर जरत्कुमार खींचता है, परन्तु वह पाँव कर्ज की तरह, केवल कला प्रति कला बढ़ता जाता है ॥१२॥

आयउ कामबालु हक्कारिउ ।
कोक्कइ गिरि-गोवद्धणधारउ ॥
तहिँ अवसरि विज्जापरिवालउ ।
थिउ णारायणवेसें बालउ ॥
गउ सविलक्खु णियत्तिवि हलहरु ।
एत्थु जे तहिँ ते मि बे भायहिँ ।
मइ वेयारहिँ थाएवि मायहिँ ॥
एम जणद्दणु कोवें चडाविउ ।
मच्छुडु कुक्कु कोवि मायाविउ ॥
तूरइं देवि लेहु अक्खत्तें ।
बंधें वि बंधें वि धरहु पयत्तें ॥
ताम संणज्झइ जायव-साहणु ।
[illegible]
हुय पडपडह पसारिय कलयलु ।
ताव लच्छि-लंछिय-वच्छत्थलु ॥

घत्ता—रुप्पिणि लेवि थासु थिउ णहयले भडकडमद्दणु ।
कहइ महारिसि ताहेँ इहु माए तुहारउ णंदणु ॥१३॥

सो पण्हुविय बेवि थण मायहेँ ।
कंठु देइ णीसारण वायहेँ ॥
हरसंसुयहो उरत्थलु तिम्मिउ ।
बालें णिय-बलत्तणु णिम्मिउ ॥
लग्गु पओहरे णाइं थणंधउ ।
तक्खणे णवजुवाण मयरद्धउ ॥

बुलाया गया कामदेव आया। गोवर्धनपर्वत उठानेवाले उसे पुकारते हैं। उस अवसर पर विद्या का परिपालन करनेवाला बालक नारायण के वेश में बैठ गया। बलराम को लज्जित घूर-कर चला गया। जिस प्रकार यहाँ उसी प्रकार वहाँ भी मतिभ्रम पैदा करनेवाली माया से दो भागों में स्थित होकर उसने इस प्रकार जनार्दन को आग-बबूला कर दिया। लगता है कोई मायावी आ गया है। तूर्यों को बजाकर शीघ्र उसे अक्षातभाव से पकड़ लो। रौंधकर बाँधकर प्रयत्नपूर्वक पकड़ लो, जब तक यादवसेना तैयार होती है। हथियार उठा लिये गये, कल-कल प्रसारित कर दिया गया, तब तक जिसका वक्ष लक्ष्मी से अंकित है,

घत्ता—ऐसा योद्धाओं को चकनाचूर करनेवाला कामदेव बालक प्रद्युम्न रुक्मिणी को लेकर आकाश में स्थित हो गया। तब महामुनि नारद उस (रुक्मिणी) से कहते हैं—"हे आदरणीये, यह तुम्हारा पुत्र है।" ॥१३॥

तब माँ के दोनों स्तन भर आए, वाणी निकलने के लिए कष्ट देती है। हर्ष के आँसुओं से उसका उरस्थल गीला हो गया। बालक ने अपना बचपन निर्मित किया, और दूधपीते बच्चे की तरह पयोधरों से लग गया। उसी क्षण वह नवयुवक कामदेव बन गया। तपस्वी (नारद)

पभणइ सवसि पेक्खु परमेसरि ।
जायवगयहं भिडंतउ केसरि ॥
तहि अवसरे बलु ढुक्को हयउ ।
णाइं कयंतें पेसिउ दूयउ ॥
सो सहसत्ति कुमारें पेल्लिउ ।
णिच्चलु मोहिवि थंभिवि मेल्लिउ ॥
केण वि कहिउ गंपि गोविंदहो ।
दुद्दम-दाणव देह-विमद्दणहो ॥
देव-देव साहणु मुहु फेरउ ।
रणे जहि केण वि किउ विवरेरउ ॥

घत्ता—हरि रहे चडिउ तुरंतु सारंग-विहत्थु धावइ ।
महिहर-सिहरि सचाउ गज्जंतु महाघणु णावइ ॥१४॥

दुद्दम-दारुण-दणु-तणु घायण ।
बिण्णवि भिडिय मयण-णारायण ॥
बिण्णवि णं जमहाहिव अंधउ ।
बिण्णवि मयरकेउ गरुडद्धउ ॥
बिण्णवि सुरवर-णयणाणंदण ।
बिण्णवि रुप्पिणिदेवइ-णंदण ॥
बिण्णवि समरसएहि-समत्था ।
कुसुमधणु-सारंगविहत्था ॥
बिण्णवि णहयल-महियल-गामिय ।
मेहकूड-बारावइ-सामिय ॥
बिहि एक्कु वि ण एक्कु ओवग्गइ ।
बिहि एक्कहो वि ण पहरणु लग्गइ ॥

कहते हैं—"हे परमेश्वरी देखो, यादवरूपी गजों से यह सिंह लड़ता है। उस अवसर पर बलराम एकदम पास पहुँचे मानो यम ने अपना दूत भेजा हो, तो कुमार ने शीघ्र उन्हें हटा दिया और मोहित स्तंभित कर, निश्चल छोड़ दिया। किसी ने दुर्दम दानवों का दमन करनेवाले गोविन्द से जाकर कहा, "हे देव देव, तुम्हारे सैन्य को युद्ध में किसी ने विपरीत-मुख कर दिया है।"

घत्ता—श्रीकृष्ण रथ पर चढ़कर तुरन्त धनुष हाथ में लेकर दौड़ते हैं, मानो महीधर के शिखर पर इन्द्रधनुष सहित महामेघ गरज रहा हो ॥१४॥

दुर्दम और भयंकर दानवों के शरीरों का घात करनेवाले मदन और नारायण दोनों आपस में भिड़ गये। दोनों ही देववरों के नेत्रों के लिए आनन्ददायक थे। दोनों क्रमशः रुक्मिणी और देवकी के पुत्र थे। दोनों सैकड़ों युद्ध में समर्थ थे, दोनों के हाथ में कुसुमधनुष और सारंग थे। दोनों आकाशतल और महीतल पर विचरण करनेवाले थे। मेघकूट और द्वारावती के स्वामी थे। दोनों में से एक, एक पर आक्रमण नहीं कर पाता था। दोनों में से एक का अस्त्र एक को नहीं लगता था। इतने में दोनों के बीच नारद आ गये (और बोले), "हे नारायण, यह

अंतरे ताम परिट्ठिउ णारउ ।
एहु णारायण पुत्तु तुहारउ ॥
जो बालत्तणे असुरें हरियउ ।
एउ भणेवि महियलि ओयरियउ ॥
घत्ता—तक्खणे महुमहणेण परिहरिवि घोर समरंगणु ।
णिब्भरणेह-वसेण सइं भुएहिं दिण्णु आलिंगणु ॥१५॥

इय रिट्ठणेमिचरिए धवलइयासिय सयंभूएवकए पज्जुण्णमिलणवण्णणो
णाम बारहमो सग्गो ॥१२॥

तुम्हारा पुत्र है जिसका अपहरण बचपन में असुर ने किया था ।" यह कहकर वह धरतीतल पर आ गये ।

घत्ता—मधुसूदन ने उसी क्षण घोर युद्ध-प्रांगण छोड़कर, परिपूर्ण स्नेह के वश होकर अपनी भुजाओं से उसे आलिंगन दिया ॥१५॥

इस प्रकार धवलइया के आश्रित स्वयंभूदेव कृत अरिष्टनेमिचरित में
प्रद्युम्न-मिलन नामक बारहवाँ सर्ग समाप्त हुआ ॥१२॥

तेरहमो संगो

पुरि पइसारियउ परिणाविउ बालउ ।
कुरुवइ - णरवइ - सुअ - उवहिहिमालउ ।।छ।।
णारायण-णयण-मणोहिराम ।
पच्चारिय रुप्पइं सच्चहाम ।।
हंहे [illegible] बहिणि ण मुअमि अज्जु ।
भद्दावमि सिरु किर कवणु चोज्जु ।।
रक्खहु तुहुकेरउ सामिसालु ।
महुसूअण अहवइ कामवालु ।।
अहु संभरु भाणुकुमारु पुत्तु ।
भद्दावणु दरिसावमि णिरुत्तु ।।
तं वयणु सुणेप्पिणु भणइ भाम ।
पयभंगुप्पाइय तिविह णाम ।।
णियणंदण-गव्विणि जइवि आय ।
किह तुह मुहें णीसरिय वाय ।।
जो मुउ गउ कालंतरेण खद्धु ।
आचाय जि कहि पइं पुत्तु लद्धु ।।
वेयारिय आएं तावसेण ।
महु मज्झे वेढिय तावसेण ।।

घत्ता—सच्चउ चिरु गयउ कहिं दीसइ णंदणु ।
भामए भामियउ भमइ जणद्दणु ।।१।।

उसे नगर में प्रवेश दिया गया और कुरुराज की पुत्री बाला उदधिमाला से उसका विवाह कर दिया गया।।छ।।

नारायण के नेत्रों के लिए सुन्दर रुक्मिणी ने सत्यभामा को ललकारा—"हे बहिन ! तुम्हें आज नहीं छोड़ूँगी, तुम्हारा सिर मुड़वाऊँगी। इसमें आश्चर्य की क्या बात ? स्वामीश्रेष्ठ मधुसूदन (कृष्ण) कामबालों की रक्षा करें । तुम अपने पुत्र भानुकुमार की याद करो। निश्चित ही सिर का मुंडन दिखाऊँगी।" ये वचन सुनकर सत्यभामा कहती है—"तीन तरह से तुम्हारा वचन भंग हुआ है। यद्यपि तुम अपने पुत्र से गर्वीली हो रही हो, फिर भी तुम्हारे मुँह से यह बात कैसे निकली ? जो मर गया और काल द्वारा खा लिया गया, अचानक उस पुत्र को तुमने किस प्रकार पा लिया ? इस तपस्वी (नारद) ने तुम्हें प्रवंचित किया है और तुम्हें मुझसे भिड़ा दिया है।"

घत्ता—सचमुच बहुत समय से गया हुआ बालक कहाँ दिखाई देता है ? सत्यभामा के द्वारा घुमाए गये जनार्दन घूमते हैं ।।१।।

परिचिंतिवि णर-सुर-घायणेण ।
सुररिसि-णारउ-णारायणेण ॥
सविणय-गुण-वयणेंहिं एम वुत्तु ।
पइं जाणिउं किह महु तणउ पुत्तु ॥
सयकेय-विसत्थ-जणाभिराम ।
पत्तियइ ण केमवि सच्चहाम ॥
तं णिसुणेवि पभणइ अवच्चारु ।
जहिं कालि गवेसिउ मइं कुमारु ॥
तहिं कालि पुंडरिगिणि पइट्ठु ।
सीमंधरसामिउ गंपि दिट्ठु ॥
तहिं पउमरहेण रहंगिएण ।
विक्कमसिरि रामालिंगिएण ॥
पणवेप्पिणु परमजिणिंदु-वुत्तु ।
कि कीडउ णं णरु एहु णिरुत्तु ॥
गयणंगण-गामिउ गुणसमिद्धु ।
णारायण-णारउ इहु पसिद्धु ॥

घत्ता—बारावइपुरिहिं चक्कवइ जणद्दणु ।
दइववसेण तहो विच्छोहउ णंदणु ॥२॥

णिसुणंतहो महु परमेसरेण ।
चक्कवइहे अक्खिउ जिणवरेण ॥
धणधण्ण-सुवण्ण-जण-पय-गामें ।
जंबुयहे ता सालिग्गामे ॥

इस बात का विचारकर, मनुष्यों और सुरों का घात करनेवाले नारायण ने विनयगुणवाले वचनों से देवर्षि नारद से इस प्रकार कहा—"आपने किस प्रकार जाना कि यह मेरा पुत्र है? अपने घर में विश्वस्त रहनेवाले जनों के लिए अभिराम इस पर सत्यभामा किसी भी प्रकार विश्वास नहीं करेगी।" यह सुनकर सुन्दर नहीं बोलनेवाले नारद कहते हैं—"जिस समय मैंने कुमार की खोज की थी, उस स[illegible] मैं पुण्डरीकिणी नगर में प्रविष्ट हुआ था और जाकर सीमंधर स्वामी के दर्शन किये थे। वहाँ पर पद्मरथ चक्रवर्ती ने—जो विक्रम लक्ष्मीरूपी रमणी का आलिंगन करने वाला था—प्रणाम करके परम जिनेन्द्र से कहा—"निश्चय से यह मनुष्य कौन-सा कीड़ा है?" उन्होंने कहा—"आकाश के आँगन में गमन करने वाले गुणों से समृद्ध यह प्रसिद्ध नारायण के मुनि नारद हैं।

घत्ता—द्वारावती नगरी में जनार्दन चक्रवर्ती हैं। दैव वश उनके पुत्र का [illegible] हो गया है।" ॥२॥

मेरे सुनते हुए, परमेश्वर सीमंधर स्वामी ने चक्रवर्ती से कहा—"जिसमें धन, [illegible], स्वर्ण, जनपद और गाँव हैं ऐसे शालिग्राम में दो सियार थे। दुर्वात और अनवरत वर्षा और अपनी लम्बी आयु छोड़ने के कारण दोनों मरकर उसी गाँव में सोमदत्त और अग्निला ब्राह्मण

परिशिष्ट

'रिट्ठणेमिचरिउ' में आये हुए कतिपय शब्दों के अर्थ

पहला सर्ग

१. **जायवकुरव-कव्वुप्पलु**— यादव-कौरव-काव्योत्पल। **हरिबलकुलणहयलससहरहो**— हरि और बलराम के कुलरूपी आकाश के चन्द्रमा। यह और आगे के पद **'तित्थंकरहो'** के विशेषण हैं। **कल्लाण-णाणगुणरोहणहो**— पाँच कल्याणों [गर्भ, जन्म इत्यादि] ज्ञानों और गुणस्थानों में रोहण करने वाले। **णिरुणिरुवम-चामरचासणहो**—अत्यन्त सुन्दर चामरों और छत्रोंवाले। **या वासत्तणहो**—वर्षात्राण > वस्सत्तण > वासत्तणहो। **उप्पण्णाहा**—उत्पन्न हुई आभा।

२. **हरिवंसमहण्णउ**— हरिवंश-महार्णव। **गुरुवयण-तरंडउ** > गुरुवचनतरंड— गुरुवचनरूपी नौका। **णायउ**—ज्ञातः, ज्ञान प्राप्त किया। **परिमोक्कलउ**—परिमुक्तः, खोला। **सरसइ**— सरस्वती। **इंदेण**—इन्द्र ने, ऐन्द्र व्याकरण के आदिप्रवर्तक। **भरहेण**—भरत के द्वारा। रस सम्प्रदाय के प्रवर्तक और नाट्यशास्त्र के रचयिता। **वासें**—व्यास के द्वारा। **पिंगलेण**— पिंगलाचार्य के द्वारा, छंदशास्त्र के प्रवर्तक। **भम्महें**—भामह के द्वारा, प्रसिद्ध संस्कृत समीक्षक। **दंडिणिहिं**—दण्डी ने। **बाणेण**— बाणभट्ट ने। **सिरिहरिसें**—श्रीहर्ष ने। **चउमुहेण**—चतुर्मुख ने, स्वयंभू के पूर्ववर्ती पद्धडिया काव्यशैली के आविष्कर्ता। **ससमय**—स्वसमय, स्वमत। **परसमय**—परमत। **भडारा**—आदरणीय (भट्टारक)।

३. **विवरेउ**—विपरीत। **सुव्वइ**—श्रूयते, सुनी जाती है। **णारायणु**—श्रीकृष्ण। **णरहो**— नर की, अर्जुन की। महाभारत के अनुसार नर और नारायण एक ही तत्त्व के दो रूप हैं जो अर्जुन और कृष्ण के रूप में अवतार लेते हैं। **अबारजणिया**—..ारजनित अर्थात् जो वास्तविक पत्नी न हो, अन्य स्त्री से उत्पन्न। महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्रज पुत्र थे, अर्थात् उनकी विधवाओं से नियोग द्वारा उत्पन्न हुए थे। व्यास के नियोग से वे उत्पन्न हुए। **कोंतिहि**—कुन्ती के। शूरसेन की पुत्री, राजा कुन्ती-भोज की दत्तक कन्या सिद्धिनामक देवी के अंश से उत्पन्न। कुन्ती राजा कुन्तीभोज के यहाँ [illegible] की सेवा में नियुक्त थी। सेवा से सन्तुष्ट होकर दुर्वासा ने उसे मन्त्र दिया। कुतूहल वश वह सूर्य का आह्वान करती है। उससे कर्ण की उत्पत्ति होती है। पण्डु संन्यास ग्रहण करता है। उसके आदेश से धर्म, वायु और इन्द्र के द्वारा कुन्ती से क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन का जन्म होता है।

४. **एक्कें**—एक के द्वारा (शूरसेन के द्वारा अंधकवृष्णि पैदा) हुए। **सहोयरियाउ**— समान उदर से उत्पन्न बहिनें।

५. **वासहोतणिय**—व्यास की बहिन। **परिणिय**— परिणीता। **उग्गाइं मि उग्गउ**—उग्रों में

उग्र। **भरोड्डियकंधहो**—भार से ऊँचे कन्धे वाले। **रयणणिहाणद्ध-समिद्धो**—आधे-आधे रत्नों और खजानों से समृद्ध। **अणुरमाणी**—समान।

६. **ट्ठियहो**—स्थितस्य, उद्यान में बैठे हुए गंधमादन के। **दरिसावियपरममोक्खपहहो**—जिन्होंने परममोक्ष पथ को प्रदर्शित किया है। **णियभवंतरइं**—अपने जन्मान्तरों को। **णियणामुप्पत्ति परंपरइं**—अपने स्थान उत्पत्ति और परम्परा को। **णरइ पडंतु धरे**—नरक में पड़ते हुए (मुझे बचाओ)।

७. **दिक्खंकिय**—दीक्षांत किया। **महुराहिउ**—मथुराधिप। **अलत्तउ**—अलक्तक। **खिज्जंइ**—खिजाते। **पइंधणइं**—परिधान। **दुब्बलढोर इव**—दुर्बल ढोरों के समान। धवल से ढोर का विकार हुआ। धवल > धोल > धोर > ढोर।

८. **उवायउ**—(उप+याच्)—मनौती। **पसेइयउ**—प्रस्वेदित। **चच्चर**—चत्वर, चबूतरा। **णिब्भरणेह-णिबंधचित्तु**—स्नेह निर्भर निबन्धचित्त।

९. **कूवारें**—'पाइयसद्दमहण्णव' कोश में 'कूव' देशी शब्द है जिसका अर्थ है—चुराई हुई चीज की खोज में जाना। 'कूवार' अपभ्रंश काव्यों का विशिष्ट पारिभाषिक शब्द है। स्व० डॉ० पी० एल० वैद्य के अनुसार 'कूवार' का पर्याय पुकार है। पुष्पदन्त के महापुराण में इसका प्रयोग है—

णरणाहहु कय माहुक्कारें।
ता पयगय सयल वि कूवारें॥

किसी अत्याचार या कष्ट के निवारण के लिए प्रजा सामूहिक रूप में राजा के पास करुण पुकार के साथ निवेदन करने के लिए जाती है उसे कूवार कहते हैं। **उवसोहियइं**—उपशोभित। **परकुल-उत्तियाइं**—दूसरे कुल की पुत्रियाँ।

१०. **कोक्किउ**—पुकारा। **अलियसणेहें**—अलीक स्नेह (झूठे स्नेह) से। **उच्छोलिहिं**—गोद में। **पच्छण्ण-पउत्तिहिं**—प्रच्छन्न उक्तियों के द्वारा। **संपइ**—संप्रति; इस समय। **केलीहरए**—केलिगृह में। **वायागुत्तिहिं**—वचनगुप्तियों के द्वारा। **वसुएव-गइंदु**—वसुदेव गजेन्द्र। **विणयंकुसेण**—विनयरूपी अंकुश द्वारा।

११. **समालहणु**—समालभन, विलेपन।

१२. **मसाणय**—श्मशान। **णाइयं**—ज्ञात। **महीमहोवसेवियं**—महीमह सेवित, ब्राह्मणों द्वारा सेवित। **चियग्गिजालमालियं**—चिताग्नि की ज्वालमालाओं से युक्त। **णिसायरेक्क-कंदियं**—निशाचरों के समूह से आक्रान्त।

१३. **सत्तच्चिहे**—सप्तार्चि के, आग के। **घल्लियइं**—डाल दिये (क्षिप्तानि)। **साहरणइं**—साभरणानि, आभूषण सहित। **बे कण्णउ**—दो कन्याएँ।

दूसरा सर्ग

१. **परणेप्पिणु**—परिणय, विवाह कर। **रण्णयं**—अरण्य, वन। **चंदाइच्च-मंडलं**—चन्द्रादित्यमण्डलम्। **सलिलावत्तु**—सलिलावर्त। **णयणाणंदयरु**—नयनानन्दकर, नेत्रों को आनन्द देने वाला।

२. **सत्तविच्चुलाइं**—प्राणि समूह से पूरित। **सच्छ**—स्वच्छ। **मच्छ-कच्छ-विच्छुलाइं**—

मत्स्यों और कछुओं से व्याप्त। **मत्तहत्थि डोहियाइं**—मतवाले हाथियों से प्रकम्पित। **भी-तरंग-भंगुराई**- भय की लहरों से भंगुर। **मारुयपवेवियाइं**—हवाओं से प्रकम्पित। **सूर-रासिबोहि-थाइं**—सूर्य की किरणों के लिए बोहित (नाव) के समान। **अहिणववासारित्तुहि**—अभिनव वर्षा ऋतु में।

३. **कर-पुक्कर-परिचुंबिय पयंगु**—हाथ की तरह सूंड से जिसने सूर्य को चूम लिया है(कर-पुष्करपरिचुंबित-पतंग)। **दढदंतोसारिय-सुरगइंदु**—दृढ़दन्तोत्सारित-सुरगजेन्द्र, जिसने अपने मजबूत दाँतों से ऐरावत को हटा दिया है। **वहिरसणभीसणरूवधारि**—पराभव करनेवाला और भीषणरूप धारण करनेवाला। **साहारण**—साधारण जाति का गजेन्द्र। **सो आरणु**—वह आरण, आरण्यक अर्थात् जंगली हाथी।

४. **जोह**—योद्धा। **चवइ**—चवति, कहता है। **परिअंसे**—परिरमण, आलिंगन में।

५. **कुडें लग्ग**—पीछे लगी। **पडिखलिउ**—प्रतिस्खलित हो गया। **खणंतरेण**—क्षणान्तर में। **ढुक्कु**—पहुँचा। **इंदियदप्पदमणु**—इन्द्रियों के दर्प का दमन करने वाले। **छेउ**—अन्त।

६. **खेउ**—खेद। **भूमिदेउ**—भूमिदेव, ब्राह्मण। **विअवर**—द्विजवर। **धवलिय-गेहु**—धवलित गृह, धवलघर। **चंप**—चम्पानगरी। **णिरुवम-रिद्धिपत्त**—निरुपम-ऋद्धिपात्र। **भूगोयर-सयइं**—भूगोचरशतानि, सैकड़ों मनुष्य। **मरट्टु**—अहंकार।

७. **ढोइयइं**—ढौकितानि, उपस्थित की गयीं। **वल्लइय**—वल्लकी, वीणा। **तंतिवज्जु**—तंतिवाद्य, वीणा। **रिसहकुमार**—ऋषभकुमार, ऋषभ में—अनुराग और ऋषभ तीर्थंकर। **बहुल-पक्खणहु**—बहुलपक्ष नभ, कृष्ण पक्ष का आकाश। **मंदतार**—मन्द हैं तारे जिसमें (आकाश), जिसके तार (स्वर) मन्द हैं, (वीणा)।

८. **कुसुमाउहसरेहिं**—कामदेव के सरों से। **जीवग्गाहिए**—जीवन को लेनेवाले कठघरे में। **तरुणीयणथणमद्दणेण**—तरुणीजनों के स्तनों के मर्दन द्वारा। **फग्गुणणंदीसर**—फाल्गुन-नन्दीश्वर। **सिरिवासुपुज्जजिण-जत्त**—श्रीवासुपूज्य जिन की यात्रा।

९. **लावण्णजलाऊरिय-दिसोह**—लावण्य जल से आपूरित दिशाओं का समूह। **कउतवें**—कौतुक के साथ। **दुहिय**—दुहिता। **सुएं**—सुतेन, सुत के द्वारा। **झायइ**—ध्यायति, ध्यान करता है।

१०. **मउम्मत्त**—मदोन्मत्त। **तिलोयग्गगामी**—त्रिलोक के अग्रभाग पर चलनेवाले। **सकरेणु**—हथिनी-सहित।

११. **कुमारकएण**—कुमारकृतेन, कुमार के लिए। **पासेअ**—प्रस्वेद। **दाहिणि सुरहि मन्दु**—दक्षिण सुरभित मन्द (पवन)। **माए**—आदरणीये। **सुहसुत्तउ**—सुख से सोते हुए।

तीसरा सर्ग

१. **कड्ढिय**—आकर्षित किया। **थाणहो चुक्की**—स्थान से चूकी हुई। **लक्खय-दिट्ठीव**—लक्षकगीध की दृष्टि के समान। **णियसामिणि अणुलग्गी**—अपनी स्वामिनी के पीछे लगी हुई।

२. **कंचणसंचमयंधहं**—स्वर्णसंच से मदान्ध। **धयरट्ठुवि**—धृतराष्ट्र भी। **करिणि चोइय**—करिणी (हथिनी) प्रेरित की। **पडहंतहं**—नगाड़ावादकों। **सवणेंदियहं**—श्रवणेन्द्रियों को।

३. पडिच्छइ—प्रतीक्षा करती है। सव्वहो चंगउ—सबसे अच्छा है। सव्वाहरण-विहूसियअंगउ—सभी प्रकारों के गहनों से विभूषित शरीर। चिरचंदायणि-चिण्हहो—चिर चाँदनी के चिह्न वाले, चन्द्रमा के।

४. आढत्तमहापडिबंधें—महाप्रतिबन्ध प्राप्त करनेवाले। सण्णिय—संकेत किया। उद्दालहो—छीन लो। रयणाइं संभवंति महिवालहो—रत्न महीपाल के ही सम्भव होते हैं। यमपहे—यमपथ पर। दप्पुब्भडकडमद्दणे—दर्प से उद्धतों को मर्दित करनेवाले। रणरहसणुराएं—युद्ध के हर्ष और अनुराग से।

५. परिणिउ—परिणीत। वइवस-महिससिंगु—यम के भैंसे का सींग। उद्धकबंधणिवहु—ऊर्ध्व धड़ों का समूह। दप्पुत्तालहं—दर्प से उद्धृत।

६. धूलिवाउ-धूसिराइं—धूलि और हवा से धूसरित। आउहोह-जज्जराइं—आयुध ओघ (समूह) से जर्जर। सोणियंब रेल्लियाइं—शोणित-अम्ब (रक्त-जल) से प्रवाहित। णित्त-अंत-चोमलाइं—जिनकी आँतें और शेखर ले जाए गये हैं, ऐसे सैन्य। विवक्खे—विपक्ष में। सवक्खे—स्वपक्ष में।

७. वड्ढिय-अवलेवेंहि—जिनका अवलेप (अहंकार) बढ़ रहा है। अखंचिय-वग्गेंहि—जिन्होंने वल्गा (लगाम) खींच रखी है। आसवार—अश्वारोही। आयवत्त—आतपत्र, छत्र।

८. पउंडें—पौण्ड्र ने। धणु हत्थें—जिसके हाथों में धनुष है! संधइ—संधान करता है। णायपासु—नागपाश। णिय सत्तुप्पत्तदीणहो—अपना शत्रु उत्पन्न होने के कारण दीन हुए का। लक्खणहीणहो—लक्षणों से रहित का।

९. असरालउ—लगातार। अजस्रतर>अअसर अर>असरार>असराल। "कैसव कहि कहि कूकिए न सोइए असरार"—कबीर। 'र' का 'ल' में अभेद होता है। कमवहे—क्रम पथ में, पैरों के रास्ते में।

१०. पेक्खयलोएं—प्रेक्षकलोक के द्वारा। णराहिवसत्तें—नराधिप के सत्त्व द्वारा। अक्खत्तें—अक्षात्रभाव से। विहिविपरिवालें—पृथ्वीपाल ने। समरभरोड्डियखंधहो—जिसके कंधे युद्ध के भार से उठे हुए हैं।

११. दंतवक्कु—दंतवक्र। मुच्छपराणिउ—मूर्च्छा को प्राप्त हुआ। मरि-रक्खिय जीवउ—मृत्यु से जिसने अपने जीवन की रक्षा की है। ससल्लु—शल्य सहित। ओणुल्लउ—लुढ़क गया। पहुप्पइ—प्रभवति, समर्थ होता है। जणेरीणंदणु—जननी का पुत्र। धिहिगारउ—धृतिकारक, धैर्य दिलाने वाला। महारउ—मेरा।

१२. दिण्ण आसि—दत्त आसीत्, दिया हुआ था। छायभंगु—कान्तिभंग। सामियाव-अव-चिंतए—स्वामीश्रेष्ठ के अपचिन्ता करने पर।

१३. सुहद्दाएवि-णंदणय—सुभद्रादेवी के पुत्र। भग्गालाणखंभ णं मयगल—मानो, ऐसा मदमाता गज जिसने आलानस्तंभ उखाड़ दिया है। सासयपुरवर-गमणमणोरिय—दोनों मोक्ष नगर की इच्छा रखनेवाले हैं।

१४. सुहद्दुवंगरहपहाणें—सुभद्रा के सबसे बड़े बेटे समुद्रविजय ने वैशाख स्थान से तीर मारा। दुहंड—द्विखंड। पट्ठवइ—प्रेषित करता है। छिण्णइ—छिन्न-भिन्न कर देता है। थोइउ—उपस्थित हुआ।

१५. वरिससयहो—सौ वर्षों में। कुकलत्तु—खोटी स्त्री। ओसारिय-पेसणु—जिसने आज्ञा को टाल दिया है ऐसी। कुसुमवासु—कुसुम वर्षा। वर्षा > वस्सा > वास।

चौथा सर्ग

१. परिणेप्पिणु—परिणय कर। हक्कारियई—बुलाया। परमाइरिउ—परम आचार्य। विज्जत्थिउ—विद्यार्थी। घरघल्लिउ—घर से निकाला हुआ। दणुवुव्वमदेहणिवारणइं—दानवों के दुर्दमदेह का निवारण करनेवाले। सिक्खउ—शिक्षित, शिक्षा दी। वत्त—वार्ता। विहुय—विधूत, कंपित।

२. परवेढिउ—घेर लिया। सीसत्तणरुक्खहो—शिष्यत्व रूपी वृक्ष का। परमहलु—परमफल। लद्धपसंसें—प्रशंसा प्राप्त करनेवाले।

३. आखंडल मंडलणयर-णिहु—इन्द्र के नगर के समान। आलत्तु—आलपितः, कहा। मुद्दविहूसिए—मुद्रा से विभूषित।

४. कलियारउ—कलह करने वाला। सत्थई—शास्त्रों को। णदृहे—नद में। हत्थुच्छलियउ—हाथ उठा दिया।

५. उक्खंधें—घेरा डालकर या आक्रमण कर। चाउवण्णहलाइं—चातुर्वर्ण्यफलानि, चार वर्णों के फल। वीसरइ—विस्मरति, भूलता है। ससपडिवण्णी—स्वसृ-प्रतिवर्णा, अपनी बहिन के समान। गुरुदक्खिण्ण—गुरु-दक्षिणा।

६. तिण्णाणधर—त्रिज्ञान के धारी। गंभीरमए—गम्भीरता से। धीरमए—धैर्य से। चरियाएं—चर्या के द्वारा। धु—ध्रुवं, निश्चय से।

७. गग्गर-सर—गद्‌गद स्वर। वणप्फइ—वनस्पति। वणमइंदें—वनमृगेन्द्र के द्वारा। पउमवइ-अंगएण—पद्मावती के पुत्र (कंस) ने।

८. सोहलउ—शोभाकर, सुखकर या सुखवत् (सुहल्ल सोहल)। कलमलउ—बेचैनी। दइयहे—दयिता के। सल्लियउ—पीडित। अब्भत्थियउ—अभ्यर्थित।

९. रइयाजलि—जिसने अंजली बना रखी है। थोत्तुग्गिण्णगिर—स्तोत्र में जिसकी वाणी निकल रही है ऐसा। पइहरे—पतिगृह में।

१०. धणपुत्तजोव्वणइत्तियहं—धन, पुत्र और यौवनवाली स्त्रियों का। उयर—उदर। जिणवर-कहिय—जिनवर के द्वारा कही गई।

११. अल्लविय—अर्पित कर दिया। माए—आदरणीये। महुत्तणउ—मेरा। मत्थासूल णिहु—मस्तकशूल के समान।

१२. णारायण-चलणंगुट्ठहउ—नारायण के अंगूठों से आहत होकर। कयत्थकिय—कृतार्थ किया।

१४. वामयरंगुट्ठ-रसायणेण—वामेतर (दाएँ) पैर के अँगूठे के रसायन से।

पाँचवाँ सर्ग

१. अवक्खए—दिखने पर। रणंगणकंखए—युद्ध के प्रांगण की आकांक्षा से। चिराव‍इ—चिरायति, देर करती है। रिट्ठकंकु—अरिष्टकंक, अरिष्ट कौआ। अवइण्णेण—अवतीर्ण होने पर।

२. **परचित्तइं**—दूसरों के चित्तों को। **अलियउ**—अलीक, झूठमूठ। **णिरारिउ**—अत्यन्त। **ओरंजइ**—गरजता है। **विउज्झणे**—जागने पर।

३. **पव्वइयउ**—प्रव्रजित। **अग्गि-कूवारउ**—अग्निकूपार। कूवार का प्रयोग सभी अपभ्रंश कवियों ने किया है। कल्पवृक्षों के नष्ट होने पर प्रजा ऋषभ तीर्थंकर के पास जाकर कहती है :

> **'एक्कदिवसे गय पय कूवारें**
> **देव देव मुअ भुक्खामारें'**—पउमचरिउ, २-८

हिन्दी शब्दकोश कूवार का विकास संस्कृत कूपार से मानते हैं 'पाइअसद्दमहण्णव' में कूवार के तीन अर्थ हैं: जहाज का अवयव, मुख्य भाग या गाड़ी का अवयव जिस पर गाड़ी का जुआ रखा जाता है। 'कूवार' का अपभ्रंश साहित्य में विशिष्ट प्रयोग है, जिसके मूल शब्द का अनुसन्धान अपेक्षित है।

४. **खणंतरि**—क्षणांतर में। **समसुत्ति**—वज्र। **पाडिज्जइ**—पाड़ा जाय, गिराया जाय। **धाइया**—दौड़ी। **धाईवेसें**—धाय के वेश में। **छुद्ध**—क्षुप्त, डाल दिया। **माइउ**—समाता हुआ।

५. **पण्हुवंति**—(प्र+स्नु, पन्हाना) पनहाती हुई। **माहव-रुहिरपाण**—माधव के रक्त का पान। **परिचत्तउ**—परित्यक्त। **वसुंधरिहे**—पृथ्वी का।

६. **उव्वंदय**—ऊँचा। **समंदय**—स्वमन्दिर, अपने घर में। **थोवे काले**—थोड़े समय में। **णवणवणीय-हत्थ**—नवनीत के समान हाथवाले।

७. **संदणवेसें**—स्यंदन के रूप में। **पविम-संताणियचंदक्केहिं**—विस्तीर्णता में जिन्होंने चन्द्रमा और सूर्य को पराजित कर दिया है। **अरिट्ठु**—अरिष्ट, वृषभ।

८. **भग्गगीउ**—भग्नग्रीव। **अवरकमेण**—दूसरे पैर के द्वारा। **कडत्ति**—कड़कड़ करके। **दणुदेहदलण-अवयिण्हे**—दानव की देहदलन में अवितृष्ण। **सरत्तियइं**—सात रातों में।

९. **परिवड्ढिय-दुद्धइं**—जिनका दूध बढ़ रहा है, ऐसे गोप। **दाविय-कंचुयद्धथण-सिहर**—जिन्होंने कंचुकी से आधे स्तन का अग्रभाग दिखाया है। **णारायणसिरहे-णिसण्णउ**—नारायण की श्री में स्थित। **महब्भयरु**—महाभंकर।

१०. **पीयलवासु**—पीतवस्त्र। **आण**—आज्ञा, शपथ। **पत्थुउ**—प्रस्तुत।

११. **अवहत्थु करिवि**—अपहस्तं कृत्वा, हटाकर। **कंसहो पासिय**—कंस की ओर से। **छुट्टइ**—छूटती है। **वसुमइ**—वसुमती।

१२. **सच्चहामवरइलणिमित्तें**—सत्यभामा के वर के कारण। **णिरुत्तओ**—निश्चय से।

१३. **सज्झसु**—साध्वस, भय। **वेढ़िवि**—घेरकर। **चिंति**—चिन्ता करो।

छठा सर्ग

१. **पइज्ज**—प्रतिज्ञा। **अलिवलय-जलय-कुवलय-सवण्ण**—भ्रमर समूह, मेघ और नील कमल के समान रंगवाले। **कडिणि**—कटिनी, मेखला, करधनी। **संखोहिय**—संक्षुब्ध।

२. **विसमलीलु**—विषम लीला वाला। **फणामणि-किरणजालु**—फणामणियों के किरण जाल वाला। **विसदूसिय-जउण-जल-पवाहु**—विष से दूषित जल का प्रवाह। **अवगण्णिय-**

पंकयणाहणाहु—जिसने विष्णु स्वामी की अवहेलना की है। **उरगंगमेण**—नाग के द्वारा।

३. **णउ णाउ णाउ**—न नागः ज्ञातः, सर्प मालूम नहीं पड़ा। **परमचारु**—सर्प। **फणकडप्पु**—फनों का संमूह। **विहुडप्फडु**—विकल।

४. **णियवत्थइं**—अपने वस्त्र। **णाउ**—नाग। **गिल्लगंड**—आर्द्रगंड। **बीयउ**—द्वितीय। **महणे**—मन्थन होने पर।

५. **जायवा वि**—यादव भी। **णेवाविंयाइं**—ले जाए गये। **घल्लाविंयाइं**—डाल दिए गये। **मुट्ठियउ**—मुष्टिक।

६. **बोल्लाविय**—बोल का सामान्यभूत। इसके दो रूप हैं—बोल, बोल। 'ल' द्वित्ववाला रूप भी है, बोल्ल बोल्ल। बोल्ल का एक अर्थ गुजरना या अतिक्रमण करना भी है। जैसे—यह फल बोल गया है, यानी सड़ गया है, खराब हो गया है। **सीरा उहु**—सीरायुध, हलायुध, बलभद्र। **भूभूसिय**—भौंहों से अलंकृत। **कूवार**—पुकार। एक सम्भावना यह है कि कूवार के मूल में कोक्कार शब्द हो, कोक्कार—पुकार। कोक्कार>को आर>कूवार, पुकार, गुहार।

७. **रोहिणि देवइ-तणुरुहेहिं**—रोहिणी और देवकी के पुत्रों ने। **धोबु**—धोबी (धोवक> धोवइ>धोवु)। **कियवत्थालद्धरयावसाणु**—जिसने वस्त्रों में लगी हुई धूल का अन्त कर दिया है ऐसा (धोबी का विशेषण)। **कडिल्लइं**—कटिवस्त्र।

८. **लायण्णमहाजलभरिय-भुवण**—लावण्य के महाजल से जिन्होंने विश्व को आपूरित कर दिया है। **अप्फोडणरव बहिरिय दियंत**—आस्फालन के शब्द से दिगन्त को बहरा बना देनेवाले। **मंथरसंचार-महाणुभाव**—जो मन्द-मन्द संचलन से महान आशयवाली थी। **मंडण**—प्रसाधन। **विहंजेवि**—विभक्त करके।

९. **थोवंतरि**—थोड़े अन्तर से। **कवलिज्जइ**—ग्रसित किया जाता है। **वारणेण**—हाथी के द्वारा। **खेलावि-वि**—खिलाकर। **करिविसाणु**—हाथी दाँत।

११. **सावण्णमेह**—सावन के मेघ। **अंजणपव्वय**—अंजन-पर्वत। **महामइंद**—महामृगेन्द्र। **असियपक्खु**—असित पक्ष, कृष्ण पक्ष। **कंदोट्ट**—नीलकमल।

१२. **सासहो**—शासक का। **जस-लुद्धहो-कण्हहो**—यश के लोभी कृष्ण के। **भामरीहिं**—मल्लयुद्ध की क्रियाएँ। **पीडणेहिं**—हाथ की कैंची निकालना, करण, चक्कर खाना, हाथ से चोटें मारना, पकड़, पीड़न।

१३. **अवइण्णु विट्ठु**—विष्णु अवतीर्ण हुए। **जमलज्जुणरुक्ख-भंगु**—यमलार्जुन वृक्ष-भंग।

१५. **कड्ढण**—काटना। **सेलियखंभहत्थु**—जिसके हाथ में पत्थर का खम्भा है ऐसे, श्रीकृष्ण। **महुर**—मथुरा। **कुसलाकुसलि जाय**—एक दूसरे से कुशल समाचार पूछने का काम हुआ।

सातवाँ सर्ग

१. **विणिवाइए**—विनिपात होने पर। **धाहाविउ**—जोर-जोर से चिल्लायी। **बहलंसु-जलोल्लिय लोयणिय**—अत्यधिक अश्रुजल से गीले नेत्रों वाली। **अंबुरुह-समप्पहणयणजुय**—कमल के समान प्रभावाले नेत्र युगलवाली।

२. **णाइयउ**—कहा। **महोरय-विस-हरणु**—महोरग के विष का नाश। **भगवइहे**—भगवती

के। पाहिलारए जुज्झे—प्रथम युद्ध में।

४. कालयवणु—कालयवन। कुलिसाहयउ—कुलिशाहत। हरिभयगयउ—सिंहभयगत। पायारु—प्राकार। दिसिअवदिसिहिं—दिशाओं-अपदिशाओं में।

६. एक्कोयरु—एक उदर से उत्पन्न, सहोदर। सण्णिहिउ—तैयार हो गये। महीवट्टे—धरती के मार्ग में। अकुलीण—धरती में नहीं समानेवाला, जो कुलीन न हो, अप्रतिष्ठित। कुलीन—धरती में समाने वाला, प्रतिष्ठित।

७. दारुणहं-रणहं—भयंकर युद्ध में। रहु—रथ। समावडिउ—आ पड़ा। बद्धामरिस—जिसने क्रोध किया है।

८. रणमुहि—युद्ध में। बंधुरबंधवेण—बन्धुबान्धवों ने। विसाणु—सींग। पच्चारइ—ललकारता है।

९. सवडंमुहु—सामने। सज्झु—साध्य। अक्कमइ—आक्रमति, आक्रमण करता है। अणंतें—श्रीकृष्ण द्वारा। कमकर सिरइं—चरण, कर और सिर।

११. पइज्ज—प्रतिज्ञा। चउरंगाणीया लंकरियउ—चतुरंग सेना से अलंकृत। मग्गाणु लग्गु—मार्ग में पीछे लगा हुआ।

१२. चीयउ—चिता। उम्मुच्छियउ—मूच्छित हो गयीं। तहोतणेण भएण—उसके भय के कारण।

आठवाँ सर्ग

१. लच्छिय—लक्ष्मी। कोत्थुहु—कौस्तुभ। उद्दालिउ—उद्दालितः, छीन लिया। सरहु—सरभ, वेग से। सरियउ—सरितः, हट गया। धणउ—धनद।

२. सउरिदसारजेट्ठ—शौर्यपुर के दशार्ह में ज्येष्ठ। अड्ढट्ठ—अर्द्धत्रि, साढ़े-तीन पहरण-भरियगत्तु—जिसका शरीर हथियारों से भरा है। सक्काएसें—शक्र के आदेश से। उप्पज्जेसइ—उत्पन्न होंगे।

३. सिवएवि गब्भहो सोहणं—शिवादेवी के गर्भ का शोधन करने के लिए। सवाहणाउ—वाहनों सहित। पहुक्कयाउ—पहुँची।

४. पत्तिक्क—प्रत्येक। चउविसाणु—चार दाँतों वाला। जुत्तपमाणु—युक्त प्रमाण वाला। रिस-रंखोलिर-पुच्छसंढु—ईर्ष्या से पूँछ को हिलाता हुआ बैल। सुरकरि-अहिसारी—ऐरावत पर चलने वाली। दिट्ठ लच्छि—लक्ष्मी देखी।

५. परिमल परिमिलिय चलालि-मुहलु—पराग से मिले हुए चंचल भ्रमरों से मुखर। जलयर-जीव-जम्मु—जलचर जीवों को जन्म देनेवाला। केसरिविट्ठर—सिंहासन। भोइंद-थाणु—भोगीन्द्र-स्थान, नागलोक।

६. कंतिल्लु—कान्ति से युक्त। छुहहीरि णियच्छए—चन्द्रमा के दिखने पर। तिणाणी—तीन ज्ञानों से युक्त। तणु-तणुत्तणाहु—सूक्ष्म शरीर से युक्त।

८. मयणइ-पक्खालिय-गंडयासे—मद नदी से जिसके गंडस्थल का पार्श्वभाग प्रक्षालित है, ऐसे ऐरावत पर। सिक्कार-मारुआऊरियासे—जिसने सीत्कार की हवा से सभी दिशाओं को आपूरित कर दिया है। ऐरावत का विशेषण। सत्तावीसक्खर-कोडिसहिउ—सत्ताईस करोड़

अप्सराओं के साथ। **खणद्धखणेण**—आधे से आधे क्षण में।

९. **दुदुहिवमालु**—दुंदुभि का शब्द। **सिक्कारि-णिणाउ**—वाद्य विशेष का शब्द। **णिवाय वलएण**—निवातवलय के द्वारा। **सयसक्कड**—सौ टुकड़े।

१०. **वसुवइ**—वसुपति, कुबेर। **णीसरेहिं**—नरेशों के द्वारा।

नौवाँ सर्ग

१. **छत्तियभिसिय-कमंडल-हत्थउ**—छत्ता, आसन और कमण्डलु जिनके हाथ में है, ऐसे नारद। **जोगवट्टयालंकिय-विग्गहु**—जिनका शरीर योगपट्टिका से अलंकृत है।

२. **अवग्गेहिं**—अवग्रहों के द्वारा। अवग्रह पारिभाषिक शब्द है। शरीरप्रमाण दूरी से आकर पूज्य व्यक्ति को प्रणाम करना अवग्रह है। **कुंडलपुरहो होंतउ**—कुण्डलपुर से होते हुए।

६. **किरणावलि घिप्पइ तरुविवहो**—जहाँ वृक्ष-समूह से किरण-समूह ग्रहण किया जाता है। **मंदरु**—मंदराचल। **दारुहकसतोरवियतुरंगमु**—लकड़ी और चाबुक से जिसके घोड़े उत्तेजित हैं। **सण्णए**—संकेत के द्वारा। **जउणंदण**—यदुनन्दन, श्रीकृष्ण।

७. **भिच्चु**—भृत्य। **लउडि**—लकुटी। **आओसमणेण**—आक्रोश मनवाले। यम का विशेषण।

६. **णिहुइ**—विस्थापित किया जाता है। **सत्तताल**—सप्त ताल। **मुद्दावज्ज**—मुद्रावज्र, अगूठी। **असिगाहिणिहे**—असत् को पकड़ने वाली। **वाहिणिहे**—वाहिनी को, सेना को।

१०. **साइउ**—आलिंगन। **रुप्पिणीविउअ संततउ**—रुक्मिणी-वियोग-संतप्त, रुक्मिणी के वियोग से संतप्त।

११. **पबलत्तवलवंतई**—प्रबल रूप से बलवान। **कुंभयलोलोक्खल विदइं**—गंडस्थल रूपी चंचल ऊखल।

१५. **विअब्भाहिव-सुयकंतें**—विदर्भराज की कन्या के पति, श्रीकृष्ण के द्वारा। **ठइज्जइ**—स्थाप्यते, स्थापित किया जाता है। **परिछिज्जइ**—परिक्षीयते, क्षीण हो जाता है। **असइ**—असती, कुलटा।

१६. **णिसि-पहरणु**—निशा प्रहरण, निशास्त्र। **सयवत्तई**—शतपत्र, कमल। **दिणत्थु**—दिन-अस्त्र। **पण्णय-पहरणु**—पन्नग-अस्त्र। **चेइ-णरिंदें**—चेदिराज ने। **बहुरूवंतरेहिं**—अनेक रूपान्तरों में।

१७. **सरकर-परिहत्थें**—तीरों और हाथों की क्षिप्रता से। **सिरिवच्छें**—श्रीकृष्ण के द्वारा। **चेइवें**—चेदिपतिना, चेदिराज द्वारा। **समजालीहूयउ**—समज्वालीभूतः, ज्वाला के समान हो गया। **जइवस-दूवउ**—यमदूत। **थियउ**—स्थितः।

दसवाँ सर्ग

२. **पडिवारउ**—प्रतिवार, फिर से। **कंदारविंद**—विशाल कमल। **तिरयण-विवज्जियउ**—रत्नत्रय से रहित। **जक्खिलवेयें**—पक्षवेग ने। **णहयलगामिणिउ**—आकाशतलगामिनी।

३. **सस**—बहिन। **लहुयारी**—छोटी। **रेवइहे**—रेवती को। **पुण्ण मणोरहु**—मनोरथ पूरा हुआ।

□□